BAPA(N)- 101

लोक प्रशासन के सिद्धान्त

Theory of Public Administration

(प्रथम सेमेस्टर)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
फोन नं0 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं0 18001804025
ई-मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर अल्का धमेजा, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रोफेसर उमा मैदुरी, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्रोफेसर बी0 अरूण कुमार, लोक प्रशासन विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री सुमित सिंह (असिस्टेन्ट प्रोफेसर- एसी) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
श्री शुभांकर शुक्ला (असिस्टेन्ट प्रोफेसर- एसी) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री प्रमोद चन्याल (असिस्टेन्ट प्रोफेसर- एसी) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन डॉ0 घनश्याम जोशी(असिस्टेन्ट प्रोफेसर) कार्यक्रम समन्वयक, लोक प्रशासन लोक प्रशासन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 उमेश कुमार झा दुर्गाप्रसाद बलजीत सिंह पी0 जी0 कालेज, अनूपशहर, बुलन्दशहर, उ0 प्र0	1, 2, 3, 4, 5
डॉ0 अरविन्द सिंह के0जी0के0 कॉलेज, मुरादाबाद, उ0 प्र0	6, 7, 8, 9
डॉ0 देवेश रंजन त्रिपाठी उत्तर प्रदेश राजर्षिटंडन मुक्त वि0वि0 इलाहाबाद, उ0 प्र0	10
डॉ0 निलय तिवारी गौतम बुद्ध राजकीय महाविद्यालय दर्शन नगर, अयोध्या, फैजाबाद, उ0 प्र0	11, 12, 13, 14

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण - 2023

प्रकाशन- निदेशालय अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

अनुक्रम

खण्ड- 1 लोक प्रशासन- अर्थ, स्वरूप, क्षेत्र, विभिन्न दृष्टिकोण और नवीन लोक प्रशासन		
1	लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति क्षेत्र, महत्व	1 – 12
2	लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण	13 – 23
3	लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन	24 – 33
4	लोक प्रशासन का विकास, नवीन लोक प्रशासन, नवीन लोक प्रबन्धन	34 – 47
5	लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध	48 – 57
खण्ड- 2 विकास प्रशासन व तुलनात्मक लोक प्रशासन		
6	विकास प्रशासन अर्थ, विशेषताएं, क्षेत्र	58 – 68
7	विकसित और विकासशील देशों में विकास प्रशासन	69 – 78
8	तुलनात्मक लोक प्रशासन अर्थ, क्षेत्र एवं अध्ययन के दृष्टिकोण	79 – 91
9	प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश	92 – 105
खण्ड- 3 लोक प्रशासन पर नियंत्रण, प्रबन्ध और नेतृत्व		
10	लोक प्रशासन पर नियंत्रण: विधायी नियंत्रण, कार्यकारी नियंत्रण, न्यायिक नियंत्रण	106 – 116
11	प्रबन्ध का अर्थ, प्रकृति, सहभागी प्रबन्ध, अच्छे प्रबन्ध की कसौटियां	117 – 136
12	नेतृत्व, नीति निर्धारण तथा निर्णय करना	137 – 153
खण्ड- 4 नियोजन, नौकरशाही और लोक सेवा		
13	नियोजन- अर्थ प्रकार, नियोजन, प्रक्रिया, योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद	154 – 165
14	नौकरीशाही- अर्थ, नौकरशाही के प्रकार, गुण, दोष, मैक्स बेबर की नौकरशाही	166 – 175

इकाई- 1 लोक प्रशासन का अर्थ, स्वरूप, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा
1.3 लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताऐं
1.4 लोक प्रशासन का स्वरूप
    1.4.1 एकीकृत एवं प्रबन्धकीय दृष्टिकोण
    1.4.2 लोक प्रशासन विज्ञान है या कला
1.5 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र
    1.5.1 संकुचित दृष्टिकोण
    1.5.2 व्यापक दृष्टिकोण
    1.5.3 पोस्डकार्ब दृष्टिकोण
    1.5.4 आदर्शवादी दृष्टिकोण
1.6 लोक प्रशासन का महत्व
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

किसी भी विषय का अध्ययन प्रारंभ करते समय विद्यार्थी सर्वप्रथम विषय की आधारभूत बातों से परिचित होना चाहते हैं। आप अपने दिन पर दिन के अनेक कार्यों के सन्दर्भ में प्रशासन के सम्पर्क में आते होंगे और इतना तो जानते ही होंगे कि प्रशासन वह संगठन है जो हमारे जीवन की विभिन्न क्रियाओं को नियत्रित एवं प्रभावित करता है। एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव का संगठित जीवन। किन्तु अध्ययन के एक विषय के रूप में इसका विकास आधुनिक काल में हुआ है, प्रारंभिक काल में लोक प्रशसन का कार्य शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना, अपराध रोकना तथा पारस्परिक विवादों को सुलझाने जैसे कार्यों तक सीमित था। किन्तु आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों में इसका कार्य-क्षेत्र एवं प्रभाव कई गुणा बढ़ गया है, शासन का स्वरुप चाहे कैसा भी हो, लोक प्रशासन राजनितिक व्यवस्था का एक अपरिहार्य तत्व है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि लोक प्रशासन क्या है, इसके अन्तर्गत किन विषयों का अध्ययन किया जाता है तथा इसका हमारे व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में क्या महत्व है?

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अर्थ को समझ सकेंगे तथा इसकी परिभाषा कर सकेंगे।
- लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- लोक प्रशासन की प्रकृति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- लोक प्रशासन के महत्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।

1.2 लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा

लोक प्रशासन, प्रशासन का एक विशिष्ट अंग है। प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहयोग का नाम है। इसका अर्थ है 'कार्यों का प्रबन्ध करना अथवा लोगों की देखभाल करना।' यह एक व्यापक प्रक्रिया है, जो सभी सामूहिक कार्यों के विषय में चाहे सार्वजनिक हो या व्यक्तिगत, नागरिक हो या सैनिक, बड़े कार्य हों या छोटे, सभी के सम्बन्ध में लागू होता है। दूसरे शब्दों में प्रशासन शब्द के अन्तर्गत निजी एवं सरकारी गतिविधियों का प्रबन्धन सम्मिलित है। इस अर्थ में प्रशासन को विश्वविद्यालयों, चिकित्सालयों, व्यापारिक कम्पनियों, विभिन्न सरकारी विभागों आदि में देखा जा सकता है। लोक प्रशासन, प्रशासन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध शासन की गतिविधियों से होता है। व्यक्तिगत प्रशासन के विपरीत यह शासकीय कार्यों का प्रबन्धन है। एक विशिष्ट राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत लोक प्रशासन राजनीतिक निर्णयों को कार्यरूप में परिवर्तित करने का एक साधन है। इसके द्वारा ''सरकार के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति होती है'' इसका सम्बन्ध सार्वजनिक समस्याओं से है। यह लोक हित के लिए सरकार द्वारा किया गया संगठित प्रयास है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का भी एक भाग है, क्योंकि लोकनीति के निर्धारण में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाज को सुविधायें प्रदान करने हेतु अनेक निजी समूहों और व्यक्तियों से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह निजी प्रशासन से कई दृष्टियों से भिन्न है।

अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है जो मुख्य रूप से शासन के क्रियाकलापों तथा प्रक्रियाओं से सम्बन्ध रखता है। इसे जन प्रशासन, सार्वजनिक प्रशासन या सरकारी प्रशासन भी कहा जाता है।' लोक' शब्द का प्रयोग सार्वजनिकता का सूचक है तथा इस विषय को एक विशिष्टता प्रदान करता है। सरकार के तीन अंग होते हैः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। क्या लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगों का अध्ययन किया जाना चाहिए? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है, जिसके कारण लोक प्रशासन की अलग-अलग परिभाषाऐं की गयी हैं।

लोक प्रशासन की कुछ प्रमुख परिभाषाऐं निम्नलिखित है-

- ''लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है''- एल0डी0 व्हाइट
- ''कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप से क्रियान्वित करने का नाम ही लोक प्रशासन है। कानून को क्रियान्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।''- वुडरो विल्सन

- ''साधारण प्रयोग में लोक प्रशासन का अर्थ उन क्रियाओं से है जो राष्ट्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखाओं द्वारा सम्पादित की जाती है।''- एच0 साइमन
- ''सामान्यतः लोक प्रशासन, प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जो शासन से विशेषकर इसके कार्यपालिका पक्ष से सम्बन्धित है जहाँ सरकार का कार्य किया जाता है। यद्यपि विधायिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित समस्याऐं भी स्पष्ट रूप से प्रशासकीय समस्याऐं ही है।''- लूथर गुलिक

उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि लोक प्रशासन शब्द का प्रयोग संकुचित तथा व्यापक दोनों सन्दर्भों में किया जाता है। संकुचित सन्दर्भ में, इसका प्रयोग केवल कार्यपालिका द्वारा किये जाने वाले कार्यों के सन्दर्भ में किया जाता है। व्यापक सन्दर्भ में, लोक प्रशासन को सरकार अर्थात व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के कार्यों के समग्र अध्ययन से जोड़ा गया है। मोटे तौर पर एल0 डी0 व्हाइट के इस कथन से सहमति व्यक्त की जा सकती है कि ''लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते है जिनका उददेश्य लोक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।''

1.3 लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताऐं

लोक प्रशासन का अर्थ एवं इसकी विभिन्न परिभाषाओं को जानने के उपरान्त आप इसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूपों में रेखांकित कर सकते हैं-

1. लोक प्रशासन, प्रशासन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध लोक नीतियों को कार्यरूप में परिणत करने से है।
2. यह सार्वजनिक हित के लिए व्यक्ति तथा उसके साधनों का संगठित प्रयास है।
3. इसके अन्तर्गत व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका तीनों शाखाएं और उनके परस्पर सम्बन्ध आते हैं, किन्तु औपचारिक रूप से यह सरकारी अधिकारी-तंत्र पर ही विशेष रूप से केन्द्रित होता है।
4. आधुनिक काल में लोकनीति के निर्धारण में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
5. इसका उददेश्य निश्चित नियमों के अनुसार सरकारी कार्यों का निर्देशन तथा संचालन है।
6. यह किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाने वाला कार्य है।
7. प्रशासन करने वाले व्यक्ति के पास अधिकार का होना आवश्यक है। इसी के आधार पर वह दूसरों से किसी कार्य में सहयोग प्राप्त करता है।
8. इसमें एक से अधिक व्यक्तियों के सहयोग से कार्य किया जाता है। एक व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य को लोक प्रशासन की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती है।
9. यह निजी प्रशासन से कई दृष्टियों में भिन्न है।
10. समाज को सुविधायें प्रदान करने की प्रक्रिया में यह निजी समूहों और व्यक्तियों से निकट सम्बन्ध रखता है।

अभ्यास प्रश्न- 1

1. प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहयोग का नाम है। सत्य/असत्य
2. प्रशासन का सम्बन्ध निजी समस्याओं से है। सत्य/असत्य
3. प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को लागू करना है। सत्य/असत्य

1.4 लोक प्रशासन का स्वरूप

अब तक आप यह समझ चुके होंगे कि लोक प्रशासन का अर्थ क्या है? अब हम इसके स्वरूप या प्रकृति पर चर्चा करेंगे।

लोक प्रशासन एक गतिशील विषय है जिस कारण इसके स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इस विषय के स्वरूप पर बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों एवं अन्य सम्बन्धित सामाजिक विज्ञानों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। सामान्यतया लोक प्रशासन के स्वरूप पर दो दृष्टियों से विचार किया जाता है- प्रथम इस दृष्टि से कि इस विषय के अन्तर्गत किन क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाना चाहिए और दूसरे इस दृष्टि से कि यह विज्ञान है या कला या दोनों का समन्वित रूप।

1.4.1 एकीकृत एवं प्रबन्धकीय दृष्टिकोण

लोक प्रशासन की परिभाषा की तरह इसके स्वरूप या प्रकृति के विश्लेषण के सम्बन्ध में भी विद्वान एकमत नहीं है। इस सम्बन्ध में मुख्यतया दो दृष्टिकोण हैं जिन्हें एकीकृत तथा प्रबन्धकीय दृष्टिकोण कहा जा सकता है।

एकीकृत दृष्टिकोण के अनुसार किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं का समग्रीकरण का योग ही प्रशासन है चाहे वे क्रियाऐं लेखन, प्रबन्धन या सफाई सम्बन्धी ही क्यों न हो। इस प्रकार उपक्रम अथवा उद्यम विशेष में कार्यरत संदेशवाहक, फोरमैन, चौकीदार, सफाई कर्मचारी तथा शासन के सचिवों एवं प्रबन्धकों तक के कार्य को प्रशासन का भाग माना गया है। इस दृष्टिकोण में उपक्रम में कार्यरत छोटे कर्मचारियों से लेकर बड़े अधिकारियों तक के कार्यों को प्रशासन का भाग माना जाता है। व्हाइट इसी दृष्टिकोण के समर्थक है। दूसरी ओर प्रबन्धकीय दृष्टिकोण केवल उन्हीं लोगों के कार्यों को प्रशासन मानता है, जो किसी उपक्रम सम्बन्धी केवल प्रबन्धकीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। प्रबन्धकीय कार्य का लक्ष्य उपक्रम के विभिन्न क्रियाओं का एकीकरण, नियन्त्रण तथा समन्वय करना होता है। साइमन, स्मिथबर्ग तथा थॉमसन इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। उनके मतानुसार ''प्रशासन शब्द अपने संकुचित अर्थों में आचरण के उन आदर्शों को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जो अनेक प्रकार के सहयेागी समूहों में समान रूप से पाये जाते हैं।'' लूथर गुलिक के अनुसार, ''प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किये जाने और निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति से है।''

उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में मौलिक अन्तर है। एकीकृत दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर हमें किसी उद्यम में लगे सभी कर्मचारियों के कार्यों को प्रशासन के अन्तर्गत मानना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, विषय-वस्तु के अन्तर के कारण एक क्षेत्र का प्रशासन दूसरे क्षेत्र के प्रशासन से भिन्न होगा। जैसे- शिक्षा के क्षेत्र का प्रशासन लोक निर्माण के प्रशासन से भिन्न होगा। दूसरी तरफ प्रबन्धकीय दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर प्रशासन प्रबन्धन की तकनीक बनकर रह जाती है। प्रबन्धक का कार्य संगठन करना तथा उददेश्य की प्राप्ति हेतु जन तथा साधन सामग्री का प्रयोग करना है। यह दृष्टिकोण प्रशासन को अपने आप में भिन्न तथा पृथक क्रिया मानता है तथा प्रत्येक क्षेत्र के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखता है।

अब आपके मन में यह दुविधा उत्पन्न हो गयी होगी कि उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में किसे उपयुक्त माना जाय? वास्तव में उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में किसी की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती। सच तो यह है कि प्रशासन का ठीक अर्थ उस प्रसंग पर निर्भर करता है जिस सन्दर्भ में शब्द का प्रयोग किया जाता है। अध्ययन विषय के रूप में प्रशासन उन सरकारी प्रयत्नों के प्रत्येक पहलू की परीक्षा करता है, जो कानून तथा लोकनीति को क्रियान्वित करने हेतु सम्पादित किये जाते हैं। एक प्रक्रिया के रूप में इससे वे सभी प्रयत्न आ जाते हैं जो किसी संस्थान में

अधिकार-क्षेत्र प्राप्त करने से लेकर अन्तिम ईंट रखने तक उठाये जाते हैं तथा व्यवसाय के रूप में यह किसी भी सार्वजनिक संस्थान के क्रियाकलापों का संगठन तथा संचालन करता है।

1.4.2 लोक प्रशासन विज्ञान है या कला

लोक प्रशासन के स्वरूप को पूर्ण रूप से समझने के लिए आपको यह भी जानना होगा कि यह विषय कला है अथवा विज्ञान अथवा दोनों का समन्वित रूप। एक प्रक्रिया के रूप में लोक प्रशासन को सामान्तया एक कला समझा जाता है। कला का अपना कौशल होता है और वह व्यवस्थित ढंग से व्यवहार में लायी जाती है। प्रशासन एक विशेष क्रिया है जिसमें एक विशेष ज्ञान तथा तकनीकी-कौशल की आवश्यकता होती है। अन्य कलाओं की भाँति प्रशासन को भी अभ्यास से सीखा जा सकता है। वर्तमान में प्रशासनिक दक्षता के लिए 'निपुण' तथा 'विशिष्ट' प्रकार के दक्ष लोगों की आवश्यकता सरकार के विभिन्न आयामो में महसूस की जा रही है। प्रशासनिक कला में निपुणता हासिल करने के लिए व्यक्ति में धैर्य, नियन्त्रण, हस्तान्तरण, आदेश की एकता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों के अभाव में प्रशासक अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निष्पादन नहीं कर सकता।

लूथर गुलिक के अनुसार ''एक अच्छे प्रशासक को 'पोस्डकार्ब' तकनीकों में पारंगत होना चाहिए।'' जो विचारक प्रशासन केा कला नहीं मानते, उनका तर्क है कि प्रशासन की सफलता और असफलता मानवीय वातावरण एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती है। एक स्थान पर एक प्रशासक उन्हीं तकनीकों से सफल हो जाता है और दूसरे स्थान पर असफल हो जाता है। यह सच है कि सामाजिक और मानवीय पर्यावरण प्रशासन की कार्यकुशलता को उसी प्रकार प्रभावित करते हैं जिस प्रकार खेल का मैदान बदलने पर नया वातावरण खिलाड़ी के कौशल को प्रभावित करता है। किन्तु प्रशासन एक कौशल है। प्रत्येक व्यक्ति इस कौशल को हासिल नहीं कर सकता। प्रशिक्षण और अभ्यास के बाद ही इस उच्चतम कला को ग्रहण किया जा सकता है। अतः यह कहना उचित होगा कि लोक प्रशासन एक कला है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस विषय को विज्ञान का दर्जा दिया जाय या नहीं। यह एक विवादित प्रश्न है तथा इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम विज्ञान शब्द का प्रयोग किस अर्थ में करते हैं। साधारणतः विज्ञान शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है- व्यापक और संकीर्ण।

व्यापक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'अनुभव एवं पर्यवेक्षण से प्राप्त क्रमबद्ध ज्ञान' के रूप में किया जाता है। इसी अर्थ में हम सामाजिक विज्ञानों को जिनमें राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, आदि शामिल हैं, विज्ञान की संज्ञा प्रदान करते है। दूसरे अर्थ में विज्ञान, ज्ञान का वह निकाय है जो ऐसे परिशुद्ध सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना करता है जिनके आधार पर एक बड़ी सीमा तक परिणामों के सम्बन्ध में पूर्वकथन किया जा सकता है। इस प्रकार के विज्ञानों को 'शुद्ध विज्ञान' के नाम से पुकारा जाता है, जैसे- भौतिकी, रसायनशास्त्र और गणित। सामान्यता लोक प्रशासन को एक 'सामाजिक विज्ञान' माना जाता है, यद्यपि इस विषय पर सभी विद्वान एकमत नहीं है। विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो इस विषय को विज्ञान नहीं मानते। ऐसे विद्वानों द्वारा निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

मानवीय क्रियाओं से सम्बन्धित हो ने के कारण लोक प्रशासन के नियम कम विश्वसनीय होते है। ये स्थान और काल के अनुसार बदलते रहते हैं।

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र में सर्वसम्मत एवं सार्वभौमिक सिद्धान्तों का अभाव है।

2. विज्ञान की भांति लोक प्रशासन के पास कोई ऐसी प्रयोगशाला नहीं है जहाँ पूर्व अर्जित तथ्यों की सत्यता स्थापित की जा सके।
3. विज्ञान में नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का कोई स्थान नहीं होता जबकि लोक प्रशासन के सिद्धान्त निरन्तर प्रशासकीय क्रिया की तथ्यपरक एवं आदर्शपरक धारणाओं, अर्थात 'क्या है' और 'क्या होना चाहिए' के बीच झूलते रहते हैं।
4. इसमें पूर्व कथनीयता अर्थात भविष्यवाणी करने की क्षमता का अभाव है।
5. प्रशासकीय आचरण न तो पूर्णतः विवेकनिष्ठ होता है और न ऐसा होना सम्भव ही है। ऐसी स्थिति में उसके विज्ञान होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसमें कोई दो राय नहीं कि संकीर्ण अर्थ में लोक प्रशासन को विज्ञान की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती, परन्तु विषय से सम्बद्ध अधिकांश विद्वानों में इस बात पर मतैक्य पाया जाता है कि व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन के विज्ञान होने के दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

लोक प्रशासन के विज्ञान होने के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

1. एक विषय के रूप में लोक प्रशासन, प्रशासन से सम्बन्धित ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन करता है।
2. इस विषय के अध्ययन के लिए लगभग सुनिश्चित क्षेत्र निर्धारित कर लिया गया है तथा इस आधार पर इसे अन्य शास्त्रों से पृथक किया जा सकता है।
3. गत वर्षों में प्रशासन के क्षेत्र में जो पर्यवेक्षण, परीक्षण तथा अनुसंधान हुये हैं, उनके परिणामस्वरूप अनेक सुनिश्चित अवधारणाऐं तथा परिकल्पनाऐं विकसित हुई हैं।
4. भारी संख्या में ऐसे तथ्यों का संग्रह कर लिया गया है, जिन पर वैज्ञानिक अध्ययन की पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है।
5. अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति लोक प्रशासन में भी कुछ ऐसे सामान्य सिद्धान्त विकसित किये जा चुके हैं, जो प्रभावी शासन की स्थापना के लिए पथ प्रदर्शक का काम कर सकते हैं।
6. यह विषय तथ्यों एवं घटनाओं की वैज्ञानिक विवेचना करता है और इसके माध्यम से प्रशासक अनुमान लगा सकते हैं कि इन घटनाओं के क्या परिणाम होंगे? अर्थात इसमें भविष्यवाणी करने की क्षमता है।
7. इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने के उपरान्त इस प्रकार के कारण खोजें की जा सकती हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि समान कारणों का काफी बड़ी सीमा तक समान प्रभाव होता है। उक्त सन्दर्भ में सच तो यह है कि प्रत्येक ज्ञान के दो पहलू होते हैं- एक कला का और दूसरा विज्ञान का। उदाहरण के लिए, फोटोग्राफी अथवा औषधि विज्ञान कला भी है और विज्ञान भी। इसी प्रकार लोक प्रशासन विज्ञान और कला दोनों का समन्वित रूप है। चार्ल्स बेयर्ड के अनुसार, लोक प्रशासन उतना ही विज्ञान है जितना कि अर्थशास्त्र। उनके मत में जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसंधान, वैज्ञानिक समितियों तथा वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञान एवं परिकल्पनाओं के आदान-प्रदान ने ज्ञान की परिशुद्धता में वृद्धि की है, उसी प्रकार हम यह आशा कर सकते हैं कि प्रशासन के क्षेत्र में भी अनुसंधान, प्रशासकीय समितियों तथा प्रशासकों के पारस्परिक आदान-प्रदान भी ज्ञान की परिशुद्धता में वृद्धि करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि लोक प्रशासन केवल तथ्यों अर्थात 'क्या है' का ही अध्ययन नहीं करता, वरन् आदर्शों अर्थात 'क्या हो ना चाहिए' का भी अध्ययन करता है। इस प्रकार अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति यह तथ्यपरक एवं आदर्शपरक दोनों

प्रकार का विज्ञान हो सकता है। अपने पारम्परिक रूप में यह एक तथ्यपरक विज्ञान ही बना रहा है। परन्तु आधुनिक विचारकों ने इस दृष्टिकेाण को स्वीकार नहीं किया। उनका कहना है कि प्रशासन का ध्येय श्रेष्ठ प्रशासन है। इस धारणा को स्वीकार कर लेने के बाद यह प्रश्न सहज ही उठता है कि श्रेष्ठ प्रशासन की कसौटी क्या है? स्पष्टतः इन प्रश्नों में प्रयोजनों और मूल्यों की समस्या निहित है और यह प्रश्न लोक प्रशासन को आदर्शमूलक अध्ययन का स्वरूप प्रदान करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन एक प्रगतिशील विज्ञान है, जिसके निष्कर्ष अथवा सिद्धान्त भी नये अनुसंधान तथा नये अनुभव के अनुसार अपने आप को भी बदल डालते हैं। यह सही है कि समय-समय पर प्रतिपादित किये जाने वाले विभिन्न मतों से लोक प्रशासन की समस्या के बारे में सही समझ कायम करने में सहायता मिली है, तथापि उनके सम्बन्ध में पूर्णता का दावा नहीं किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न- 2

1. एकीकृत दृष्टिकोण में लोक प्रशासन के अन्तर्गत किन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है?
2. प्रबंधकीय दृष्टिकोण केवल उन्हीं लोगों के कार्यों को प्रशासन मानता है जो किसी उपक्रम सम्बन्धी केवल प्रबंधकीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। सत्य/असत्य
3. एकीकृत दृष्टिकोण प्रत्येक क्षेत्र के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखता है। सत्य/असत्य
4. ''एक अच्छे प्रशासक को पोस्डकार्ब तकनीकों में पारम्परागत होना चाहिए'' यह किसका कथन है?
5. लोक प्रशासन के विज्ञान होने के पक्ष में दो तर्क प्रस्तुत कीजिए।

1.5 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र

लोक प्रशासन की प्रकृति को समझने के उपरान्त आप यह जानेंगे कि इस विषय के अन्तर्गत किन तथ्यों तथा समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, अर्थात लोक प्रशासन का अध्ययन क्षेत्र क्या है? जिस प्रकार आपने इस विषय की परिभाषा तथा इसके स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों में तीव्र मतभेद पाया, उसी प्रकार का मतभेद विषय के अध्ययन क्षेत्र के सम्बन्ध में भी पाया जाता है। वास्तव में, परिवर्तन के इस युग में लोक प्रशासन जैसे गतिशील विषय का क्षेत्र निर्धारित करना अत्यन्त मुश्किल कार्य है। मोटे तौर पर इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दृष्टिकोण प्रचलित हैं-

1.5.1संकुचित दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन का सम्बन्ध शासन की कार्यपालिका शाखा से है, इसलिए इसके अन्तर्गत केवल कार्यपालिका से सम्बन्धित कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। हरवर्ट साइमन तथा लूथर गुलिक जैसे विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक है। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जा सकती हैं- कार्यरत कार्यपालिका अर्थात असैनिक कार्यपालिका का अध्ययन, सामान्य प्रशासन का अध्ययन, संगठन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन, कार्मिक प्रशासन का अध्ययन, वित्तीय प्रशासन का अध्ययन और प्रशासनिक उत्तर दायित्व एवं उपलब्धियों का अध्ययन।

1.5.2 व्यापक दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत उन सभी क्रियाओं के अध्ययन पर बल देता है जिनका उद्देश्य लोकनीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है। दूसरे शब्दों में, इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक

प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के तीनो अंगों- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। निग्रो, व्हाइट, मार्क्स, विलोबी आदि विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र की व्याख्या में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होती है- 1. समाज के सहयोगात्मक प्रयास का अध्ययन, 2. सरकार के तीनों अंगो का अध्ययन, 3. लोकनीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन का अध्ययन, 4. प्रशासन के सम्पर्क में आने वाले निजी संगठनों एवं व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन।

1.5.3 पोस्डकार्ब दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रणेता लूथर गुलिक हैं। यद्यपि गुलिक से पहले उर्विक, हेनरी फेयोल इत्यादि विद्वानो ने भी पोस्डकॉब दृष्टिकोण अपनाया था, किन्तु इन विचारों को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय गुलिक को जाता है। पोस्डकार्ब शब्द अंग्रेजी के सात शब्दों के प्रथम अक्षरों से मिलकर बना है। ये शब्द निम्नवत है- 1. Planning- योजना बनाना, 2. Organization- संगठन बनाना, 3. Staffing- कर्मचारियों की व्यवस्था करना, 4. Directing- निर्देशन करना, 5. Co-ordination- समन्वय करना, 6. Reporting- रपट देना और 7. Budgeting- बजट तैयार करना ।

1.5.4 आदर्शवादी दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि लोककल्याणकारी राज्य और लोक प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य जनता का हित करना है, ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन का अर्थ जनता के हित में सरकार के कल्याणकारी कार्यों को मूर्त रूप प्रदान करना है। लोक प्रशासन एक व्यापक विषय है और इसके अन्तर्गत जनहित में किये जाने वाले समस्त कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। उपर्युक्त दृष्टिकोण की समीक्षा करने पर आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि इनमें से कोई भी दृष्टिकोण पूर्ण नहीं है।

प्रथम दृष्टिकोण लोक प्रशासन को शासन की कार्यपालिका शाखा से सम्बन्धित मानता है, लेकिन यथार्थ में यह केवल कार्यपालिका शाखा का ही अध्ययन नहीं है, बल्कि इससे बहुत ज्यादा है। दूसरे व्यापक दृष्टिकोण के मुताबिक लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगों को शामिल किया गया है जिसे भी पूर्णतः उचित नहीं कहा जा सकता है। अगर इस दृष्टिकोण को माना जाए तो लोक प्रशासन अस्पष्ट विषय बनकर रह जायेगा। तीसरे दृष्टिकोण, जिसे 'पोस्डकॉर्ब' का नाम दिया जाता है इस आधार पर आलोचना की जा सकती है कि यह केवल प्रशासन की तकनीकों से सम्बन्धित है, उसके पाठ्य विषय से नहीं। इस दृष्टिकोण में यह भी कमी है कि इसमें मानवीय पहलू की उपेक्षा की गयी है। अन्त में चौथा दृष्टिकोण आदर्शवादी दृष्टिकोण भी सही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह लोक प्रशासन के वास्तविक क्षेत्र का विवेचन नहीं करके भविष्य में बनने वाले लोक प्रशासन के क्षेत्र का काल्पनिक वर्णन करने लगता है।

स्पष्टतः उपर्युक्त दृष्टिकोणों में किसी एक को पूर्णतः सही मानना ठीक नहीं है, परन्तु सत्यता का अंश सभी में है। यानि लोक प्रशासन सरकार के तीनों अंगों से सम्बन्धित है, परन्तु कार्यपालिका से ज्यादा जुड़ा हुआ है। इसमें 'पोस्डकॉर्ब' की प्रक्रिया अपनायी जाती है और इसका भावी स्वरूप विस्तृत और व्यापक है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन में निम्नलिखित विषय क्षेत्रों का अध्ययन किया जाना चाहिए-

- सार्वजनिक कार्मिक प्रशासन का अध्ययन,
- सार्वजनिक वित्तीय प्रशासन का अध्ययन,
- प्रशासनिक अथवा संगठनात्मक सिद्धान्तों का अध्ययन,
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन,

1.6 लोक प्रशासन का महत्व

किसी भी विषय के अध्ययनकर्ता सम्बन्धित विषय के अध्ययन में दिलचस्पी तभी लेते हैं, जबकि वह विषय उन्हें महत्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रतीत होता है। लोक प्रशासन के इस विषय का अध्ययन करते समय आप भी विषय के महत्व को जानने को इच्छुक होंगे। राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो, लोक प्रशासन एक अनिवार्यता है। आधुनिक युग में इसका महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों में लोक प्रशासन ने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली है और प्रशासनिक व्यवस्था की आधारशिला के साथ-साथ सभ्यता की पहचान बन गया है। यह न कवेल एक सैद्धान्तिक विषय है बल्कि सभ्य समाजों में व्यक्ति तथा सरकार के बीच औपचारिक सम्बन्धों केा स्पष्ट करने वाला आवश्यक ज्ञान है। इस सम्बन्ध में चार्ल्स बेयर्ड ने ठीक ही कहा है कि ''प्रशासन के विषय से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई विषय नहीं हो सकता है। मेरे विचार से शासन तथा हमारी सभ्यता का भविष्य इसी बात पर निर्भर करता है कि सभ्य समाज के कार्यों की पूर्ति के लिए प्रशासन का दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक स्वरूप कितना विकसित होता है।''

लोक प्रशासन, प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना तथा नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना, पारम्परिक रूप से लोक प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्य रहे हैं। आधुनिक काल में व्यक्ति की अपेक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं में वृद्धि के साथ-साथ लोक प्रशासन का दायित्व भी बढ़ गया है। इसे कई अन्य चुनौतीपूर्ण कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है। देश के विकास और प्रगति को आगे बढाने के लिए सुचारू रूप से संचालन के लिए तथा इनके मार्ग में आने वाली समस्याओं से जूझने के लिए लोक प्रशासन अत्यन्त आवश्यक है। यह विकास एवं परिवर्तन का भी एक प्रमुख उपकरण बन गया है।

आज राज्य का स्वरूप लोककल्याणकारी है तथा यह जनता के उत्थान के लिए बहुमुखी योजनाऐं चलाती है। इन योजनाओं की सफलता प्रशासन की कार्यकुशलता एवं निष्पक्षता पर निर्भर करती है। योजनाओं को लागू करने का कार्य लोक सेवकों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। ऐसी स्थिति में राज्य और लोक प्रशासन में अन्तर नहीं रह गया है। डिमॉक के अनुसार ''लोक प्रशासन सभ्य समाज का आवश्यक अंग तथा आधुनिक जीवन का एक प्रमुख तत्व है और इसने राज्य के उस स्वरूप को जन्म दिया है जिसे 'प्रशासकीय राज्य' कहा जाता है। वस्तुतः लोक प्रशासन व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पादित होने वाले तमाम कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।''

आज लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का भी एक प्रमुख साधन बन गया है। विकासशील देशों की परम्परागत जीवन शैली, अन्धविश्वास, रूढियों तथा कुरीतियों में परिवर्तन लाना एक सामाजिक आवश्यकता है। सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा, राजनीतिक चेतना, आर्थिक विकास, कानून, दबाव समूह तथा स्वयंसेवी संगठनों सहित प्रशासन भी एक उपकरण माना जाता है। सामाजिक परिवर्तन का हथियार होने के साथ-साथ लोक प्रशासन सामाजिक नियन्त्रण का माध्यम भी है। सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उस ढंग से है जिसके द्वारा सम्पूर्ण

सामाजिक व्यवस्था की एकता तथा स्थायित्व को बनाया रखा जा सके और जिसमें सामाजिक व्यवस्था परिवर्तनशील रहते हुए क्रियाशील रहे। हमारे देश में गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, शोषण, महिला अत्याचार, बाल अपराध, दहेज, छुआछूत, आदि जैसी सामाजिक समस्यायें विद्यमान हैं। ऐसी जटिल एवं व्यापक सामाजिक समस्याओं एवं कुरीतियो का समाधान केवल सरकार द्वारा निर्मित सामाजिक नीतियों एवं सामाजिक कानूनों द्वारा ही सम्भव है और इन नीतियों एंव कानूनों को क्रियान्वित करने में लोक प्रशासन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लोक प्रशासन की भूमिका केवल नीतियों के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसके निर्धारण में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नीतियों के निर्माण की औपचारिक जिम्मेदारी भले ही राजनीतिज्ञों की हो, लेकिन अपने विशिष्ट ज्ञान प्रशिक्षण तथा अनुभव के कारण एक सलाहकार के रूप में लोक सेवक नीतियों के निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं। वस्तुतः सरकार के कार्यों के सफल संचालन के लिए प्रशासनिक लोक सेवकों का सहयोग आवश्यक है। प्रशासन सरकार के हाथ-पैर हैं और सरकार की सफलता का महत्वपूर्ण माध्यम है।

लोक प्रशासन द्वारा प्रशासकों के प्रशिक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करने प्रशासनिक व्यवस्था की गतिशीलता व उपादेयता में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा ही लोक प्रशासक यह सीख पाते हैं कि कानून व व्यवस्था बनाये रखा जाये। प्रशासनिक जीवन में समन्वय, संचार, सोपान, नियन्त्रण क्षेत्र इत्यादि की जानकारी भी प्रशासकों को लोक प्रशासन से ही सम्भव है। यही कारण है कि लोक सेवकों को लोक प्रशासन का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन करना पड़ता है।

भूमण्डलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होते समय कुछ विद्वानों ने यह आशंका व्यक्त की थी कि लोक प्रशासन का महत्व कम हो जायेगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन की भूमिका और चरित्र में कुछ बदलाव आया है, लेकिन इसका महत्व कम नहीं हुआ है। अब लोक प्रशासन की एक नवीन भूमिका सुविधाकारक तथा उत्प्रेरक की है। यह और सक्रिय होकर देखता है कि विस्तृत होता हुआ निजी क्षेत्र राष्ट्र के कानून तथा नियमनों की संरचना के अन्तर्गत क्रियाशील है या नहीं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सरकार का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो लेकिन लोक प्रशासन का महत्व एवं इसकी भूमिका कम नहीं हो सकती। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली ने तो इसके महत्व को और भी बढा दिया है। आज लोक प्रशासन सभ्य समाज की प्रथम आवश्यकता है। देश में शांति-व्यवस्था एवं स्थिरता बनाये रखने तथा विकास कार्य एवं सामाजिक परिवर्तन को गति प्रदान करने के लिए लोक प्रशासन अपरिहार्य है। फाइनर के शब्दों में ''कुशल प्रशासन सरकार का एक मात्र सहारा है जिसकी अनुपस्थिति में राज्य क्षत-विक्षत हो जायेगा।''

अभ्यास प्रश्न- 3

1. लोक प्रशासन की भूमिका केवल नीतियों के क्रियान्वयन तक सीमित है। सत्य/असत्य
2. लोक प्रशासन विकास एवं परिवर्तन का प्रमुख उपकरण है। सत्य/असत्य
3. भूमण्डलीकरण के इस युग में लोक प्रशासन की भूमिका एक सुविधाकारक एवं उत्प्रेरक की है। सत्य/असत्य

1.7 सारांश

लोक प्रशासन प्रशासन का वह विशिष्ट भाग है, जिसमें उन सभी क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है जो सार्वजनिक नीतियों को क्रियान्वित करने से सम्बन्धित है। यह एक गतिशील विषय है जिसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता रहा है। यह एक सामाजिक विज्ञान तथा व्यावहारिक कला का समन्वित रूप है। आधुनिक लोक

कल्याणकारी राज्यों में इसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है। यह न केवल शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने का बल्कि विकास एवं सामाजिक परिवर्तन का भी एक प्रमुख उपकरण बन गया है। भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन के लिए नयी भूमिका का सृजन हुआ है।

इस इकाई में हमने लोक प्रशासन की आधारभूत विशेषताओं तथा इसके महत्व पर प्रकाश डाला है। अगले अध्याय में हम इस विषय के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण पर प्रकाश डालेंगे।

1.8 शब्दावली

प्रशासनिक राज्य- ऐसा राज्य जिसमें कार्यपालिका शाखा का प्रभुत्व होता है, यद्यपि इसमें व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका भी स्थापित रहते हैं।

लोक कल्याणकारी राज्य- ऐसा राज्य जो समस्त जनता और विशेषकर कमजोर एवं जरूरतमंद लोगों अर्थात निर्धन, वृद्ध, अपंग, बीमार इत्यादि लोगों को कानून और प्रशासन के द्वारा पर्याप्त सुविधायें प्रदान करता है।

प्रबन्धन- एक ऐसी प्रक्रिया जो प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। लोकनीति- वे सार्वजनिक नीतियां जो सरकार द्वारा जनहित में निर्धारित की जाती हैं।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- **1.** सत्य, **2.** असत्य, **3.** सत्य

अभ्यास प्रश्न 2- **1.** छोटे कर्मचारियों से लेकर बड़े अधिकारियों तक के कार्यों को, **2.** सत्य, **3.** असत्य, **4.** लूथर गुलिक, **5.** प्रशासन से सम्बंधित ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन व सुनिश्चित अवधारणाओं तथा परिकल्पनाओं का विकसित होना इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न 3- **1.** असत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी; 2008, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, 2008,
2. व्हाइट, एल0डी0; 1968, इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्टेशन, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. निग्रो, फेलिक्स ए0 एवं निग्रो, लायड जी0; 1980, मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, हार्पर और रो, न्यूयार्क।

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पेरी, जे0; 1989, हैन्डबुक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन फ्रांसिस्को।
2. वाल्दो, डवाइट, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशन साईंसेज।

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिए तथा इसके प्रमुख लक्षणों को स्पष्ट कीजिये।
2. लोक प्रशासन की प्रकृति के सन्दर्भ में एकीकृत एवं प्रबंधकीय दृष्टिकोणों को स्पष्ट कीजिये।
3. लोक प्रशासन विज्ञानं है अथवा कला? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

4. लोक प्रशासन के विषय-क्षेत्र को स्पष्ट कीजिये।
5. लोक प्रशासन विषय के महत्व पर प्रकाश डालिए। क्या भूमण्डलीकरण के इस युग में इस विषय का महत्व कम हुआ है?

इकाई- 2 लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 परम्परागत दृष्टिकोण
    2.2.1 दार्शनिक उपागम
    2.2.2 वैधानिक उपागम
    2.2.3 ऐतिहासिक उपागम
    2.2.4 संस्थागत-संरचनात्मक उपागम
2.3 आधुनिक दृष्टिकोण
    2.3.1 वैज्ञानिक उपागम
    2.3.2 व्यवहारवादी उपागम
    2.3.3 पारिस्थितिकीय उपागम
    2.3.4 घटना या प्रकरण पद्धति
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात आप लोक प्रशासन विषय के अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र तथा महत्व को समझ चुके होंगे। इस इकाई में हम आपको इस विषय के अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों या उपागमों से अवगत करायेंगे।

जिस प्रकार लोक प्रशासन की परिभाषा, प्रकृति तथा विषय क्षेत्र के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है, उसी प्रकार इस बात को लेकर भी मतभेद है कि इस विषय का अध्ययन किस दृष्टि से किया जाय अर्थात दार्शनिक, वैधानिक, संस्थागत, ऐतिहासिक, या फिर वैज्ञानिक व्यवहारवादी, पारिस्थितिकीय या प्रकरण प्रधान दृष्टि से। दूसरे शब्दों में लोक प्रशासन के अध्ययन के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण या उपागम प्रचलित हैं।

इस इकाई के अध्ययन के वाद आप लोक प्रशासन के परम्परागत एवं आधुनिक दृष्टिकोणों की समीक्षा कर सकेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोणो या उपागमों से अवगत होंगे।

- इन उपागमों या दृष्टिकोणों में अन्तर कर सकेंगे।
- इनके गुण-दोषों को जान सकेंगे।
- यह तय कर सकेंगे कि लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण क्या होना चाहिए?

2.2 परम्परागत दृष्टिकोण

परम्परागत दृष्टिकोण के अन्तर्गत लोक प्रशासन के अध्ययन में निम्नलिखित उपागमों को सम्मिलित किया जा सकता है-

2.2.1 दार्शनिक उपागम

यह उपागम लोक प्रशासन के अध्ययन का सबसे प्राचीन उपागम है। यह इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन कैसा होना चाहिए? महाभारत का 'शांतिपर्व', प्लेटो रचित 'रिपब्लिक', हॉब्स की रचना, 'लेवियाथन', लॉक रचित 'ट्रीटाइज ऑफ सिविल गवर्मेन्ट' इत्यादि रचनाओं में इस दृष्टिकोण की झलक मिलती है।

आधुनिक काल में लोक प्रशासन को एक दर्शन के रूप में देखने की आवश्यकता पर अनेक विद्वानों ने बल दिया है, जिनमें मार्शल डिमॉक, क्रिस्टोफर हॉगकिन्सन, चेस्टर बनार्ड, साइमन, थाम्पसन इत्यादि के नाम प्रमुख हैं। इन विद्वानों की मान्यता है कि राज्य की नीतियों को सत्यनिष्ठा एवं कुशलतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए। प्रशासन का दर्शन प्रशासन के विज्ञान की अपेक्षा अधिक व्यापक होना चाहिए तथा लोक प्रशासन को उन सभी तत्वों की ओर ध्यान देना चाहिए, जिनका समावेश प्रशासकीय क्रिया में होता है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रशासन का सम्बन्ध लक्ष्य तथा साधन दोनों से है। इन दोनों का कुशलतापूर्वक समन्वय ही प्रशासन के उत्कृष्टता की कसौटी है। दूसरे शब्दों में, लोक प्रशासन के दर्शन का प्रयोजन हमारे लक्ष्यों को पारिभाषित करना तथा उनकी प्राप्ति के लिए समुचित साधनों की खोज करना है। लोक प्रशासन का कार्य हमारे सामाजिक और भौतिक पर्यावरण के अविवेकपूर्ण तथ्यों पर मर्यादा लगाकर उन्हें नियंत्रित करना होता है। वर्तमान समय में लोक प्रशासन का मूल उद्देश्य समस्त समाज के लिए श्रेष्ठ जीवन की स्थितियों का निर्माण करना है।

चार्ल्स बेयर्ड के अनुसार, 'सभ्य शासन तथा स्वयं सभ्यता का भी भविष्य हमारी उस क्षमता पर निर्भर करता है कि हम प्रशासन को एक ऐसे विज्ञान, दर्शन और व्यवहार के रूप में विकसित कर पाते हैं या नहीं, जो सभ्य समाज के कार्यों को पूरा करने में समर्थ हो।'

इस प्रकार दार्शनिक उपागम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और यह अपनी परिधि में सभी प्रकार की प्रशासकीय क्रियाओं को समेट लेता है। इसका ध्येय इन क्रियाओं में अन्तर्निहित सिद्धान्तों और उद्देश्यों का पता लगाना होता है।

दार्शनिक उपागम की आलोचना इस आधार पर की जा सकती है कि इसमें केवल लोक प्रशासन के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया गया है अर्थात प्रशासन कैसा होना चाहिए? लेकिन इससे हमें वास्तविक प्रशासकीय स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः यह दृष्टिकोण अपूर्ण है।

2.2.2 वैधानिक उपागम

दार्शनिक उपागम या दृष्टिकोण के पश्चात लोक प्रशासन का अध्ययन सामान्यतया वैधानिक दृष्टिकोण से करने की परम्परा रही है। यह एक व्यवस्थित उपागम है जिसका मूल यूरोप की परम्परा में व्याप्त है। यूरोप में लोक

प्रशासन का विकास कानून के अन्तर्गत हुआ तथा वहाँ वैधानिक दृष्टि से ही इस विषय के अध्ययन पर बल दिया जाता है। इस उपागम का विकास उस समय हुआ था जब राज्य के कार्य अत्यन्त सरल तथा क्षेत्र अत्यन्त सीमित थे।

इस उपागम में लोक प्रशासन के अध्ययन को संविधानों में प्रयुक्त भाषा, विधि संहिताओं, प्रकाशित अधिनियमों तथा न्यायिक निकायों के निर्णयों पर आधारित किया जाता है।

इस उपागम का अनुसरण सबसे अधिक जर्मनी, फ्रान्स तथा बेल्जियम जैसे यूरोपियन देशों में हुआ है। इन देशों में लोक विधि को दो प्रमुख शाखाओं में विभाजित कर दिया गया है, यथा संवैधानिक विधि तथा प्रशासकीय विधि। इन देशों में राजनीति का अध्ययन प्रधानतः संवैधानिक विधि की दृष्टि से तथा प्रशासन का अध्ययन प्रशासकीय विधि की दृष्टि से किया जाता है। यही कारण है कि इन देशों में उच्च असैनिक अधिकारियों की भर्ती तथा प्रशिक्षण के समय वैधानिक अध्ययन के ऊपर ही अधिक बल दिया जाता है। इस उपागम को इंग्लैण्ड और अमेरिका में भी समर्थन प्राप्त हुआ है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि लोक प्रशासन वैधानिक ढ़ाँचे के अन्तर्गत कार्य करता है, अतः उस ढ़ाँचे पर प्रकाश डालने के लिए यह उपागम उपयोगी है। परन्तु इस उपागम की एक सीमा यह है कि यह प्रशासन की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि की सर्वथा उपेक्षा करता है। परिणामस्वरूप प्रशासन का वैधानिक अध्ययन औपचारिक एवं रूढिवादी बन जाता है तथा उसमें प्रशासकीय कार्यकलाप तथा व्यवहार के लिए सजीव आधारों का कोई बोध ही नहीं रह पाता।

2.2.3 ऐतिहासिक उपागम

लोक प्रशासन के अध्ययन का ऐतिहासिक उपागम भी अति प्राचीन है। भूतकालीन लोक प्रशासन का अध्ययन इसके माध्यम से किया जाता है और सूचनाऐं कालक्रम की दृष्टि से संग्रहित की जाती हैं तथा उनकी व्याख्या की जाती है। गौरवशाली अतीत से युक्त समाज में यह पद्धति अत्यधिक लोकप्रिय और प्रशासकीय प्रणाली के अनोखेपन को निर्धारित करने में सहायक होती है।

यह दृष्टिकोण वर्तमानकालीन प्रशासकीय संस्थाओं एवं प्रणालियों को पिछले अनुभवों के आधार पर देखने की चेष्टा करता है। वास्तव में अनेक प्रशासकीय संस्थाओं को उनके अतीत के आधार पर ही समझा जा सकता है और यह ऐतिहासिक उपागम द्वारा ही सम्भव है। उदाहरण के लिए, भारत के वर्तमान प्रशासन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्राचीन काल से लेकर अब तक देश में जिस प्रकार प्रशासकीय संस्थाओं का विकास हुआ है उसके बारे में जानकारी प्राप्त करें। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इस उपागम के माध्यम से प्रशासन की समस्याओं को समझने का प्रयत्न किया गया है। इस सम्बन्ध में एल0 डी0 व्हाइट की दो पुस्तकें 'द फेडरलिस्ट' तथा 'जेफेरसोनियन' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहली पुस्तक 1948 में प्रकाशित हुई थी और दूसरी 1951 में तथा इनमें अमेरिकी गणतंत्र के प्रथम चालीस वर्षों के संघ प्रशासन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया हैं।

प्रशासन के ऐतिहासिक उपागम से मिलता जुलता संस्मरणात्मक उपागम है। इस उपागम का अर्थ है प्रसिद्ध तथा वरिष्ठ प्रशासकों के अनुभवों तथा उनके कार्यों के अभिलेख के अध्ययन की प्रणाली। ये संस्मरण चाहे स्वयं उन्होंने लिखे हों अथवा दूसरों ने। हर स्थिति में इनसे प्रशासकीय समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें एक कठिनाई यह है कि सार्वजनिक कार्यकर्ताओ की जीवन गाथाओं में प्रशासकीय कार्यों की अपेक्षा राजनीतिक महत्व की बातों पर बल दिया जाता है। अतः इस उपागम को उपयोगी बनाने के लिए इस कमी को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐतिहासिक तथा संस्मरणात्मक दृष्टिकोण प्रशासन के अतीत के आधार पर उसके वर्तमान स्वरूप के कुछ पहुलुओं पर भले ही प्रकाश डालता हो, लेकिन वर्तमान प्रशासन के समक्ष कई ऐसी चुनौतियां या समस्याएँ है, जिनका निराकरण केवल अतीत के अनुभव के आधार पर नहीं किया जा सकता। उदाहरणस्वरूप- कम्प्यूटर के इस युग में साईबर क्राइम की समस्या। अतः केवल ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से लोक प्रशासन के वर्तमान स्वरूप को समग्र रूप में नहीं समझा जा सकता।

2.2.4 संस्थागत-संरचनात्मक उपागम

यह उपागम लोक प्रशासन का अध्ययन औपचारिक दृष्टि से करता है। इस दृष्टिकोण के समर्थक सार्वजनिक संस्थाओं के औपचारिक ढ़ाँचे तथा उनके कार्यों पर ध्यान देते हैं। दूसरे शब्दों में, इस उपागम के अन्तर्गत सरकार के अंगों तथा भागों का अध्ययन किया जाता है, जैसे-कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, विभाग, सरकारी निगम, मण्डल और आयोग, बजट बनाने का रचना-तंत्र, केन्द्रीय कर्मचारी अभिकरण इत्यादि। जहाँ तक इस उपागम में इन संस्थाओं द्वारा कार्यान्वित कार्यों का उल्लेख होता है, यह यथार्थवादी है। परन्तु इस यथार्थवाद के साथ कभी-कभी संगठन एवं प्रक्रियाओं में सम्भावित सुधारों का भी सुझाव दिया जाता है।

इस दृष्टिकोण को यांत्रिक दृष्टिकोण भी कहा जाता है, क्योंकि यह प्रशासन को एक यन्त्रवत इकाई मानता है। यह संगठनों के व्यवस्थित विश्लेषण पर आधारित सबसे पुराने निरूपणों में से एक है, इसलिए इसे परम्परागत या शास्त्रीय दृष्टिकोण की भी संज्ञा दी जाती है। हेनरी फेयोल, लूथर गुलिक, एल0एफ0 उर्विक, एम0 पी0 फॉलेट, ए0सी0 रैले, जे0 डी0 मूने आदि विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, प्रशासन, प्रशासन होता है, चाहे उसके द्वारा किसी प्रकार का कार्य किसी परिप्रेक्ष्य में क्यों न सम्पादित किया जाय। इसमें अतिरिक्त प्रशासकीय पद्धति के महत्वपूर्ण तत्वों तथा सभी प्रशासकीय संरचनाओं में सामान्य विशेषताओं या तत्वों को स्वीकार किया जाता है। इसका उद्देश्य प्रशासनिक संगठन के निश्चित सिद्धान्तों का विकास करना है।

हेनरी फेयोल ने अपनी पुस्तक 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल एडमिनिस्ट्रेशन' में प्रशासन के पांच कार्यों- नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय एवं नियंत्रण का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में व्यापक विश्लेषण लूथर गुलिक और एल0एफ0 उर्विक द्वारा 1937 में सम्पादित 'पेपर्स ऑन द साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में किया गया। गुलिक ने प्रशासन के कर्तव्यों को 'पोस्डकार्ब' शब्द में संग्रहीत किया है, जिसका प्रत्येक अक्षर प्रशासन के विशेष कार्य का उल्लेख करता है-

1. Planning; नियोजन- संपन्न किये जाने वाले कार्यों का निर्धारण तथा उद्यम के निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्हें सम्पन्न करने के तरीकों का निर्धारण।
2. Organization; संगठन बनाना- सत्ता के औपचारिक स्वरूप की स्थापना करना तथा उनके माध्यम से निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य को विभिन्न भागों में व्यवस्थित, पारिभाषित एवं समन्वित करना।
3. Staffing; कर्मचारियों की नियुक्ति करना- कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा उनके कार्यों के अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना।
4. Direction; निर्देशन करना- निर्णय लेना और उन्हे विशिष्ट और सामान्य आदेशों और निर्देशों का रूप प्रदान करना।

5. Coordination; समन्वय- कार्य के विभिन्न भागों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य।
6. Reporting; प्रतिवेदन- कार्य स्थिति के विषय में कार्यपालिका को सूचित करना जिसमें स्वयं को तथा अधीनस्थो को आलेखों, अनुसंधान तथा निरीक्षण के द्वारा सूचित करना।
7. Budgeting; बजट बनाना- आर्थिक योजना, लेखांकन तथा नियंत्रण के रूप में बजट बनाने सम्बन्धित सभी कार्य।

अपने गुण व दोषों के साथ पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण प्रशासनिक प्रक्रियाओं में एक प्रचलित दृष्टिकोण रहा है। संस्थात्मक-संरचनात्मक दृष्टिकोण की कई दृष्टियों से आलोचना की जाती है-

1. हरबर्ट साइमन के अनुसार इस दृष्टिकोण में यह स्पष्ट नहीं होता कि किस विशेष स्थिति में कौन सा सिद्धान्त महत्व देने योग्य है। उन्होंने प्रशासन के सिद्धान्तों को प्रशासन की कहावतें मात्र कहा है।
2. इस दृष्टिकोण से सम्बन्धित सभी विचारकों में प्रबन्ध की ओर झुकाव नजर आता है। वे केवल प्रबन्ध की समस्याओं से चिन्तित थे ना कि प्रबन्ध तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित अन्य संगठनात्मक समस्याओं के विषय से।
3. यह एक संकुचित विचार है जो संगठन में उनके व्यक्तियों को उनके साथियों से अलग रखकर निरीक्षण करने पर बल देता है। यह कार्य करने वाले मनुष्यों की अपेक्षा कार्य के विषय में अधिक चिन्तित है।
4. इस दृष्टिकोण से लोक प्रशासन के अर्थ एवं क्षेत्र का पूरा बोध नहीं होता और न ही लोक प्रशासकों के मार्गदर्शन की दृष्टि से उनका महत्व है।
5. उपर्युक्त कमियों के वावजूद संस्थागत-संरचनात्मक दृष्टिकोण की पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती।
6. इस दृष्टिकोण ने ही सर्वप्रथम इस बात पर बल दिया कि प्रशासन को एक स्वतन्त्र क्रिया मानकर उसका बौद्धिक अन्वेषण किया जाना चाहिए।
7. सबसे पहले इस दृष्टिकोण ने ही प्रशासन के क्षेत्र में अवधारणाओं और शब्दावली पर बल दिया, जो इस क्षेत्र के परवर्ती शोध का आधार बनी।
8. इस दृष्टिकोण की कमियों ने संगठन तथा उसके व्यवहार के भावी शोध की प्रेरणा प्रदान की।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्थागत संरचनात्मक दृष्टिकोण लोक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। किन्तु इस उपागम से किसी संगठन के व्यावहारिक रूप का सही ज्ञान नहीं होता।

अभ्यास प्रश्न- 1

1. लोक प्रशासन के अध्ययन के चार परम्परागत उपागमों के नाम लिखिए।
2. दार्शनिक उपागम इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन कैसा होना चाहिए? सत्य/असत्य
3. संस्थागत उपागम लोक प्रशासन का अध्ययन अनौपचारिक दृष्टि से करता है। सत्य/असत्य
4. 'पोस्डकार्ब' शब्द का अर्थ बताइए।

2.3 आधुनिक दृष्टिकोण

लोक प्रशासन के अध्ययन के आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत निम्नलिखित उपागमों को सम्मिलित किया जा सकता है-

2.3.1 वैज्ञानिक अथवा तकनीकी उपागम

बीसवीं सदी के आरम्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका के 'वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन' ने लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक उपागम के प्रयोग को शामिल किया। वैज्ञानिक प्रबन्ध वस्तुतः उस प्रयास का परिणाम था जिसके द्वारा सरकार के कार्यों के परिचालन में वैज्ञानिक चिन्तन को लागू किया गया। इस आन्दोलन का सूत्रपात एफ0 डब्ल्यू0 टेलर नामक एक इंजीनियर ने किया था। कालान्तर में अमेरिका में ऐसे लोगों की संख्या में पर्याप्त रूप से वृद्धि हो गयी जो यह मानते थे कि मनुष्यों के प्रबन्ध का कार्य यथार्थ में एक वैज्ञानिक कार्य है, जिसके लिए ज्ञान का एक निकाय निर्मित किया जा सकता है। यह ज्ञान कम या अधिक मात्रा में पूर्ण हो सकता है और यह पर्यवेक्षण तथा अनुभव के विश्लेषण पर आधारित होता है। इस ज्ञान के चार भाग हैं, पहला- उन कार्यों का विश्लेषण जिन्हें करने के लिए लोगों को कहा जाता है, दूसरा- व्यक्तियों का उन कार्यों के साथ समायोजन, तीसरा- मानवीय अनुभव से प्राप्त ज्ञान के आधार पर कार्यों को व्यवस्थित तथा सह-वर्णित करना तथा चौथा- निर्धारित कार्यों का प्रत्येक समूह के साथ समायोजन। इसके अन्तर्गत नेतृत्व, संचार, सहभाग तथा मनोबल को शामिल किया जा सकता है।

प्रबन्ध के अध्ययन का प्रारम्भ व्यापार के साथ हुआ था, परन्तु अब उसका प्रयोग बड़ी मात्रा में लोक कार्यों के प्रबन्ध के लिए भी किया जाने लगा है। उदाहरण के लिए, अब मुख्य कार्यपालिका के लिए जनरल मैनेजर तथा व्यवस्थापिका के लिए संचालक मण्डल शब्दावलियों को प्रयुक्त किया जाने लगा है। स्पष्टतः इन शब्दावलियों को लोक प्रशासन के अध्ययन में नूतन प्रवृतियों का परिचायक समझा जाना चाहिए।

इस दृष्टिकोण के समर्थक प्रशासन से सम्बद्ध समस्याओं के ऊपर वैज्ञानिक ढंग से विचार करते हैं तथा वे उन समस्याओं का समाधान उन यंत्रों के माध्यम से खोजने का प्रयत्न करते है जिनका प्रयोग वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है।

डेविड लिलियनथल के अनुसार आज जनता की यह मांग है कि उनके देश की सरकारें आधुनिक प्रबन्ध के मूल सिद्धान्तों को अमल में लाये। इस प्रकार आज के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बात केवल यह नहीं है कि कार्य का निष्पादन किस प्रकार से हो, परन्तु यह भी है कि कौन सा कार्य किया जाय। इस आन्दोलन ने कुछ विशिष्ट प्रकार की पद्धतियों को विकसित करने में सहायता पहुँचायी है। जैसे- प्रकरण पद्धति तथा सांख्यिकीय परिमाप विधि। परन्तु इस पद्धति की अपनी सीमाऐं हैं।

यहाँ पर आपको यह ध्यान रखना होगा कि लोक प्रशासन के अध्ययन में हमें वैज्ञानिक उपागम या दृष्टिकोण के प्रयोग से उतने परिशुद्ध परिणामों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, जो हमें प्राकृतिक विज्ञानों से प्राप्त होते हैं। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि लोक प्रशासन के अध्ययन को राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, आचारशास्त्र तथा मनोविज्ञान से अलग नहीं किया जा सकता।

2.3.2 व्यवहारवादी उपागम

लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी उपागम इस विषय के परम्परागत उपागम के प्रति असंतोष के फलस्वरूप विकसित हुआ। यद्यपि इस उपागम का आरम्भ मानव सम्बन्ध आन्दोलन के साथ ही 1930 तथा 1940 वाले दशक में हुआ, लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसकी महत्ता काफी बढ गयी और उसने लोक प्रशासन के मुख्य उपागम का दर्जा प्राप्त कर लिया।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में व्यवहारवादी उपागम को विकसित करने का मुख्य श्रेय हर्बट साइमन को जाता है। इसके अतिरिक्त पीटर एम0 ब्लान, में ट्रन, वेडनर, रिग्स, एलम, राबर्ट ए0 डॉहल आदि का नाम भी इसके समर्थकों में लिया जा सकता है। इस विषय पर शुरू में लिखी गयी पुस्तकों में साइमन की पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त 1950 में साइमन तथा उसके दो सहयोगियों द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित होने के बाद इस उपागम का प्रभाव और बढ गया।

लोक प्रशासन के व्यवहारवादी दृष्टिकोण की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं-

1. व्यवहारवादी उपागम का यह आग्रह है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध प्रशासन में संलग्न मनुष्यों के व्यक्तित्व तथा सामूहिक व्यवहार से होना चाहिए। व्यक्तिगत तथा सामूहिक इच्छा, आकांक्षा एवं मूल्य प्रशासन में व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते है, इसलिए प्रशासन की समुचित जानकारी के लिए मानवीय तत्व को समझना एवं ध्यान में रखना आवश्यक है। हर्बर्ट साइमन के मत में वास्तविक एवं अर्थपूर्ण प्रशासनिक अध्ययन के लिए लोक प्रशासन के विद्वानों को लोकनीति पर कम ध्यान देकर उन लोगों के व्यवहार पर ध्यान देना चाहिए जो लोकनीति को पारिभाषित करते है और इस सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं।
2. यह उपागम संगठन के औपचारिक रूप पर ध्यान न देकर इसके वास्तविक कार्यकरण पर ध्यान देता है। इसके समर्थकों का ऐसा विश्वास है कि संगठन के वास्तविक कार्यकरण पर ध्यान देकर इस सम्बन्ध में कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।
3. इसके अन्तर्गत संगठन के सदस्यों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों एवं अनौपचारिक संचार प्रतिमानों पर अधिक बल दिया जाता है। परम्परागत उपागमों के अन्तर्गत श्रेष्ठ पदाधिकारियों द्वारा जारी किये गये औपचारिक आदेश एवं सर्कुलर तथा नीचे के पदाधिकारियों द्वारा श्रेष्ठ पदाधिकारियों को ही दोनों प्रकार के पदाधिकारियों के बीच सम्बन्ध एवं संचार साधन थे, परन्तु व्यवहारवादी उपागम के अन्तर्गत श्रेष्ठ पदाधिकारियों एवं अधीनस्थ पदाधिकारियों के बीच सम्पर्क एवं संचार के अनौपचारिक साधन भी उतने ही महत्वपूर्ण माने जाने लगे हैं।
4. यह उपागम परिमाणामात्मक पद्धति के इस्तेमाल पर बल देता है। प्राकृतिक विज्ञान की भाँति प्रयोगशाला तथा अन्य सांख्यिकी तरीकों के इस्तेमाल के माध्यम से यह निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करता है। इस प्रकार यह पद्धति प्रशासकीय समस्याओं के अध्ययन एवं उनके समाधान के लिए वैज्ञानिक पद्धति पर बल देती है। यह पर्यवेक्षण, साक्षात्कार, सर्वेक्षण, प्रकरण पद्धति इत्यादि विधियों के प्रयोग को आवश्यक मानता है।
5. यह अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण में विश्वास करता है। व्यवहारवादियों का मत है कि लोक प्रशासन का अध्ययन अन्य सामाजशास्त्रों से बिल्कुल पृथक ढंग से नहीं किया जा सकता, क्योंकि मानव क्रियाओं के मूल में ऐसे अभिप्रेरक पाये जाते हैं, जिन्हें समाजशास्त्र, आर्थिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण से प्रेरणा मिलती है। अतः इसका अध्ययन तभी सम्भव है जब समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा मनोविज्ञान जैसे सामाजशास्त्रों की सहायता ली जाय।
6. इस उपागम का उद्देश्य मूल्यों पर आधारित निर्णयों के स्थान पर यथार्थ पर आधारित निर्णयों को विकसित करना है।

7. यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन के औपचारिक संगठन एवं वैधानिक संरचना की अनदेखी करता है, जोकि उचित नहीं है। यदि एक ओर मानवीय व्यवहार को समझे बिना प्रशासनिक संगठन को समझना मुश्किल है, तो दूसरी ओर यह ध्यान देना भी आवश्यक है कि संगठन का वैधानिक एवं औपचारिक रूप भी मानव व्यवहार को प्रभावित करता है।
8. यह प्रशासनिक संगठन को राजनीतिक वातावरण से स्वायत्त मानकर राजनीतिक प्रक्रिया की उपेक्षा करता है। जबकि प्रशासनिक व्यवस्था एक राजनीतिक व्यवस्था की उप-व्यवस्था है। राजनीति तथा राजनीतिक शक्ति ही प्रशासन के लक्ष्य निर्धारित करते हैं।
9. यह लोक प्रशासन के अध्ययन को मूल्य स्वतंत्र तथा तटस्थ बनाना चाहता है, जिसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। ऐसा सिद्धान्त जो समाज के व्यापक हित में वांछित और अवांछित के प्रश्न की उपेक्षा करता है, न तो सही प्रकार से विकास को गति दे सकता है और न ही सही परिप्रेक्ष्य दे सकता है।
10. यह न तो संगठन की कार्यपद्धति की बेहतरी और न ही संगठन में निर्णय निर्माण प्रक्रिया को सुधारने के लिए कोई ठोस सुझाव देता है।
11. अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण पर बल देकर व्यवहारवाद लोक प्रशासन के क्षेत्र को इतना व्यापक बना दिया है कि यह तय कर पाना मुश्किल है कि इसमें किन विषयों को सम्मिलित किया जाय तथा किन विषयों को नहीं।
12. लोक प्रशासन में परिमापीकरण तथा पर्यवेक्षण उस हद तक सम्भव नहीं है, जिस हद तक यह प्राकृतिक विज्ञानों में सम्भव है।

उपर्युक्त कमियों के बावजूद व्यवहारवादी उपागम लोक प्रशासन का एक लोकप्रिय उपागम बन चुका है। इस उपागम की लोकप्रियता ने कई नई अध्ययन प्रणालियों के विकसित हो ने में सहायता पहुँचाई है।

2.3.3 पारिस्थितिकीय उपागम

इस उपागम का उद्-भव तृतीय विश्व की प्रशासनिक समस्याओं के अध्ययन के सन्दर्भ में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के अनेक देश औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुए। उनके समक्ष जन आंकाक्षाओं की पूर्ति हेतु राष्ट्र निर्माण तथा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की बड़ी चुनौती थी। पश्चिमी विद्वानों ने जो इन देशों में बहुत से देशों के सलाहकार के रूप में कार्य कर रहे थे, अनुभव किया कि पश्चिमी संगठनात्मक प्रतिमान तृतीय विश्व के समाजों में वास्तविकता की व्याख्या करने में असफल थे। इसी सन्दर्भ में पारिस्थितकीय दृष्टिकोण का विकास हुआ।

यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि प्रशासन एक निश्चित परिवेश या वातावरण में रहकर कार्य करता है। प्रशासन उस परिवेश को प्रभावित करता है तथा स्वयं उससे प्रभावित भी होता है। अतः प्रशासन को समझने के लिए दोनों के बीच की पारस्परिक क्रिया को समझना आवश्यक है।

'पारिस्थितिकीय' शब्द जीव विज्ञान से लिया गया है जो जीवों तथा उनके परिवेश के अन्तर-सम्बन्धों की व्याख्या करता है। जिस प्रकार एक पौंधे के विकास के लिए एक विशेष प्रकार की जलवायु मिट्टी, नमी तथा तापमान आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी समाज का विकास उसके अपने इतिहास, आर्थिक संरचना, मूल्यों, राजनतिक व्यवस्था आदि से जुड़ा होता है। अतः लोक प्रशासन की प्रकृति तथा समस्याओं को समझने के लिए उस सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है, जिसमें प्रशासन कार्य करता है।

जे0एम0 गॉस, राबर्ट ए0 डाहल तथा राबर्ट ए0 मर्टन ने लोक प्रशासन के अध्ययन में इस दृष्टिकोण की शुरूआत की थी, लेकिन इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण योगदान एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स का रहा है।

रिग्स के अनुसार प्रत्येक समाज की अपनी कुछ विलक्षण विशेषताऐं होती हैं जो उसकी उप-व्यवस्थाओं को प्रभावित करती है। चूँकि पश्चिमी देशों का समाजिक-आर्थिक परिवेश तृतीय विश्व के देशों से भिन्न रहा है, इसलिए विकसित देशों के लिए निर्मित सिद्धान्त या प्रतिमान तृतीय विश्व के देशों में लागू नहीं होते, इसलिए रिग्स ने तृतीय विश्व के देशों के सन्दर्भ में प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विश्लेषणात्मक ढ़ाँचे को विस्तृत किया है।

रिग्स ने वृहद स्तर पर मुख्य व्यवस्थाओं को श्रेणीबद्ध किया तथा उन श्रेणियों को प्रशासन जैसी सूक्ष्म या छोटी उप-व्यवस्थाओं पर लागू करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने श्रेणीकरण के लिए व्यापक व्यवस्थाओं को लिया तथा विकासशील समाजों में परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए तीन आदर्श रूपों- बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय तथा अल्पकार्यात्मक को विकसित किया। उनके अनुसार, एक बहुकार्यात्मक समाज में एक अकेला संगठन या संरचना बहुत से कार्य करती है। इसके विरूद्ध एक अल्पकार्यात्मक समाज में निश्चित कार्य करने के लिए अलग-अलग संरचनाऐं बनाई जाती हैं। परन्तु इन दोनों के बीच में अनेक ऐसे समाज हैं, जिनमें बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक समाज दोनों की विशेषताऐं लगभग समान पायी जाती हैं। ऐसे समाजों को समपार्श्वीय कहा जाता है।

रिग्स इस बात पर बल देता है कि कोई भी समाज पूर्ण रूप से बहुकार्यात्मक या अल्पकार्यात्मक नहीं कहा जा सकता। सामान्यतः सभी समाज प्रकृति में संक्रमणकालीन होते हैं। प्रत्येक समाज चाहे वह बहुकार्यात्मक है या अल्पकार्यात्मक, उसका चरित्र विभिन्न संरचनाओं एवं उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है।

अपने विश्लेषण में रिग्स ने बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक प्रारूपों का विकासशील देशों के समपार्श्वीय वस्तुस्थिति की व्याख्या करने के साधन के रूप में प्रयोग किया है।

रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की कई आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. यह प्रारूप एक सन्तुलन प्रारूप है जो व्यवस्था को सुरक्षित रखने में तो सहायता देगा, परन्तु व्यवस्था में कोई परिवर्तन करने में नहीं। यह सामाजिक परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया के विश्लेषण में सहायक नहीं है।
2. विशेष समाजों में रिग्स के प्रारूपों को क्रियान्वित करने में मूल्यांकन की समस्या उत्पन्न होती है। मूल्यांकन के अभाव में समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों की पहचान कठिन हो जाती है। सत्य तो यह है कि रिग्स के प्रारूप कुछ मान्यताओं पर आधारित है। परन्तु किसी अनुभव परस्त प्रमाण के अभाव में इस प्रकार की मान्यताओं को चुनौती दी जा सकती है।
3. रिग्स ने एक समपार्श्वीय समाज के सकारात्मक चरित्र को इतना महत्व नहीं दिया, जितना इसके नकारात्मक चरित्र को।
4. इस उपागम में कई ऐसे नये शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनके सही अर्थ को समझना मुश्किल है।
5. समाजों का बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों के रूप में वर्गीकरण पूँजीवादी व्यवस्था में अन्तनिर्हित मूल्यों पर आधारित है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण विषय सामग्री तथा विश्लेषण दोनों दृष्टि से एक समन्वित दृष्टिकोण है। यह विकासशील देशों की प्रशासनिक प्रक्रिया के परीक्षण में हमारी मदद करता है।

2.3.4 घटना या प्रकरण पद्धति

लोक प्रशासन की अध्ययन पद्धतियों में घटना या प्रकरण पद्धति एक अमेरिकी देन है। घटना या प्रकरण का अर्थ है- प्रशासन की कोई भी विशिष्ट समस्या जो किसी प्रशासकीय अधिकारी को हल करनी पड़ी हो तथा वास्तव में हल कर ली गयी हो। इस प्रकार की समस्या का अध्ययन करने के लिए घटना की परिस्थितियों का अभिलेख तैयार कर लिया जाता है। साथ ही यह ब्यौरा संग्रह किया जाता है कि निर्णय करने के लिए किन प्रक्रियाओं का आश्रय लिया गया और क्या कदम उठाये गये तथा जो भी निर्णय लिया गया, उसका तार्किक आधार क्या था? इसके उपरान्त परिणामों के आधार पर निर्णय का मूल्यांकन किया जाता है।

1940 में संयुक्त राज्य अमेरिका की सामाजिक अनुसंधान परिषद की लोक प्रशासन समिति ने घटना अध्ययन प्रकाशित करने का कार्य आरम्भ किया। अब तक नीति निर्माण, पुनर्संगठन तथा ऐसे ही अन्य अनके समस्याओं से सम्बद्ध कई घटनाओं की अध्ययन प्रकाशित की जा चुकी हैं।

इस पद्धति के अनुगामियों के मन में यह आशा है कि लोक प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में घटना अध्ययन किये जाने के उपरान्त प्रशासन के विषय में अनुभवसिद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन सम्भव हो जायेगा तथा शायद यह भी मुमकिन हो जायेगा कि ये घटना अध्ययन न्यायिक प्रथाओं और दृष्टान्तों की भाँति सही समाधान खोजने के काम में प्रशासक के लिए सहायक सिद्ध हो सके।

लेकिन इस पद्धति की भी अपनी सीमाऐं हैं। किसी घटना या प्रकरण विशेष के अध्ययन के आधार पर ही किसी सर्वमान्य या सर्वकालिक सिद्धान्त का प्रतिपादन सम्भव नहीं है। यहीं कारण है कि यह उपागम अभी तक लोक प्रशासन के अध्ययन का प्रमुख उपागम नहीं हो सका है।

अभ्यास प्रश्न- 2

1. वैज्ञानिक उपागम के प्रमुख प्रणेता कौन है?
2. वैज्ञानिक प्रबन्ध पर्यवेक्षण एवं अनुभव के विश्लेषण पर आधारित है। सत्य/असत्य
3. व्यवहारवादी उपागम संगठन के औपचारिक रूप पर ध्यान देता है। सत्य/असत्य
4. 'एडमिनिस्ट्रेटीव विहेवियर' नामक पुस्तक के लेखक कौन है?
5. पारिस्थितिकीय उपागम का विकास किन प्रशासनिक समस्याओं के अध्ययन के सन्दर्भ में हुआ?
6. रिग्स के अनुसार सामान्यतः सभी समाज प्रकृति में संक्रमणकालीन होते हैं। सत्य/असत्य
7. घटना या प्रकरण पद्धति के आधार पर किसी सर्वकालिक या सर्वमान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन सम्भव है। सत्य/असत्य

2.4 सारांश

उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि जहाँ परम्परागत रूप में लोक प्रशासन का अध्ययन दार्शनिक, वैधानिक, संस्थागत तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया जाता रहा है, वहीं आधुनिक काल में इस विषय को वैज्ञानिक, व्यवहारवादी, पारिस्थितिकीय तथा घटना अध्ययन पद्धतियों के माध्यम से समझने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन कोई भी अध्ययन पद्धति अपने आप में पूर्ण नहीं है। अतः लोक प्रशासन का अध्ययन भली प्रकार विभिन्न

उपागमों के समन्वय से ही सम्भव है। वास्तव में इन उपागमों की एक दूसरे से पृथकता और विरोध नहीं है, अपितु वे एक दूसरे के पूरक एवं सहायक हैं।

2.5 शब्दावली

उपागम- इसे अभिगम या दृष्टिकोण भी कहा जाता है।

संरचना- व्यवहार का वह स्वरूप जो किसी सामाजिक प्रणाली की मानक विशेषता बन गया हो। औपचारिक संगठन- ऐसा संगठन जिसमें रचना या संरचना पर बल दिया जाता है।

परिमाणात्मक पद्धति- ऐसी पद्धति जिसमें गणित एवं साख्यिकी की विधियों के प्रयोग पर बल दिया जाता है अन्तर-अनुशासनात्मक- जिसमें एक विषय का ज्ञान अन्य विषयों के ज्ञान से सम्बन्धित होता है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1 **1.** दार्शनिक, वैधानिक, ऐतिहासिक, संस्थागत-संरचनात्मक **2.** सत्य, **3.** असत्य, **4.** उपभाग 2.3.4 देखिए

अभ्यास प्रश्न - 2 **1.** एफ0डब्लू0टेलर, **2.** सत्य, **3.** असत्य, **4.** हर्बर्ट साइमन, **5.** तृतीय विश्व, **6.** सत्य, **7.** असत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य मोहित, (1998), न्यू हॉरिजन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
2. गोलम्बिस्की रॉवर्ट डी, (1977), पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डेवलपिंग डिसिप्लिन, माइसेल डेकर, न्यूयार्क।
3. बेलौन, कार्ल टी, (1980), आर्गनाईजेशन थ्योरी एण्ड न्यू पब्लिक एडमिनिस्टेशन, एलिन एण्ड बैकन (इंक) बोस्टन।
4. शरण, परमात्मा एवं चतुर्वेदी दिनेशचन्द (1985) लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रसाद, रविन्द्र डी, सम्पादित, 1989, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स, स्टरलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. रिग्स, फ्रेड डब्लू0 1964, एडमिनिस्ट्रेशन इन डेवलपिंग कन्ट्रीज, द थ्योरी ऑफ प्रिजमैटिक सोसाइटी, हॉघटोन मिफलिन, बोस्टन।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अध्ययन के परम्परागत उपागमों की विवेचना कीजिए।
2. लोक प्रशासन के अध्ययन के आधुनिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
3. लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी उपागम कितना उपयोगी है? व्याख्या कीजिए।
4. एफ0 डब्लू0 रिग्स द्वारा प्रस्तुत पारिस्थितिकीय उपागम की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
5. लोक प्रशासन के अध्ययन में वैज्ञानिक उपागम की महत्ता पर प्रकाश डालिए।

6. घटना या प्रकरण पद्धति पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई- 3 लोक प्रशासन और निजी प्रशासन

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानताऐं
3.3 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर
3.4 उदारीकरण के अन्तर्गत लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

दूसरी इकाई में आपको लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोणों से अवगत कराया गया। इस इकाई में हम आपको लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच अन्तर को स्पष्ट करेंगे।

सामान्यतया प्रशासन को 'लोक प्रशासन' एवं 'निजी प्रशासन' में वर्गीकत किया जाता है तथा यह माना जाता है कि कुछ समानताओं के बावजूद दोनों प्रकार के प्रशासन में मौलिक अन्तर है, परन्तु कुछ ऐसे भी विचारक हैं, जो यह मानते हैं कि सभी प्रकार के प्रशासन एक से होते हैं और सबकी आधारभूत विशेषताऐं एक सी होती हैं। दूसरे शब्दों, में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। ऐसी स्थिति में आपके मन में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठ रहा होगा कि वास्तव में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन एक जैसे हैं या दोनों में कुछ आधारभूत अन्तर है? कुछ विद्वानों का मानना है कि इन दोनों प्रकार के प्रशासन में जो अन्तर भी था वह उदारीकरण के इस युग में मिट चुका है। ऐसी स्थिति में इस दोनों प्रकार के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखा जाना चाहिए। अब आप यह जानने को उत्सुक होंगे कि उदारीकरण का 'लोक प्रशासन' एवं निजी प्रशासन के सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा है?

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन की समानताओं को समझ सकेंगे।
- इनके बीच अन्तर कर सकेंगे।
- उदारीकरण के अन्तर्गत लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के स्वरूपों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

3.2 लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में समानताऐं

हेनरी फेयोल, एम0पी0 फोलेट तथा एल0 उर्विक जैसे कुछ विचारक हैं जो यह मानते हैं कि सभी प्रकार के प्रशासन एक से होते है और सबकी आधारभूत विशेषताऐं एक समान होती है। वे लोक और निजी प्रशासन में कोई अन्तर नहीं मानते हैं। हेनरी फेयोल के शब्दों में ''अब हमारे समक्ष कोई प्रशासनिक विज्ञान नहीं है बल्कि केवल एक है जिसे लोक तथा निजी दोनों ही प्रशासनों के लिए समान रूप से भलीभांति प्रयोग किया जा सकता है।''

फेयोल के विचार से सहमत होते हुए और उस विचार को और अधिक स्पष्ट करते हुए उर्विक ने लिखा है कि ''यह बात गम्भीरतापूर्वक सोचना कठिन है कि पिछे से काम करने वाले व्यक्तियों का एक अलग जीव रसायन विज्ञान होता है, प्राध्यापकों का एक पृथक शरीर क्रिया ज्ञान तथा राजनीतिज्ञों का एक अलग रोग मनोविज्ञान होता है। वस्तुतः ये सब व्यक्तियों के लिए समान रूप से एक जैसे ही होते हैं।'' इसी प्रकार उर्विक के अनुसार, किसी संगठन के विशेष स्वरूप के प्रयोजनों के आधार पर प्रबन्ध प्रशासन का उपविभाजन करना गलत है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही प्रशासनों में बहुत सी बातें समान हैं। दोनों में अन्तर मात्रा का है, प्रकार का नहीं।

लोक तथा निजी दोनों प्रशासनों की समानताओं को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

1. प्रशासन में चाहे वह व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, समान रूप से संगठन की आवश्यकता होती है। यह संगठन लगभग समान सिद्धान्तों तथा गुणों पर आधारित होता है और प्रशासन का शरीर है। यदि मानवीय एवं भौतिक साधनों का उचित संगठन न किया जाए तो प्रशासन के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती।
2. दोनों प्रकार के प्रशासन की कार्यप्रणाली लगभग समान होती है। बड़े पैमाने के एक व्यावसायिक उद्यम का प्रशासन तथा एक बड़ी सरकारी सेवा का प्रशासन न्यूनाधिक रूप से एक ही रीति से सम्पन्न किया जाता है। दोनों प्रकार के प्रशासन में नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण की आवश्यकता होती है।
3. प्रबन्ध एवं संगठन सम्बन्धी अनके तकनीकें दोनों ही प्रकार के प्रशासन में समान रूप से अपनायी जाती है। फाइलें रखना, रिपोर्ट तैयार करना, नोटिंग तथा ड्राफ्टिंग करना, आदेश देना, हिसाब-किताब रखना, आंकड़े उपलब्ध करना आदि की पद्धति सार्वजनिक तथा निजी दोनों प्रकार के प्रशासनों में समान रूप से देखने को मिलती है।
4. दोनों प्रकार के प्रशासन के उत्तर दायित्व समान होते हैं। इसका कारण यह है कि पदाधिकारियों के ध्येय एक जैसे रहते हैं- अपने नियत कार्य-क्षेत्र में काम करते हुए उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक सामग्री को इस प्रकार प्रयुक्त करना, ताकि यथासम्भव अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकें।
5. दोनों ही प्रकार के प्रशासन की सफलता के लिए जनसम्पर्क आवश्यक है। प्रजातन्त्र में लोक प्रशासन जनता के प्रति उत्तर दायी होता है। निजी प्रशासन में भी प्रचार द्वारा जनता से निकट सम्पर्क स्थापित किया जाता है। यदि प्रबन्धकों से जनता का विश्वास उठ जाता है तो व्यापार को हानि उठानी पड़ती है।
6. दोनों ही प्रकार का प्रशासन कर्मचारियों की योग्यता और दक्षता पर निर्भर करता है। ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, परिश्रम, कुशलता, बौद्धिक स्तर, नेतृत्व आदि के गुण दोनों ही प्रशासनों के कर्मचारियों के लिए समान रूप से आवश्यक होते हैं। अच्छे कुशल सरकारी कर्मचारियों के कार्यमुक्त होने पर निजी उद्योग पुनः नियुक्ति देते हैं।

7. आधुनिक युग में निजी प्रशासन के क्षेत्र में कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, वेतनक्रम, सेवानिवृत्ति, पदच्युत करने के नियम तथा पेंशन आदि की वही व्यवस्था अपनायी जाती है जो सार्वजनिक क्षेत्र में अपनायी जाती है। नौकरशाही ढ़ाँचा, प्रशासनिक ज्ञान, नियुक्ति की परीक्षा पद्धति, शिकायतों का निपटारा तथा अनुशासन के नियम आदि ने व्यक्तिगत सेवाओं को सरकारी सेवाओं के समान बना दिया है।
8. दोनों ही प्रकार के प्रशासन समान रूप से विकास की ओर अग्रसर होते हैं। यह विकास आन्तरिक संगठन की दृढता और कुशलता पर निर्भर करता है। इसके लिए नये-नये सिद्धान्त, तकनीकें एवं उपकरण अपनाये जाते हैं तथा प्रशासन को आधुनिकतम बनाया जाता है। वस्तुतः दोनों प्रकार के प्रशासन को अधिक क्षमताशील तथा उन्नतिशील बनाने के लिए अन्वेषण की आवश्यकता होती है। नवीन अन्वेषणों द्वारा नवीन सिद्धान्त, विधाएँ तथा उपकरण आदि उपलब्ध कराये जाते हैं, जिनके परिणामस्वरूप कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

इस प्रकार लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन कई दृष्टियों से समान है।

3.3 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर

कुछ समानताओं के वावजूद लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन एक दूसरे से भिन्न है। लोक प्रशासन में ऐसे अनेक लक्षण हमें देखने को मिलते है जो निजी प्रशासन में देखने में नहीं आते। लोक तथा निजी प्रशासन के बीच असमानताओं के पक्ष में साइमन, एपलबी, सरजोसिया स्टाम्प आदि ने अपने विचार प्रकट किए हैं।

हर्बर्ट साइमन के अनुसार ''सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में सार्वजनिक प्रशासन राजनीति से परिपूर्ण नौकरशाही और लालफीताशाही वाला होता है, जबकि निजी प्रशासन राजनीति शून्य और चुस्ती से काम करने वाला होता है।''

इसी प्रकार पॉल एच0 एपलबी ने लोक प्रशासन की यह विशेषता बतायी है कि इसमें निजी प्रशासन की अपेक्षा सार्वजनिक आलोचना और जाँच की अधिक सम्भावना होती है।

निजी तथा लोक प्रशासन के अन्तर को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में उद्देश्यगत भिन्नता होती है। लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा करना होता है, जबकि निजी प्रशासन मुख्य रूप से लाभ की भावना से प्रेरित होता है। लोक प्रशासन का दायित्व न केवल जनता को सुरक्षा प्रदान करना बल्कि उनके बहुमुखी विकास की दशाऐं भी उपलब्ध कराना है, जबकि निजी प्रशासन ऐसे किसी दायित्व से बंधा हुआ नहीं होता और अपने हर कार्य को लाभ-हानि की दृष्टि से देखता है।
2. लोक प्रशासन का क्षेत्र एवं प्रभाव निजी प्रशासन की तुलना में व्यापक होता है। पाल एच0 एपलबी के अनुसार ''संगठित शासन समाज में विद्यमान या गतिशील प्रत्येक वस्तु को किसी भी रूप में अपने में समाविष्ट कर लेता है, उससे टकराता है और उसे प्रभावित करता है।'' वर्तमान समय में राज्य ने अपने परम्परागत दृष्टिकोण का परित्याग करके आर्थिक क्षेत्र में भी प्रवेश कर लिया है। वह रोजगार प्रदान करने, उद्योग चलाने तथा निर्माण कार्य करने से लेकर सामाजिक सुरक्षा तक के समस्त कार्यों को पूर्ण करता है। निजी प्रशासन का क्षेत्र एवं प्रभाव सीमित है, क्योंकि व्यक्तिगत प्रशासन का सम्बन्ध निजी संस्थानों के कार्य-क्षेत्रों तक ही सीमित रहता है।
3. निजी प्रशासन की जनता के प्रति जबावदेही उस रूप में नहीं होती, जिस रूप में लोक प्रशासन की। लोक प्रशासन को समाचार पत्रों तथा राजनीतिक दलों की आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है। कोई भी

विशिष्ट कदम उठाने से पूर्व प्रशासकों को इस बात पर सावधानी के साथ विचार करना पड़ता है कि उस पर जनता की सम्भावित प्रतिक्रिया क्या होगी? उस पर व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका का भी नियन्त्रण रहता है। इस तरह जनता के प्रति उत्तर दायित्व लोक प्रशासन का एक ऐसा लक्षण है जो निजी प्रशासन में नहीं पाया जाता।

4. लोक प्रशासन के अन्तर्गत व्यवहार में कुछ एकरूपता अथवा समानता पायी जाती है। इस प्रशासन में प्रशासकों द्वारा बिना किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किए समाज के सभी सदस्यों को वस्तुऐं तथा सेवाऐं प्रदान की जाती हैं। निजी प्रशासन में पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किया जा सकता है। दुकानदार उस व्यक्ति को उधार देने में संकोच नहीं करता जो उससे रोज सामान खरीदता है, लेकिन एक डाक क्लर्क रोजाना पोस्टकार्ड खरीदने वाले को उधार नहीं दे सकता। निजी प्रशासन में उन व्यक्तियों के प्रति अगाध रूचि प्रकट की जाती है जिनसे व्यवसाय को अधिक से अधिक लाभ हो सकता है।
5. लोक प्रशासन द्वारा समाज को प्रदान की जाने वाली अनेक सेवाऐं एकाधिकारी प्रवृत्ति की होती है। जैसे- सेना, रेल आदि के कार्य निजी स्तर पर नहीं किए जा सकते। इन विषयों पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है। निजी प्रशासन में इस प्रकार का एकाधिकार नहीं पाया जाता। एक ही क्षेत्र में अनेक उद्यम होते हैं तथा इनमें परस्पर प्रतिस्पर्द्धा रहती है।
6. लोक प्रशासन की अनेक क्रियाओं में एक प्रकार की अनिवार्यता होती है, जिसका निजी प्रशासन के क्षेत्र में अभाव होता है। देश की सुरक्षा, शांति और सुव्यवस्था, आदि ऐसे कार्य हैं जिनकी एक भी दिन अवहेलना नहीं की जा सकती।
7. लोक प्रशासन अपेक्षाकृत कानूनों एवं नियमों से अधिक नियमित होता है, जितना निजी प्रशासन नहीं होता है। इसमें कार्य संचालन की पद्धति, क्रय-विक्रय तथा टेण्डर आदि के निश्चित नियम होते हैं, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। जबकि निजी प्रशासन में सुविधानुसार कार्य किया जाता है तथा प्रक्रिया एवं नियमों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। इसमें पद्धति की जटिलता की अपेक्षा प्राप्त होने वाले परिणाम का ध्यान रखा जाता है।
8. लोक प्रशासन में प्रशासकीय कार्य की गति धीमी होती है तथा प्रक्रियात्मक कठोरता के परिणामस्वरूप लापरवाही, भ्रष्टाचार, अदक्षता जैसी प्रशासनिक बुराईयां उत्पन्न होती है। इस प्रशासन में प्रश्नों के उत्तर विलम्ब से दिए जाते हैं तथा प्रशासकीय तंत्र में शिथिलता आ जाती है। इसके प्रतिकूल निजी प्रशासन के क्षेत्र में प्रशासकीय कार्य तीव्र गति से सम्पन्न होते हैं और निर्णय लेने में बिलम्ब नहीं होता।
9. सेवा सुरक्षा की दृष्टि से भी लोक प्रशासन निजी प्रशासन से भिन्न होता है। सरकारी सेवाओं में कर्मचारियों को सुरक्षा का भरोसा होता है। निजी सेवाओं में मनोवैज्ञानिक रूप से कर्मचारी अपने को असुरक्षित समझते हैं। आर्थिक नुकसान की स्थिति में निजी उद्यम या तो पूरी तरह बन्द कर दिए जाते हैं या बहुत से कर्मचारियों की छटनी कर दी जाती है। ऐसी स्थिति में निजी प्रशासन के क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों को अपनी सेवा के स्थायित्व का कोई आश्वासन नहीं होता है। लोक सेवा में एक बार प्रवेश पा लेने पर आसानी से किसी कर्मचारी को नौकरी से निकाला नहीं जा सकता।

10. लोक प्रशासन शासन की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें शासन की बाध्यकारी शक्ति होती है। निजी प्रशासन में यह गुण नहीं होता है। यह न तो जनता का प्रतिनिधित्व करता है और न ही बाध्यकारी शक्ति रखता है।
11. लोक प्रशासन का स्वरूप राजनीतिक होता है। एपलबी का विचार है कि प्रशासन राजनीति है, क्योंकि इसका ध्येय लोक हित है। उन्हीं के शब्दों में ''इन तथ्यों पर बल देना आवश्यक है कि लोकप्रिय राजनीतिक प्रक्रियाएँ जो प्रजातन्त्र का स्तर हैं, केवल शासकीय संगठनों द्वारा ही कार्य करती हैं और सभी शासकीय संगठन केवल प्रशासकीय ही नहीं हैं, वरन् राजनीतिक जीवाणु भी हैं और उन्हें ऐसा होना भी चाहिए।'' निजी प्रशासन का स्वरूप राजनीतिक नहीं होता है। इसीलिए इसका विस्तार सीमित होता है तथा यह व्यक्तिगत हित का ध्यान रखता है।
12. लोक प्रशासन के विभिन्न विभागों में पारस्परिक सहयोग, सामंजस्य तथा समन्वय पाया जाता है। इसलिए वे एक-दूसरे के साथ सहयेाग की भावना से कार्य करते हैं। इसके विपरीत निजी प्रशासन में प्रतिस्पर्द्धा, ईष्या-द्वेष और प्रतियोगिता की भावना होती है। यहाँ विभिन्न प्रतिष्ठान एक-दूसरे को पीछे छोड़ने तथा एक-दूसरे से आगे निकलने में लगे रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक प्रशासन और निजी प्रशासन कई दृष्टियों से एक दूसरे से भिन्न हैं। लोक प्रशासन में जो लोक हित की भावना, जबावदेहिता, व्यवहार की एकरूपता, कानून और नियमों का अनुपालन, वित्त पर बाह्य नियन्त्रण इत्यादि विशेषताएँ पायी जाती हैं, वे निजी प्रशासन में नहीं पायी जाती। परन्तु फिर भी लोक प्रशासन और निजी प्रशासन दो भिन्न विधाएँ नहीं हैं, वरन् एक ही प्रशासन के दो भाग हैं। इनके बीच का अन्तर मात्रात्मक है, गुणात्मक नहीं।

अभ्यास प्रश्न- 1

1. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों में नियोजन एवं संगठन की आवश्यकता होती है। सत्य/असत्य
2. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में उद्देश्यगत भिन्नता होती है। सत्य/असत्य
3. लोक प्रशासन का क्षेत्र निजी प्रशासन की तुलना में संकुचित होता है। सत्य/असत्य
4. निजी प्रशासन की जनता के प्रति जबावदेहिता उस रूप में नहीं होती, जिस रूप में लोक प्रशासन की। सत्य/असत्य

3.4 उदारीकरण के अन्तर्गत लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन

कतिपय विद्वानों का यह मानना है कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस युग में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के मध्य संस्थागत विशिष्टताऐं लगातार धुंधली पड़ती जा रही हैं। इनके मध्य सीमा रेखा अस्पष्ट तथा अवास्तविक है और अब तो बिल्कुल समाप्ति की ओर है। लेकिन दूसरी ओर अधिकांश विद्वानों का मानना है कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के कारण लोक प्रशासन की भूमिका में थोड़ा परिवर्तन अवश्य हुआ है, लेकिन यह अब भी आधारभूत रूप से निजी प्रशासन से भिन्न है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में राज्य बनाम बाजार चर्चा का एक प्रमुख विषय बन गया है। इसका प्रमुख कारण लगभग दो दशक पूर्व साम्यवादी देश सोवियत संघ का विघटन तथा उदारवाद को विश्वव्यापी स्वरूप धारण करना है। ऐसा माना जा रहा है कि विकासशील देशों के आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकास की बागडोर राज्य के हाथों से छूटती जा रही है। राज्य विकासशील देशों के नियोजनात्मक विकास के कार्यों में अपनी भूमिका सीमित

करके नियामकीय कार्यों को बेहतर बनाने में लग गया है ताकि बाजार व्यवस्था बेहतर बनाई जा सके। राज्य को निजी उद्यमों की भांति बाजार प्रणाली में कूदना पड़ रहा है। परिणामस्वरूप विकासशील देशों में राज्य और बाजार में अन्तर का प्रतिशत सिमटता जा रहा है। इस आधार पर कुछ लोगों का यह मानना है कि आने वाले समय में लोक प्रशासन की वे सभी विशिष्टताऐं जो इसे निजी प्रशासन से अलग करती है बिल्कुल समाप्त हो जायेंगी।

इनमें कोई दो राय नहीं कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में राज्य का सिकुड़न हो रहा है और निजी क्षेत्र का विस्तार हो रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र में घाटे में चल रहे उद्योगों का विनिवेशीकरण किया जा रहा है और निजी उद्यमियों को अधिक से अधिक पूँजी निवेश के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी आधारभूत सुविधायें प्रदान करना पहले राज्य का मुख्य दायित्व समझा जाता था, लेकिन अब इन क्षेत्रों में भी निजी पूँजी निवेश को बढावा दिया जा रहा है। अब लोक प्रशासन में भी निजी प्रशासन की तरह 'मितव्ययिता' तथा दक्षता को अपनाने तथा आधुनिक वैज्ञानिक प्रबन्धन तकनीक के अधिक से अधिक प्रयोग करने पर बल दिया जा रहा है। निजी प्रशासन की तरह लोक प्रशासन में भी कार्य सम्पादन की गुणवत्ता को बढाना एक प्रमुख उद्देश्य बन गया है। आज लोक प्रशासन प्रमुख नियोक्ता नहीं रह गया है और बड़े पैमाने पर निजी प्रशासन में रोजगार के अवसर सृजित हो रहे है। सार्वजनिक सुविधाऐं तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के क्षेत्र में भी लोक प्रशासन की भूमिका सीमित हो गयी है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच के अन्तर को समाप्त मान लेना चाहिए?

सच तो यह है कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में लोक प्रशासन की भूमिका एवं इसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है। लोक प्रशासन में धीरे-धीरे नियंत्रणों, नियमनों, लाइसेंस परमिट आदि को कम करने के प्रयास किये गये हैं तथा इसकी भूमिका एक 'नियामक' एवं 'सुविधाकारक' के रूप में महत्वपूर्ण बन गयी है।

लेकिन उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस युग में भी लोक प्रशासन की कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो उसे निजी प्रशासन से अलग करती है-

1. 'जनहित संरक्षण' एवं 'लोक हित संरक्षण' आज भी लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य है, जबकि निजी प्रशासन का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है। इसमें कोई दो राय नहीं कि शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन सुरक्षा बीमा इत्यादि कई ऐसी सेवाऐं हैं जो पहले लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में ही आती थी, लेकिन आज निजी क्षेत्र बड़े पैमाने पर इन सेवाओं को प्रदान कर रहा है। लेकिन यहाँ भी इसका उद्देश्य लाभ कमाना ही होता है या कम से कम किसी प्रकार का नुकसान उठाना नहीं होता है। परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र में प्रदान की गयी शिक्षा या स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ सरकारी क्षेत्र की तुलना में काफी महंगी होती है जिसे समाज का निर्धन-वर्ग वहन नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा लोक प्रशासन के माध्यम से ही की जाती है। इस प्रकार लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में उद्देश्य गत भिन्नता उदारीकरण के इस युग में भी बनी हुई है।
2. प्रभाव की दृष्टि से भी लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच का अन्तर बना हुआ है। यद्यपि उदारीकरण में सरकार की भूमिका पहले से थोड़ी कम अवश्य हुई है, लेकिन एक 'नियामक' एवं 'नियंत्रक' के रूप में इसकी विशिष्टता अब भी बनी हुई है। जैसे-प्रदूषण फैलाने वाले उद्यमों पर रोक लगाना या निर्धारित मानदण्डों का उल्लंघन करने वाले उद्यमों को दण्डित करना इत्यादि लोक प्रशासन का ही दायित्व है। इसके अतिरिक्त आर्थिक उथल-पुथल या मंदी के दौर में देश को संकट से उबारना या महंगाई को नियंत्रित करना भी लोक शासन का ही दायित्व माना जाता है। देश में शांति और सुव्यवस्था

स्थापित करना या कमजोर वर्गों के हितों की सुरक्षा करना तो परम्परागत रूप लोक प्रशासन की विशिष्टता रही है जो आज भी बनी हुई है। अतः उदारीकरण के इस युग में भी लोक प्रशासन का प्रभाव क्षेत्र निजी प्रशासन की तुलना में व्यापक है।

3. जबाबदेहिता की दृष्टि से भी लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच का अन्तर बना हुआ है। सार्वजनिक होने के कारण लोक प्रशासन जनता के जाँच के लिए खुला होता है, सरकारी अधिकारियों द्वारा की गयी एक छोटी सी गलती भी समाचार-पत्रों की सुर्खियों में प्रकाशित होती है। संसद एवं विधान सभाओं में हंगामा खड़ा हो जाता है। पुलिस जैसे संगठनों को भी अपने कार्यों का स्पष्टीकरण देना होता है और यह सिद्ध करना होता है कि उनके किसी भी कार्य से जनता में रोष नहीं फैले। इस प्रकार का व्यापक प्रचार निजी प्रशासन में नहीं होता और न उस पर जनता तथा समाचार पत्रों की निगाह ही रहती है।
4. उदारीकरण के इस युग में भी लोक प्रशासन के कार्यों में लचीलापन देखने को नहीं मिलता। कानूनों, नियमों एवं विनियमों से बंधे होने के कारण सरकारी कर्मचारियों द्वारा कई बार आवश्यक कार्यों के सम्पादन में भी अनावश्यक विलम्ब होता है। इसके विपरीत निजी प्रशासन इस तरह के कानूनी बन्धनों से मुक्त रहते हैं। हर प्रकार के व्यवसाय के नियंत्रण के लिए सामान्य कानून जरूर होते है, किन्तु निजी फर्में बदलती हुई परिस्थितियों को देखते हुए अपने कार्यों में काफी लचीलापन अपनाती है। ऐसा करना केवल उन्हीं के लिए सम्भव है, क्योंकि उन पर लोक प्रशासन की तरह के कानूनी बन्धन नहीं होते।
5. लोक प्रशासन में किसी भी प्रकार के पक्षपात अथवा भेद-भाव पूर्ण व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जाती। अगर ऐसा होता है तो यह संसद, विधानसभाओं या जनसंचार के माध्यमों में तीव्र आलोचना का विषय बन जाता है तथा सम्बन्धित प्रशासनिक अधिकारियों के विरूद्ध सख्त कार्रवाई की मांग की जाती है। लेकिन निजी प्रशासन में प्रतियोगी मांगों के कारण खुलकर भेदभाव होता है। उत्पादनों के चयन तथा कीमतें निश्चित करने में व्यापारिक प्रतिष्ठान भेदभाव और पक्षपात करते हैं, जो व्यापारिक संस्कृति का एक अंग बन गया है।
6. लोक प्रशासन का संगठन एक व्यापारिक अथवा निजी संगठन से बहुत अधिक जटिल होता है। प्रकाशन की प्रत्येक इकाई सम्बन्धित लोक संगठनों के साथ जुड़ी होती है और उस इकाई को सम्बन्धित इकाईयों के साथ कार्य करना होता है। इसके विपरीत निजी प्रशासन अधिक संक्षेपता, पृथकता और स्वायत्ता के साथ कार्य करता है।
7. उदारीकरण की प्रक्रिया ने निजी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर सृजित किये हैं तथा उच्च तकनीकी अथवा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त युवकों को लोक प्रशासन की तुलना में अधिक आकर्षक वेतनमान एवं सुविधाऐं भी दी जा रही हैं। लेकिन फिर भी इनमें असुरक्षा का भाव बना रहता है, क्योंकि बाजार पर आधारित व्यापार अनिश्चितताओं से भरा होता है। इसके विपरीत लोक प्रशासन में कार्यरत कर्मचारियों में सुरक्षा का भाव होता है। अभी हाल ही में विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के दौरान जिस प्रकार निजी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर कर्मचारियों की छटनी की गयी, इससे हमारे युवकों में लोक प्रशासन के अन्तर्गत कार्य करने का रूझान एक बार फिर से बढ गया है। अतः सेवा सुरक्षा की दृष्टि से भी उदारीकरण के इस युग में लोक प्रशासन की विशिष्टता बनी हुई है।
8. लोक प्रशासन राजनीतिक प्रभाव और दबाव से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है, जबकि निजी प्रशासन इससे मुक्त होता है।

9. लोक प्रशासन अत्यधिक जटिल सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पर्यावरण में क्रियाशील होता है, जिसके परिणामस्वरूप कार्यक्रम प्रभाव एवं संगठनात्मक कार्यशीलता का मापन कठिन हो जाता है। निजी प्रशासन में संगठनात्मक कार्यशीलता का मापन अपेक्षाकृत सरल होता है।
10. लोक प्रशासन के ऊपर राष्ट्र निर्माण और भावी समाज को दिशा देने जैसी जिम्मेदारियां होती हैं, इसलिए यह सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने की ओर झुका होता है। निजी प्रशासन को सरकार द्वारा निर्धारित मार्गदर्शन का पालन करना होता है।

इस प्रकार उदारीकरण के युग में भी लोक प्रशासन एंव निजी प्रशासन के बीच अन्तर बना हुआ है, यद्यपि यह अन्तर पहले की अपेक्षा कम हुआ है।

अभ्यास प्रश्न- 2

1. उदारीकरण के अन्तर्गत प्रशासन में नियंत्रणों, नियमनों, लाइसेंस, परमिट आदि को कम करने के प्रयास किये गए हैं। सत्य/असत्य
2. उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन की भूमिका एक सुविधाकारक की बन गई है। सत्य/असत्य
3. उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है। सत्य/असत्य
4. जनहित संरक्षण आज भी लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य है। सत्य/असत्य

3.5 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में कुछ समानताऐं पायी जाती हैं, लेकिन फिर भी आधारभूत रूप से ये दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। दोनों ही प्रशासन में नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण की आवश्यकता होती है। प्रबन्ध की अनेक तकनीकें तथा कार्यप्रणाली भी समान होती है। लेकिन लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा करना होता है, जबकि निजी प्रशासन लाभ की भावना से प्रेरित होता है। निजी प्रशासन की तुलना में लोक प्रशासन का क्षेत्र एवं प्रभाव व्यापक होता है। निजी प्रशासन की जबावदेहिता जनता के प्रति उस रूप में नहीं होती जिस रूप में लोक प्रशासन की होती है। लोक प्रशासन के कार्यों में प्रक्रियात्मक कठोरता पाई जाती है, लेकिन निजी प्रशासन के कार्यों में लचीलापन। प्रशासकीय कार्यों की गति लोक प्रशासन में निजी प्रशासन की तुलना में धीमी होती है। लोक प्रशासन में कार्यरत कर्मचारियों में सुरक्षा का भाव होता है, जबकि निजी प्रशासन में कार्यरत कर्मचारियों में असुरक्षा का। लोक प्रशासन राजनीतिक प्रभाव और दबाव से प्रभावित होता है, जबकि निजी प्रशासन इन प्रभावों से मुक्त होता है। लोक प्रशासन में नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की प्रधानता निजी प्रशासन की तुलना में अधिक होती है।

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच अन्तर कुछ कम अवश्य हुआ है, लेकिन इनके मध्य की सीमा रेखा अब भी बनी हुई है। उदारीकरण के युग में भी लोक प्रशासन जनहित से प्रेरित होता है, ना कि व्यापारिक दृष्टिकोण से। सार्वजनिकता की विशेषता इस प्रशासन को विशिष्टता की स्थिति प्रदान करती है और निजी प्रशासन से अलग करती है। उदारीकरण के अन्तर्गत जहाँ कुछ क्षेत्रों में लोक प्रशासन की भूमिका में कटौती हुई है, वहीं दूसरी तरफ एक नियामक एवं सुविधाकारक के रूप में इसके लिए नई भूमिका का सृजन हुआ है।

3.6 शब्दावली

व्यावसायिक उद्यम- ऐसे उद्यम जिनका उद्देश्य लाभ कमाना होता है।
नियामक- दूसरों के कार्यों पर निगरानी तथा नियंत्रण रखने वाला।
सुविधाकारक- प्रक्रियात्मक कठिनाईयों को दूर कर किसी कार्य को सरल या सुविधाजनक बनाने वाला।
उदारीकरण- उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें आयात-निर्यात तथा पूँजी निवेश को बढावा देने के लिए आर्थिक नियमों को लचीला बनाया जाता है।
वैश्वीकरण- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी रूप से विश्व के विभिन्न देशों में एकीकरण की प्रवृत्ति जिसमें विभिन्न देशों में व्यक्ति, वस्तु या मुद्रा के आवागमन पर लगी रोक कम कर दी जाती है या हटा ली जाती है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1- **1.** सत्य, **2.** सत्य, **3.** असत्य, **4.** सत्य
अभ्यास प्रश्न - 2- **1.** सत्य, **2.** सत्य, **3.** असत्य, **4.** सत्य

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, (2008), लोक प्रशासन, लक्ष्मी नरायण अग्रवाल, आगरा।
2. निग्रो,फलिक्स ए0 एवं निग्रो लॉयड जी, (1980), मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, हार्पर और रो, न्यूयार्क।
3. व्हाइट, एल0डी0,(1968), इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. भट्टाचार्य, मोहित, (1998), न्यू हॉरिजन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्टेशन, जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
5. अरोड़ा, रमेश के (सम्पादित) (1979), पर्सपेक्टिव इन एडमिनिस्ट्रेटिव थ्योरी, एसोसियेटेड पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बार्कर, आर0जे0एस0,1972, एडमिनिस्ट्रेटिव थ्योरी एण्ड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन।
2. गॉर्टनर, हैरोल्ड एफ0, (1977), एडमिनिस्ट्रेशन इन द पब्लिक सेक्टर।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुछ समानताओं के बावजूद लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन एक दूसरे से मौलिक रूप से भिन्न है। विवेचना कीजिए।
2. क्या आप इस मत से सहमत हैं कि उदारीकरण के अन्तर्गत लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के मध्य सीमा रेखा अस्पष्ट एवं अवास्तविक है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
3. 'लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के मध्य अन्तर मात्रा का है, प्रकार का नहीं।' क्या आप इस मत से सहमत है? स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 4 लोक प्रशासन का विकास, नवीन लोक प्रशासन, नवीन लोक प्रबन्धन

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 लोक प्रशासन का विकास: प्राचीन काल
4.3 लोक प्रशासन का विकासः आधुनिक काल
    4.3.1 प्रथम चरण (1887-1926)
    4.3.2 द्वितीय चरण (1927-1937)
    4.3.3 तृतीय चरण (1938-1947)
    4.3.4 चतुर्थ चरण (1948-1970)
    4.3.5 पंचम चरण (1971-1990)
    4.3.6 षष्टम चरण (1991- अब तक)
4.4 नवीन लोक प्रशासन: पृष्ठभूमि
    4.4.1 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताऐं
    4.4.2 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य
        4.4.2.1 प्रासंगिकता
        4.4.2.2 मूल्य
        4.4.2.3 सामाजिक समता
        4.4.2.4 परिवर्तन
4.5 नवीन लोक प्रबन्धन
    4.5.1 नवीन लोक प्रबन्धन के दृष्टिकोण
    4.5.2 नवीन लोक प्रबन्धन के लाभ
    4.5.3 पारंपरिक लोक प्रबन्धन तथा पारंपरिक और नवीन लोक प्रबन्धन में अंतर
    4.5.4 नवीन लोक प्रबन्धन की आलोचना
    4.5.5 निष्कर्ष
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन के अध्ययन से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि लोक प्रशासन क्या है, इसके अन्तर्गत किन विषयों का अध्ययन किया जाता है, इसके अध्ययन के परम्परागत एवं आधुनिक दृष्टिकोणों में क्या अन्तर है तथा यह किस प्रकार निजी प्रशासन के भिन्न है?

किसी भी विषय के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए उसके अतीत को समझना आवश्यक होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अध्ययन के विषय को व्यापक सन्दर्भ में स्थापित करने में सहायक होता है तथा व्यावहारिक दृष्टि से भूतकाल के ज्ञान का उपयेाग वर्तमान में विषय के विकास की प्रक्रिया को आगे बढाने में सहायक होता है। प्रबन्ध की क्रिया के रूप में लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितना कि मनुष्य का सामाजिक जीवन। परन्तु अध्ययन की एक शाखा या विधा के रूप में इसका विधिवत विकास आधुनिक काल में ही सम्भव हो सका है। इस इकाई में लोक प्रशासन विषय के विकास के विभिन्न चरणों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में नवीन लोक प्रशासन के विषय में जानने के साथ-साथ नवीन लोक प्रबधन को समझाया गया है तथा नवीन लोक प्रबन्धन के साथ-साथ पारंपरिक लोक प्रबन्धन को स्पष्ट किया गया है और पारंपरिक लोक प्रबन्धन तथा नवीन लोक प्रबन्धन के बीच अंतर को स्पष्ट किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह स्पष्ट कर सकेंगे कि नवीन लोक प्रशासन किस प्रकार परम्परागत लोक प्रशासन से भिन्न है तथा इसकी क्या विशिष्टताएँ है तथा नवीन लोक प्रबन्धन क्या है?

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को जान सकेंगे।
- विभिन्न चरणों में विषय की प्रकृति में अन्तर कर सकेंगे।
- नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ एवं इसके महत्व के बारे में जान सकेंगे।
- विकासशील समाजों के लिए नवीन लोक प्रशासन की प्रासंगिकता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- नवीन लोक प्रबन्धन के विषय में जान पायेंगे।

4.2 लोक प्रशासन का विकास: प्राचीन काल

एक क्रियाकलाप के रूप में लोक प्रशासन प्राचीन काल से ही अस्तित्व में रहा है। इसके विभिन्न सिद्धान्त हमें प्राचीन भारत के ग्रन्थ- रामायण, महाभारत तथा विभिन्न स्मृतियों के साथ-साथ मुख्यतः कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलते हैं। अर्थशास्त्र राज्य के उद्देश्यों तथा उन उद्देश्यों की प्राप्ति के व्यावहारिक साधनों पर एक विशिष्ट तथा कुशल शोध प्रबन्ध माना जाता है। प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

कौटिल्य ने प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए 'राजनैतिक अर्थनीति' का मार्ग अपनाया है। प्रशासन के सिद्धान्त मुख्यतः राजा, मंत्रियों आदि के कार्यों द्वारा इंगित किये गये हैं। अधिकार आज्ञापालन तथा अनुशासन के सिद्धान्तों को राज्य के प्रशासन का केन्द्र माना गया है। इस बात पर बल दिया गया है कि कार्य विभाजन, श्रेणीबद्ध पदानुक्रम तथा समन्वय जैसे सिद्धान्तों को आन्तरिक संगठन की कार्यविधि में अपनाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सम्भवत: कौटिल्य ही ऐसे जाने-माने विचारक थे, जिन्होंने प्रशासन में सांख्यिकी के महत्व को मान्यता

दी। उनके चिंतन में जिस प्रकार राज्य के व्यापक दायित्वों, जैसे- अनाथ बच्चों, महिलाओं, वृद्धों कमजोर वर्गों इत्यादि का भरण-पोषण करना तथा जनसामान्य के हितों के लिए कल्याणकारी योजनाएं चलाना इत्यादि पर बल दिया गया है, इससे एक कल्याणकारी राज्य की झलक मिलती है जो बहुत कुछ आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य की तरह ही है।

यद्यपि कौटिल्य द्वारा वर्णित प्रशासकीय व्यवस्था राजतंत्रीय शासन के सन्दर्भ में थी, जोकि आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों की प्रशासनिक व्यवस्था से भिन्न है, फिर भी उसके द्वारा स्थापित लोक प्रशासन ही परम्पराएँ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये लोक प्रशासन विज्ञान तथा शासन कला के व्यवस्थित विश्लेषण पर जोर देते हैं।

इसी प्रकार के विवेचन में चीन में कन्फ्यूसियस द्वारा दिये गये उपदेशों, अरस्तू की महान रचना 'पॉलिटिक्स' हॉब्स की रचना 'लेवियाथन' और मैकियावली की रचना 'द प्रिन्स' में देखने को मिलते हैं।

4.3 लोक प्रशासन का विकासः आधुनिक काल

18वीं सदी में जर्मनी और आस्ट्रिया में कैमरलवाद का अभ्युदय हुआ जो सरकारी मामलों के व्यवस्थित प्रबन्धन से जुड़ा हुआ था। कैमरलवादियों ने लोक प्रशासन की संरचनाओं, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के विवरणात्मक अध्ययनों पर और लोक अधिकारियों के पेशेवर प्रशिक्षण पर बल दिया।

18वीं सदी के अन्तिम वर्षों में संभवतः अमेरिका में पहली बार लोक प्रशासन के अर्थ और उद्देश्य को हैमिल्टन की पुस्तक 'फेडरलिस्ट' में पारिभाषित किया गया। चार्ल्स ज्यां बूनिन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अलग से लोक प्रशासन पर फ्रेन्च भाषा में पुस्तक की रचना की। परन्तु परम्परागत रूप से शोध के अलग क्षेत्र के रूप में लोक प्रशासन का विकास उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ।

आधुनिक काल में अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास का इतिहास उतार-चढाव से भरा हुआ है, जिसे निम्नलिखित चरणों में समझा जा सकता है-

4.3.1 प्रथम चरण (1887-1926)

विकास के प्रथम चरण में लोक प्रशासन एवं राजनीति के द्विभाजन पर बल दिया गया। वुडरो विल्सन, जिन्हें लोक प्रशासन का जनक माना जाता है, ने 1887 में एक निबन्ध प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था 'दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन'। इस निबन्ध में उन्होंने राजनीति और प्रशासन को अलग-अलग बताया तथा यह भी कहा कि ''एक संविधान की रचना सरल है पर इसको चलाना बड़ा कठिन है।'' उन्होंने संविधान के इस चलाने के क्षेत्र को अर्थात लोक प्रशासन को एक स्वायत्त विषय बनाने पर बल दिया।

विल्सन के पश्चात फ्रैंक गुडनाउ ने 1900 में अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' में यह तर्क दिया कि राजनीति, राज्य-इच्छा को प्रतिपादित करती है, जबकि प्रशासन इस इच्छा या नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इसलिए नीति-निर्माण का कार्य नीति-क्रियान्वयन के कार्य से अलग है। नीति-निर्माण का कार्य जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिकाओं द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिए तथा उसके क्रियान्वयन का कार्य राजनीतिक रूप से तटस्थ, योग्य एवं तकनीकी दक्षता से युक्त प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए।

1926 में एल0डी0 व्हाइट द्वारा 'इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी जिसे लोक प्रशासन की प्रथम पाठ्य पुस्तक होने की मान्यता प्राप्त है। इस पुस्तक में व्हाइट ने राजनीति एवं प्रशासन के मध्य अन्तर को स्वीकार करते हुए इस बात पर बल दिया कि लोक प्रशासन का मुख्य लक्ष्य दक्षता एवं

मितव्ययिता हैं। उनके अनुसार प्रशासन किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों का निर्देशन, समन्वयीकरण तथा नियन्त्रण की कला है।

4.3.2 द्वितीय चरण (1927-1937)

इस चरण में लोक प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर बल दिया गया। ऐसी आस्था व्यक्त की गयी कि प्रशासन के कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं जिनका पता लगाकर इनके क्रियान्वयन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में 1927 में डब्ल्यू0 एफ0 विलोबी द्वारा लिखित पुस्तक 'प्रिसिंपल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विलोवी इस बात में पूर्ण विश्वास रखते थे कि प्रशासन के अनेक सिद्धान्त हैं, जिन्हें कार्यान्वित करने से लोक प्रशासन में सुधार हो सकता है।

विलोबी के बाद अनेक विद्वानों ने उक्त सन्दर्भ में पुस्तकें लिखी जिनमें मेरी पार्कर फॉलेट, हेनरी फेयोल, मूने तथा रैले इत्यादि के नाम प्रमुख हैं।

1937 में लूथर गुलिक तथा उर्विक द्वारा लिखित ग्रन्थ 'पेपर्स ऑन दी साइंस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में इस बात पर बल दिया गया कि प्रशासन में सिद्धान्त होने के कारण यह एक विज्ञान है। गुलिक तथा उर्विक ने प्रशासन के सिद्धान्तों को 'पोस्डकॉर्ब' के रूप में व्यक्त किया। इस चरण को लोक प्रशासन के विकास में स्वर्णिम युग माना जाता है।

4.3.3 तृतीय चरण (1938-1947)

यह चरण लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में विध्वंसकारी चरण माना जाता है, जिसमें प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती दी गयी।

चेस्टर बनार्ड ने 1938 में अपनी पुस्तक 'दी फक्सन्स ऑफ एक्सक्यूटिव' में प्रशासन को एक सहकारी सामाजिक क्रिया बताते हुए इस बात पर बल दिया कि व्यक्तियों के आचारण प्रशासकीय कार्यों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। बनार्ड के विचारों के फलस्वरूप लोक प्रशासन के सिद्धान्तवादी दृष्टिकोण पर प्रहार शुरू हुआ।

1946 में हरबर्ट साइमन ने अपना एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने तथाकथित सिद्धान्तों का उपहास करते हुए उन्हें मुहावरे की संज्ञा दी। एक वर्ष बाद ही उन्होंने अपनी पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर' में यह भली-भाँति सिद्ध कर दिया कि प्रशासन में सिद्धान्त नाम की कोई चीज नहीं है।

1947 में रॉबर्ट ए0 डॉहल ने अपने एक लेख में सिद्धान्तवादियों की इस मान्यता का जोरदार खण्डन किया कि लोक प्रशासन एक विज्ञान है। उन्होंने लोक प्रशासन के सिद्धान्त की खोज में तीन बांधाओं का जिक्र किया, यथा- मूल्य सापेक्षता, मानव व्यवहार की विविधता, एवं सामाजिक ढ़ाँचा।

इस प्रकार लोक प्रशासन का तीसरा चरण चुनौतियों एवं आलोचनाओं से परिपूर्ण रहा।

4.3.4 चतुर्थ चरण (1948-1970)

इस चरण में लोक प्रशासन अपनी 'पहचान के संकट' से जूझता रहा। विषय की सिद्धान्तवादी विचारधारा अविश्वसनीय प्रतीत होने लगी तथा इसका वैज्ञानिक स्वरूप भी वाद-विवाद का विषय बन गया।

विषय को इस पहचान के संकट से उबारने के लिए मोटे तौर पर दो रास्ते अपनाये गये। कुछ विद्वान राजनीतिशास्त्र की ओर मुखातिब हुए परन्तु राजनीतिशास्त्र में इस समय कुछ परिवर्तन आ रहे थे। लोक प्रशासन का

राजनीतिशास्त्र में जितना महत्व पहले था, उसमें गिरावट आ गयी। ऐसी अवस्था में यह विषय सौतेलापन व अकेलापन अनुभव करने लगा।

दूसरे प्रयास में कुछ विद्वानों ने लोक प्रशासन को निजी प्रबन्धों के साथ जोड़कर प्रशासनिक विज्ञान बनाने का प्रयास किया। इन विद्वानों की यह मान्यता थी कि प्रशासन चाहे दफ्तरों में हो या कारखानों में दोनों ही क्षेत्रों में यह प्रशासन है। इसी प्रयास के अन्तर्गत वर्ष 1956 में 'एडमिनिस्ट्रेटिव साइंस क्वार्टरली' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया। इस प्रयास में भी लोक प्रशासन को अपना निजी स्वरूप गंवाना पड़ा तथा इसे प्रबन्ध विज्ञान की ओर मुखातिब होना पड़ा।

इस तरह दोनों ही प्रयासों के बावजूद लोक प्रशासन के 'पहचान का संकट' बरकरार रहा।

4.3.5 पंचम चरण (1971-1990)

इस चरण में विषय के अन्तर्विषयक दृष्टिकोण का विकास हुआ। चतुर्थ चरण के संकट ने लोक प्रशासन के विषय के विकास में अनेक चुनौतियां प्रस्तुत की थी, जो इसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। अनेक शाखाओं के विज्ञान के समावेश से इसके विकास में सर्वांगीण उन्नति हुई। राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थी तो सदैव ही लोक प्रशासन में रूचि लेते रहे हैं, इसके साथ-साथ अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, आदि शास्त्रों के विद्वान भी इस विषय में रूचि लेने लगे। इन सबके फलस्वरूप लोक प्रशासन अन्तर-विषयी बन गया। आज समाजशास्त्रों में यदि कोई सबसे अधिक अन्तर-विषयी है तो वह लोक प्रशासन ही है। 'तुलनात्मक लोक प्रशासन' तथा 'विकास प्रशासन' का प्रादुर्भाव भी विषय की नूतन प्रवृत्तियों को दर्शाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न देशों की सार्वजनिक प्रशासनिक संस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है। विकास प्रशासन विकासशील देशों की सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित है।

4.3.6 षष्टम चरण (1991- अब तक)

इस चरण में उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के सन्दर्भ में लोक प्रशासन के अन्तर्गत नवीन लोक प्रबन्धन की अवधारणा का विकास हुआ है। ऐसा माना जा रहा है कि लोक प्रशासन को लोक प्रबन्धन में बदला जाना चाहिए ताकि लोक निर्णय शीघ्रता एवं मितव्ययिता के साथ की जा सके। नवीन लोक प्रबन्धन लोक प्रशासन में कार्य सम्पादन को अधिक महत्व देता है। लोक प्रशासन में धीरे-धीरे नियन्त्रणों, नियमनों, लाइसेन्स, परमिट आदि को कम करने के प्रयास किये गये हैं तथा प्रशासन को एक सुविधाकारक तंत्र के रूप में विकसित करने का प्रयत्न किया गया है। दूसरे शब्दों में पारम्परिक लोक प्रशासन को बाजारोन्मुख लोक प्रशासन में परिवर्तित करने पर बल दिया जा रहा है।

नवीन लोक प्रबन्धन का प्रयोग सर्वप्रथम 1991 में क्रिस्टोफर हुड के द्वारा किया गया। इसके उपरान्त इस दृष्टिकोण के विकास में गेराल्ड केइन, पी0 हैगेट, सी0 पौलिट, आर रोड्स तथा एल0 टेरी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इस प्रकार, अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का स्वरूप बदलते हुए राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश एवं विचारधाराओं के अनुरूप परिवर्तित, संशोधित एवं संवर्द्धित होता रहा है।

वर्तमान समय में लोक प्रशासन के अध्ययन में राजनैतिक एंव नीति निर्धारण प्रक्रियाओं तथा लोक कार्यक्रमों के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाने लगा है। 1971 ई0 के पश्चात से नवीन लोक प्रशासन के विकास ने लोक प्रशासन के अध्ययन को समृद्ध किया है।

अभ्यास प्रश्न-1

1. एक क्रियाकलाप के रूप में लोक प्रशासन प्राचीन काल से ही अस्तित्व में रहा है। सत्य/असत्य
2. कौटिल्य ने प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए ..... मार्ग अपनाया।
3. लोक प्रशासन का जनक किसे माना जाता है?
4. द्वितीय चरण (1927-1937) में लोक प्रशासन के ..... पहलू पर बल दिया गया।

4.4 नवीन लोक प्रशासन: पृष्टभूमि

प्रायः देखा गया है कि उथल-पुथल, अस्थिरता एवं अव्यवस्था के कालों में नवीन विचारों का अभ्युदय होता है और वे परम्परागत शास्त्रों के विषयों को नवीन दिशा प्रदान करते हैं। यह बात लोक प्रशासन के सम्बन्ध में सत्य प्रतीत होती है। सातवें दशक में लोक प्रशासन की क्रिया-प्रणाली के उद्देश्य के रूप में मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता को अपर्याप्त एवं अपूर्ण पाया गया। इस दशक के अंतिम वर्षों में कुछ विद्वानों, विशेषकर युवा वर्ग ने लोक प्रशासन में मूल्यों एवं नैतिकता पर विशेष बल देना प्रारम्भ कर दिया। यह कहा जाने लगा कि कार्यकुशलता ही समस्त लोक प्रशासन का लक्ष्य नहीं है, उसे मूल्योन्मुखी होना चाहिए। इस नवीन प्रवृत्ति को नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा दी गयी।

वास्तव में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने के प्रयत्नों ने लोक प्रशासन में अनेक नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया है, जिन्हें नवीन लोक प्रशासन के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत नैतिकता एवं सामाजिक उपयोगिता पर बल दिया जाता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य मानव कल्याण है।

नवीन लोक प्रशासन का आरम्भ 1967 के 'हनी प्रतिवेदन' से समझा जा सकता है। प्रो0 जॉन सी0 हनी का प्रतिवेदन अमेरिका में लोक प्रशासन का स्वतंत्र विषय के रूप में 'अध्ययन की सम्भावनाऐं' पर आधारित था। इस प्रतिवेदन में लोक प्रशासन को विस्तृत एवं व्यापक बनाने पर जोर दिया गया। इस प्रतिवेदन का जहाँ एक तरफ स्वागत हुआ वही दूसरी तरफ इसको लेकर तीव्र विवाद भी उत्पन्न हुआ। प्रतिवेदन में जो मुद्दे उठाये गये थे, वे महत्वपूर्ण थे। परन्तु जो मुद्दे नहीं उठाये गये थे, वे उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण थे। तत्कालीन सामाजिक समस्याओं के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इस प्रतिवेदन में कोई ठोस सुझाव नहीं दिया गया था। फिर भी इस प्रतिवेदन ने अनेक विद्वानों को समाज में लोक प्रशासन की भूमिका पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिए प्रेरित किया।

हनी प्रतिवेदन के पश्चात 1967 में अमेरिका के फिलाडेल्फिया शहर में इसी विषय पर सम्मेलन आयोजित हुआ। सम्मेलन में जहाँ कुछ चिन्तकों ने लोक प्रशासन केा महज बौद्धिक चिन्तन का केन्द्र माना तो दूसरों ने उसे मात्र प्रक्रिया माना। कुछ चिन्तकों ने इसे प्रशासन का तो कुछ ने समाज का अंग माना। वस्तुस्थिति यह रही कि इस सम्मेलन में भी लोक प्रशासन का नवीन स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सका।

1968 में आयोजित मिन्नोब्रुक सम्मेलन ने लोक प्रशासन की प्रकृति में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया तथा यह नवीन लोक प्रशासन केा स्थापित करने में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इस सम्मेलन में युवा विचारकों का प्रतिनिधित्व रहा तथा वे समस्त बिन्दुवाद विवाद की परिधि में आये जो बीते दो सम्मेलनों में शामिल नहीं किये गये थे। इस सम्मेलन में परम्परागत लोक प्रशासन के स्थान पर नवीन लोक प्रशासन नाम प्रकाश में आया।

1971 में फ्रेंक मेरीनी कृत 'टूवार्डस ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्टेशन-मिन्नोब्रुक पर्सपेक्टिव' के प्रकाशन के साथ ही नवीन लोक प्रशासन को मान्यता प्राप्त हुई। इसी समय ड्वाइट वाल्डो की कृति ने नवीन लोक प्रशासन को और

सशक्त बना दिया। उक्त दोनों पुस्तकों में नवीन लोक प्रशासन को सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील माना गया है।

1980 और 1990 के दौरान विकसित राष्ट्रों को सार्वजनिक क्षेत्र प्रबन्धन में दृढता तथा अधिकारी प्रवृत्ति से नमनीयता की ओर मुड़ते देखा गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रों में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की चाह में लोक प्रशासन को सरकार व जनता के मध्य नवीन सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया गया। इन तथ्यों का उल्लेख 1980 में प्रकाशित एच0 जार्ज फ्रेडरिक्सन की पुस्तक 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डेवलपमेन्ट एज ए डिसिप्लिन' में देखा जा सकता है।

1990 के दशक में भी नवीन लोक प्रशासन में नये प्रतिमान विकसित किये गये हैं, जिसे नवीन लोक प्रबन्धन बाजार आधारित लोक प्रशासन, उद्यमकर्ता शासन आदि का नाम दिया जा सकता है। इसके अन्तर्गत दक्षता, मितव्ययिता तथा प्रभावदायकता पर बल दिया गया है।

इस प्रकार विगत चार दशकों में लोक प्रशासन अपने नवीन रूप में लोक प्रिय हो चला हैं।

4.4.1 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताऐं

नवीन लोक प्रशासन की विचारधारा समयानुकुल तथा परम्परागत लोक प्रशासन में परिवर्तन की विचारधारा है। परम्परागत लोक प्रशासन में मूल्य निरपेक्षता, दक्षता, निष्पक्षता, कार्यकुशलता इत्यादि पर बल दिया गया था, जबकि नवीन लोक प्रशासन नैतिकता, उत्तर दायित्व, सामाजिक सापेक्षता, नमनीय तटस्थता एवं प्रतिबद्ध प्रशासनिक प्रणाली पर बल देता है। यह माना जाता है कि नवीन लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ संवाहक है तथा यह लक्ष्य अभिमुखी है।

नवीन लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूपों में व्यक्त किया जा सकता है-

1. नवीन लोक प्रशासन परम्परागत लोक प्रशासन की 'यान्त्रिकता' एवं आर्थिक मानव की अवधारणा को स्वीकार नहीं करता है। यह मानवीय व्यवहार दृष्टिकोण एवं मानवीय सम्बन्धों का समर्थन करता है। दूसरे शब्दों में नवीन लोक प्रशासन मानवोन्मुख है।
2. यह राजनीति और प्रशासन के द्विभाजन तथा निजी एवं लोक प्रशासन के बीच के अन्तर को अस्वीकार करता है। इस तरह का विभाजन अव्यहारिक, अप्रासंगिक तथा अवास्तविक माना जाता है।
3. यह सम्बन्धात्मक है और ग्राहक केन्द्रित दृष्टिकोण पर बल देता है। यह इस बात पर बल देता है कि नागरिक को यह बताने का अधिकार होना चाहिए कि उनको क्या, किस प्रकार और कब चाहिए? संक्षेप में लोक प्रशासन को नागरिकों की रूचि एवं आवश्यकतानुसार सेवा करनी चाहिए।
4. यह परिवर्तन तथा नवीनता का समर्थक है। परम्परागत दृष्टिकोणों को त्यागता हुआ और व्यवहारवादी दृष्टिकोण की दीवार को लाघता हुआ नवीन लोक प्रशासन उत्तर व्यवहारवादी दृष्टिकोण के निकट पहुँच चुका है। साथ ही इसमें पारिस्थिकी एवं पर्यावरण के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाता है।
5. कल्याणकारी योजनाओं को शीघ्र एवं प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए नवीन लोक प्रशासन परिवर्तनशील प्रशासनिक तंत्र, विकेन्द्रीकरण तथा प्रत्यायोजन का समर्थन करता है।
6. यह मूल्यों से परिपूर्ण प्रशासन, जनसहभागिता, उत्तर दायित्व तथा सामाजिक रूप से हितप्रद कार्यों पर बल देता है।

इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन परम्परागत लोक प्रशासन से कई दृष्टियों में भिन्न है। कुछ विचारक इसे एक मौलिक विषय के रूप में प्रस्तुत करते है तो कुछ अन्य विचारक इसे परम्परागत प्रशासन का ही एक संशोधित रूप मानते हैं। कैम्पबेल के अनुसार नवीन लोक प्रशासन का विषय मौलिक अध्ययन की अपेक्षा पुनर्व्याख्या पर अधिक बल देता है। इसी प्रकार एक अन्य विचारक राबर्ट टी0 गोलमब्यूस्की का कहना है कि नवीन लोक प्रशासन शब्दों में क्रांतिवाद का उद्-घोष करता है, किन्तु वास्तव में यह पुरातन सिद्धान्तों व तकनीकों की स्थिति है।

यथार्थ में अगर देखा जाये तो कैम्पबेल एवं गोलमब्यूस्की जैसे विचारक पूर्वाग्रह से ग्रसित प्रतीत होते हैं। इस सन्दर्भ में निग्रो एंव निग्रो के इस मत से सहमति व्यक्त की जा सकती है कि नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों ने रचनात्मक वाद-विवाद को प्रेरित किया है। उन्ही के शब्दों में ''जब से नवीन लोक प्रशासन का उदय हुआ है मूल्यों और नैतिकता के प्रश्न लोक प्रशासन के मुख्य मुद्दे रहे हैं। नवीन लोक प्रशासन को जो लोग नयी बोतल में पुरानी शराब मानते है, वे लोक प्रशासन के विकास और परिवर्तन के पक्षधर नहीं माने जा सकते हैं, क्योंकि लोक प्रशासन के विचारों, व्यवहारों, कार्यशैली और तकनीकों में जो अर्वाचीन प्रवृत्तियां आयी हैं, उसे समय के बहाव के साथ स्वीकार करना होगा और इसके सकारात्मक उद्देश्यों को समर्थन देना होगा।''

4. 4.2 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य

नवीन लोक प्रशासन के चार प्रमुख लक्ष्य है- प्रासंगिकता, मूल्य, सामाजिक समता तथा परिवर्तन। इनकी व्याख्या निम्नवत की जा सकती है-

4.4.2.1 प्रासंगिकता

नवीन लोक प्रशासन तथ्यों की प्रांसगिकता पर अत्यधिक बल देता है। यह परम्परागत लोक प्रशासन के लक्ष्यों- कार्यकुशलता एवं मितव्यतिता को समकालीन समाज की समस्याओं के समाधान हेतु अपर्याप्त मानता है और इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन का ज्ञान एवं शोध समाज की आवश्यकता के सन्दर्भ में प्रासंगिक तथा संगतिपूर्ण होना चाहिए।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन में प्रतिनिधियों ने 'नीति उन्मुख लोक प्रशासन' की आवश्यकता पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और इस बात पर प्रकाश डाला कि लोक प्रशासन को सभी प्रशासनिक कार्यों के राजनीतिक एवं आदर्श निहित अर्थों एवं तात्पर्यों पर स्पष्ट रूप से विचार करना चाहिए।

4.4.2.2 मूल्य

नवीन लोक प्रशासन आदर्शपरक है और मूल्यों पर आधारित अध्ययन को महत्व प्रदान करता है। यह परम्परागत लोक प्रशासन के मूल्यों को छिपाने की प्रवृत्ति तथा प्रक्रियात्मक तटस्थता को अस्वीकार करते हुए ऐसे शोध प्रयासों को अपनाने पर बल देता है, जो सामाजिक न्याय के अनुरूप हों। इसके अनुसार लोक प्रशासन को खुले रूप में उन्हीं मूल्यों को अपनाना होगा जो समाज में उत्पन्न समस्याओं का समाधान कर सकें तथा समाज के दुर्बल वर्गों के लिए सक्रिय कदम उठाये।

4.4.2.3 सामाजिक समता

नवीन लोक प्रशासन समाज की विषमता को दूर करके सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को अपनाने पर बल देता है, यह इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्गों की

आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पीड़ा को समझे और इस दिशा में समुचित कदम उठाये। फैरडरिक्सन के शब्दों में ''वह लोक प्रशासन जो परिवर्तन लाने में असफल है, जो अल्पसंख्यकों के अभावों को दूर करने का निरर्थक प्रयास करता है, सम्भवतः उसका प्रयोग अन्ततः उन्हीं अल्पसंख्यकों को कुचलने के लिए किया जायेगा।'' इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन में जन कल्याण पर विशेष बल दिया गया है।

4.4.2.4 परिवर्तन

नवीन लोक प्रशासन यथास्थिति बनाये रखने का विरोधी है और सामाजिक परिवर्तन में विश्वास करता है। इसमें इस बात पर बल दिया जाता है कि परिवर्तनों के समर्थक लोक प्रशासन को केवल शक्तिशाली हित समूहों या दबाव समूहों के अधीन कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि इसे तो सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक तंत्र में परिवर्तन का अगुवा बनना चाहिए। इस प्रकार सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के लिए एक सशक्त अभिमुखता ही नवीन लोक प्रशासन की अनिवार्य विषय वस्तु है। शीघ्र परिवर्तित वातावरण के अनुरूप संगठन के नवीन रूपों का विकास किया जाना चाहिए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि परम्परागत लोक प्रशासन की अपेक्षा नवीन लोक प्रशासन जातिगत कम और सार्वजनिक अधिक, वर्णनात्मक कम और आदेशात्मक अधिक, संस्था उन्मुख कम और जन प्रभाव उन्मुख अधिक तथा तटस्थ कम और आदर्शात्मक अधिक है। साथ ही इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने पर भी बल दिया गया है।

4.5 नवीन लोक प्रबंधन

क्रिस्टोफर हुड (1991) ने सर्वप्रथम "नवीन लोक प्रबंधन" शब्द का सर्वप्रथम उपयोग किया तथा सात महत्वपूर्ण अंतर-संबंधित कारकों का उल्लेख किया। वे हैं- व्यावहारिक पेशेवर प्रबंधन, प्रदर्शन के स्पष्ट मानक और माप, परिणाम नियंत्रण पर अधिक जोर, सार्वजनिक क्षेत्र में इकाइयों के पृथक्करण और प्रतिस्पर्धा की ओर बदलाव, प्रबंधन अभ्यास की निजी क्षेत्र शैलियों पर जोर और संसाधन उपयोग में अधिक अनुशासन और कंजूसी पर जोर दिया गया। हुड ने सरकारों के लिए एक प्रशासनिक दर्शन के रूप में नवीन सार्वजनिक प्रबंधन (नवीन लोक प्रबन्धन) को परिणाम-उन्मुख और उत्पादक बनाने का प्रस्ताव दिया।

पोलिट (1995) ने आठ अंतर-संबंधित कारकों के साथ ही नवीन लोक प्रबन्धन का सारांश भी दिया। लागत में कटौती, बजट सीमा निर्धारण और संसाधन आवंटन में अधिक पारदर्शिता की मांग, पारंपरिक नौकरशाही संगठनों का अलग-अलग एजेंसियों में विभाजन, सार्वजनिक एजेंसियों के भीतर प्रबंधन प्राधिकरण का विकेंद्रीकरण, सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करने के कार्य को उन्हें खरीदने के कार्य से अलग करना, बाजार और अर्ध-बाजार प्रकार के तंत्र (एमटीएम) की शुरुआत, प्रदर्शन लक्ष्यों, संकेतकों और आउटपुट उद्देश्यों (प्रदर्शन प्रबंधन) में काम करने के लिए कर्मचारियों की आवश्यकता, सार्वजनिक रोजगार के आधार को स्थायित्व और मानक राष्ट्रीय वेतन और शर्तों से हटाकर टीम अनुबंध, प्रबंधन संबंधी वेतन (पीआरपी) और वेतन और शर्तों के स्थानीय निर्धारण की ओर स्थानांतरित कर सेवा, गुणवत्ता, मानक सेटिंग और ग्राहक प्रतिक्रिया पर जोर बढ़ाना।

नवीन लोक प्रबन्धन के दर्शन और अवधारणाएँ दो मुख्य स्रोतों से ली गई थीं। एक निजी क्षेत्र की प्रबंधकीय प्रथाओं से था, जिसे लोकप्रिय रूप से "प्रबंधकीयवाद" के रूप में जाना जाता है और दूसरा अर्थशास्त्र के क्षेत्र से विशेष रूप से सार्वजनिक चयन सिद्धांत, एजेंसी सिद्धांत और लेनदेन लागत सिद्धांत।

प्रबंधकीयवाद की विचारधारा यह थी कि बेहतर प्रबंधन समाजों को भौतिक सफलता का सर्वोत्तम मौका प्रदान करता है। यह माना जाता था कि निजी क्षेत्र के प्रबंधन सिद्धांत और प्रथाएँ सार्वजनिक एजेंसियों पर समान रूप से लागू होती हैं। बोस्टन (1996) ने सुझाव दिया कि प्रबंधकीयवाद का सार इस धारणा में निहित है कि प्रबंधन एक सामान्य, विशुद्ध रूप से वाद्य गतिविधि है, जिसमें सिद्धांतों का एक सेट शामिल है, जिसे सार्वजनिक और निजी व्यवसायों पर लागू किया जा सकता है। अर्थशास्त्र से जो तर्कसंगत दृष्टिकोण आया, वह यह था कि सभी मानव व्यवहार पर स्व-हित का प्रभुत्व है और वे अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहेंगे। इसलिए व्यक्तिगत संतुष्टि और दक्षता कारणों से व्यक्तियों के पास अधिक विकल्प होने चाहिए। यह सार्वजनिक चयन सिद्धांत का तर्क था।

एजेंसी सिद्धांत ने तर्क दिया कि प्रिंसिपल को एजेंटों से अलग किया जाना चाहिए ताकि प्रिंसिपल एजेंट को परिणामों के लिए नियंत्रित और जवाबदेह बना सकें। संस्थागत अर्थशास्त्र सिद्धांत, जिसे लेनदेन-लागत सिद्धांत भी कहा जाता है, ने तर्क दिया कि चूंकि सभी व्यक्ति अपने स्वार्थ में कार्य करते हैं और संभवतः अपनी संतुष्टि के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त करना पसंद करेंगे, इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक सेवा की लेनदेन लागत की जांच की जाए। इन सिद्धांतों के आधार पर, गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला (सरकार की भूमिका-आकार-लागत में कमी, संरचना के एजेंसियों के मॉडल की शुरूआत, क्रेता और प्रदाता को अलग करना, बाजारतंत्र की शुरूआत (निजीकरण, अनुबंध, व्यावसायीकरण, बाजार परीक्षण आदि), प्रबंधन प्राधिकरण का विकेंद्रीकरण, प्रदर्शन प्रबंधन, और गुणवत्ता और ग्राहक प्रतिक्रिया पर अधिक चिंता कई विकसित देशों द्वारा सरकार को नागरिक मांग के प्रति प्रभावी और उत्तर दायी बनाने के लिए कार्य किए जा रहे हैं।

नवीन लोक प्रबन्धन को समझने के उपरान्त अब थोड़ा पारंपरिक लोक प्रबन्धन को भी समझने का प्रयास करते हैं।

4.5.1 नवीन लोक प्रबन्धन के दृष्टिकोण

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निजी क्षेत्र के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए, नया सार्वजनिक प्रबंधन आधुनिक प्रबंधन दृष्टिकोण पर ध्यान केंद्रित करता है। नया सार्वजनिक प्रबंधन दृष्टिकोण इस प्रकार हैं-

1. **तकनीकी दृष्टिकोण**- रचनात्मकता की अनुमति देता है। यह लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने के लिए नए विचारों को लागू करने का दृष्टिकोण रखता है।
2. **आशावादी दृष्टिकोण**- यह लोक प्रशासन की लचीली और समस्या-समाधान प्रणाली को प्रोत्साहित करता है।
3. **पदानुक्रम-विरोधी दृष्टिकोण**- यह व्यक्तियों को स्वतंत्रता प्रदान करता है, जिससे यह प्रणाली एक पदानुक्रम-विरोधी प्रणाली बन जाती है।

4.5.2 नवीन लोक प्रबंधन के लाभ

पारंपरिक सार्वजनिक प्रबंधन प्रणाली की सीमाओं को दूर करने और दक्षता बढ़ाने के लिए नई सार्वजनिक प्रबंधन प्रणाली शुरू की गई थी। नए सार्वजनिक प्रबंधन (नवीन लोक प्रबन्धन) के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-

1. नवीन लोक प्रबन्धन नई तकनीकों को किसी कार्य से अधिकतम आउटपुट प्राप्त करने के लिए बाध्य करता है। यह प्रणाली प्रौद्योगिकी क्रांति को बढ़ावा देती है।
2. परिवहन के क्षेत्र में, नवीन लोक प्रबन्धन प्रणाली प्रतिस्पर्धा पैदा करके राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में सामग्री प्रवाह को तेज करती है।
3. नया सार्वजनिक प्रबंधन ग्राहकों की संतुष्टि पर ध्यान केंद्रित करता है।

4. इस प्रणाली के कर्मचारियों को उनकी कार्यशैली को प्रभावी बनाने के लिए प्रशिक्षण हेतु प्रेरित किया जाता है।
5. नवीन लोक प्रबन्धन प्रणाली एक लक्ष्य-उन्मुख प्रणाली है।
6. नवीन लोक प्रबन्धन प्रणाली व्यक्ति को कार्रवाई की स्वतंत्रता प्रदान करती है, जिससे प्रभावशीलता बढ़ जाती है।

4.5.3 पारंपरिक लोक प्रबंधन तथा पारंपरिक और नवीन लोक प्रबंधन में अंतर

नवीन लोक प्रबंधन से पहले, पारंपरिक प्रबंधन व्यवस्था सभी क्षेत्रों में कार्य करती थी। पारंपरिक प्रबंधन की अपनी कुछ सीमाएँ थी। लोक प्रबंधन की पारंपरिक प्रणाली उतनी प्रभावी नहीं थी। किसी समारोह के लिए अलग-अलग व्यक्तियों को अधिकृत किया जाता था और शासन में परिवर्तन हो जाने के कारण वे बदलते रहते थे। यह विशेष अधिकार परिवर्तित कार्य निपुणता को प्रभावित करता था। प्रबंधन की पारंपरिक लोक प्रबंधन प्रणाली में नीतियां तो उच्च स्तर पर बनाई जाती थीं, लेकिन उन्हें जमीनी स्तर पर पूरी क्षमता के साथ लागू नहीं किया जाता था।
लोक प्रशासन के लिए, प्रबंधन प्राधिकरण को बेहतर परिणाम के लिए निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। पारंपरिक लोक प्रबंधन में, उनसे निर्णय लेने की अपेक्षा नहीं की जाती थी या वे ऐसा बहुत कम ही करते थे।
पारंपरिक लोक प्रबंधन की मुख्य सीमा यह थी कि इसे केंद्र से संचालित किया जाता, जिससे संचार का मुक्त प्रवाह बाधित होता। सार्वजनिक अधिकारियों के लिए प्रेरक स्रोतों और गतिविधियों की कमी के कारण नीतियों को लागू करते समय उनके काम में कम निपुणता आयी। किसी योजना को लागू करते समय पारंपरिक लोक प्रबंधन एक समान रुदीवादी ढ़र्रे या प्रारूप का पालन करता था। इसमें लक्ष्यों की प्राप्ति पर कोई विशेष ध्यान केंद्रित नहीं किया गया।
कई क्षेत्रों में पारंपरिक लोक प्रबंधन के स्थान पर नवीन लोक प्रबंधन शब्द का प्रयोग किया जाता है। पारंपरिक और नवीन सार्वजनिक प्रबंधन के बीच अंतर निम्नांकित हैं:

क्र.सं.	अंतर का तत्व	पारंपरिक लोक प्रबंधन	नवीन सार्वजनिक प्रबंधन
1	विनियमन (रेगुलेशन)	केंद्रीय और एकल इकाई विनियमन और समान सेवा प्रदान की गई।	नए सार्वजनिक प्रबंधन की संरचना अर्ध स्वायत्त इकाई आधारित है, जो व्यक्तिगत कार्य की अनुमति देती है।
2	प्रशासन प्रोफाइल (एडमिनिस्ट्रेशन प्रोफाइल)	प्रशासन प्रोफ़ाइल सक्रिय नहीं है और केवल नीति निर्माण पर केंद्रित है।	प्रशासन प्रोफ़ाइल खुली है और पूरी तरह से लक्ष्यों की प्राप्ति पर केंद्रित है।
3	वित्तीय फोकस (फाइनेंसियल फोकस)	वित्तीय और लेखांकन पर ध्यान स्थिर है।	इस प्रणाली में वित्तीय फोकस कुशलतापूर्वक उन्मुख है।
4	दृष्टिकोण (एप्रोच)	पदानुक्रमित दृष्टिकोण का पालन किया जाता है।	पदानुक्रम विरोधी दृष्टिकोण अपनाया जाता है।
5	संरचना (स्ट्रक्चर)	इस सार्वजनिक प्रशासन की संरचना निजी संगठन से प्रतिस्पर्धी है।	यह सार्वजनिक और निजी प्रणालियों का एक संयोजन है।
6	व्यवस्थापक की भूमिकाएँ (एडमिनिस्ट्रेटर रोल)	एक व्यवस्थापक नीतियों और नियमों की संरचना का पालन करने के लिए बाध्य है।	एक व्यवस्थापक लक्ष्य और अभीष्ट परिणाम प्राप्त करने पर केंद्रित होता है।

4.5.4 नवीन लोक प्रबन्धन की आलोचना

नई सार्वजनिक प्रबंधन प्रणाली में नीति निर्माण और सेवाएं प्रदान करने के बीच धुंधली रेखाएं हैं। सार्वजनिक सेवा के संभावित राजनीतिकरण, नागरिकों के लिए आवश्यक उपयुक्त सरकारी सेवाओं को प्रभावी ढंग से चुनने की क्षमता को भी चुनौती दी गई है। पसंद ग्राहक की आर्थिक सोच के लिए आवश्यक है। ऐसी चिंताएं हैं कि सार्वजनिक प्रबंधक, नागरिकों की जरूरतों और जवाबदेही की सीमाओं को पूरा करने की कोशिश से दूर चले जाते हैं। प्रबंधकों के कम या ज्यादा वफादार होने जैसे प्रश्न उठते रहते हैं। अतः सरकारों से व्यापक सार्वजनिक हित के प्रति जवाबदेह रहने की अपेक्षा की जाती है।

4.5.5 निष्कर्ष

20वीं सदी का अंत नए सार्वजनिक प्रबंधन की शुरुआत थी। लोक प्रशासन के क्षेत्र में काम करते हुए, पारंपरिक सार्वजनिक प्रबंधन प्रणाली की कमियों को दूर करने और दक्षता बढ़ाने के लिए इस प्रणाली की शुरुआत की गयी। नवीन सार्वजनिक प्रबंधन सार्वजनिक प्रशासन में निजी क्षेत्र में उपयोग की जाने वाली विभिन्न प्रबंधन तकनीकों का उपयोग करने का दृष्टिकोण है और यह अवधारणा सार्वजनिक सेवा निगमों को आर्थिक रूप से कुशल तरीके से चलाने में मदद करती है। नवीन लोक प्रबन्धन प्रणाली उत्पाद वितरण को बढ़ावा देने, सार्वजनिक प्रशासनिक दक्षता में तेजी लाने, वित्तीय लक्ष्यों का प्रबंधन, वैश्वीकरण, विश्वव्यापी विवाद और उद्योग में स्वचालन परिवर्तन पर आधारित कई समस्याओं का समाधान करती है। नवीन सार्वजनिक प्रबंधन कई व्यावसायिक दृष्टिकोणों का मिश्रण है, जिसमें कई उपकरण जैसे निजी क्षेत्र से अधिकतम परिणाम प्राप्त करने के लिए नए सार्वजनिक प्रबंधन में कुल गुणवत्ता प्रबंधन, परिचालन अनुसंधान तकनीक और उद्देश्य प्रबंधन आदि का उपयोग किया जाता है। यह मानवतावाद, व्यक्तिगत विकास, व्यक्तिगत गरिमा, नागरिक भागीदारी, नौकरशाही पर स्थानीय नियंत्रण और जवाबदेह की भी वकालत करता है। यह दक्षता, अर्थव्यवस्था, उत्पादकता और केंद्रीकरण जैसे लोकप्रशासन के शास्त्रीय मूल्यों का पूरी तरह से विरोध नहीं करता है।

उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि नवीन लोक प्रबन्धन की उपयोगिता के बारे में अकादमिक अभ्यासकर्ताओं के बीच बहस जारी है। सुधारात्मक पहलों के माध्यम से विकसित और विकासशील देशों में जो परिवर्तन सामने आए हैं, उनसे निष्कर्ष निकलता है कि नवीन लोक प्रबन्धन आंदोलन भविष्य में भी जारी रहेगा।

अभ्यास प्रश्न- 2

1. नवीन लोक प्रशासन का आरम्भ 1667 के हनी प्रतिवेदन से समझा जाता है। सत्य/असत्य
2. नवीन लोक प्रशासन राजनीति एवं प्रशासन के द्विभाजन को स्वीकार करता है। सत्य/असत्य
3. नवीन लोक प्रशासन के चार लक्ष्य लिखिए।
4. नवीन लोक प्रबन्धन शब्द का सर्वप्रथम उपयोग किसने किया?
5. नवीन लोक प्रबन्धन के मुख्यतया कितने दृष्टिकोण हैं?

4.6 सारांश

शासन की एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन का अस्तित्व प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है, लेकिन एक व्यवस्थित एवं स्वातत्व विषय के रूप में इसका अध्ययन उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रारम्भ हुआ। आधुनिक काल में विषय का विकास अनेक उतार चढाव से भरा हुआ हैं। प्रथम चरण(1887-

1926) में लोक प्रशासन एवं राजनीति के पृथक्करण पर बल दिया गया। द्वितीय चरण(1927-1937) में प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर बल दिया गया। गुलिक व उर्विक ने प्रशासन के सिद्धान्तों को 'पोस्डकार्ब' के रूप में व्यक्त किया। तृतीय चरण(1938-1947) में प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती दी गयी। चतुर्थ चरण(1948-1970) में यह विषय पहचान के संकट से जूझता रहा। पंचम चरण(1971-1990) में इस विषय में अन्तःअनुशासनात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन एवं विकास प्रशासन की नूतन प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। सन् 1991 के बाद से उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत लोक प्रशासन में 'नवीन लोक प्रबन्धन' की अवधारणा का विकास हुआ है।

नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा का अभ्युदय सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों में लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने के प्रयत्नों में हुआ। यह परम्परागत लोक प्रशासन में परिवर्तन की विचारधारा हैं। मितव्ययिता एवं कार्यकुशलता के लक्ष्य को अपर्याप्त मानते हुए नवीन लोक प्रशासन नैतिकता एवं सामाजिक उपयोगिता पर बल देता है। यह मान्वोन्मुख एवं सम्बन्धात्मक हैं तथा मूल्यों से परिपूर्ण परिवर्तनशील प्रशासनिक तंत्र, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, जनसहभागिता, उत्तर दायित्व तथा सार्वजनिक रूप से हितकर कार्यों पर बल देता हैं।

नवीन लोक प्रशासन के उपरान्त 90 के दशक में नवीन लोक प्रबन्धन का विचार आया। इस विचार को क्रिस्टोफर हुड ने लोगों के समक्ष रखा। नवीन लोक प्रबन्धन, लोक प्रशासन में उन तकनीकों के प्रयोग पर बल देता है जो निजी प्रशासन का क्षेत्र में अपनाया जा रहा है।

4.7 शब्दावली

राजतंत्रीय शासन- शासन की वह प्रणाली जिसमें समस्त शक्तियां एक व्यक्ति के (राजा या रानी) हाथ में केन्द्रित होती हैं और सामान्यतया उसका पद वंशानुगत आधार पर निर्धारित होता है।

द्विभाजन- दो भागों में।

मूल्य सापेक्षता- मूल्यों अथवा आदर्शों के प्रति झुकाव अथवा उसमें आस्था व्यक्त करना।

मितव्ययिता- कम व्यय में किसी कार्य को सम्पादित करन की प्रवृत्ति।

अधिकारी प्रवृत्ति- प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा अपने आपको आम जनता से उच्च समझने की प्रवृत्ति।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- **1.** सत्य, **2.** राजनैतिक अर्थनीति, **3.** वुडरो विल्सन, **4.** सैद्धान्तिक पहलू

अभ्यास प्रश्न 2- **1.** सत्य, **2.** असत्य, **3.** प्रासंगिकता, मूल्य, सामाजिक समता तथा परिवर्तन, **4.** क्रिस्टोफर हुड, **5.** तीन

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोलमब्यूस्की, राबर्ट टी, (1977): पब्लिक एडमिनिस्टेशन एज ए डेवलपिंग डिसीप्लीन, मॉरसिल डेक्कर, न्यूयार्क।
2. अवस्थी एवं माहेश्वरी, (2008), लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. मेरिनी, फ्रैंक , (1971), टूवर्ड्स ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन-मिन्नोब्रुक पर्सपेक्टिव।

4. जैक्सन, माइकल (1992), द न्यू पब्लिक मैनेजमेंट, जेम्स एंड जेम्स, पेज न. 109-125.
5. विलियम, डी डब्लू (2000), रीइन्वेंटिंग द प्रोवेर्ब्स ऑफ़ गवर्नमेंट, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यु, वॉल्यूम 60, न. 6, पेज न. 522-26
6. गोर, ए (1993), फ्रॉम रेड टेप टू रिजल्ट्स: क्रिएटिंग ए गवर्नमेंट देट वर्क्स बेटर एंड कास्ट्स लेस, द रिपोर्ट ऑफ़ द नेशनल परफॉरमेंस रिव्यु 1, वाशिंगटन डी सी
7. ह्यूस,ओवेन इ (2003), एन इंट्रोडक्शन: पब्लिक मैनेजमेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन, पल्ग्रेव मैकमिलन, थर्ड एडिसन, पेज न.218-235
8. फ्रेडरिकसन, एच जी (1996), कम्पेरिंग द रीइनवेंटिंग गवर्नमेंट मूवमेंट विथ द न्यू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यु, वॉल्यूम 56, पेज न. 265

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. स्वेर्डलो इरविग, (1968), डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशनः कॉन्सेप्ट एण्ड प्राब्लम्स, सिरेकुस, युनिवर्सिटी प्रेस, सिरेकुस।
2. वर्मा, एस0पी0 एवं शर्मा एस0 के0, (1983), डेवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली।
3. फड़िया बी0 एल0, लोक प्रशासन, 2010, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा।

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. नवीन लोक प्रशासन से आप क्या समझते हैं? यह पुराने लोक प्रशासन से किस प्रकार भिन्न है?
3. नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
4. नवीन लोक प्रबन्धन के विचार को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 5 लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान
5.3 लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र
5.4 लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र
5.5 लोक प्रशासन एवं विधिशास्त्र
5.6 लोक प्रशासन एवं इतिहास
5.7 लोक प्रशासन एवं मनोविज्ञान
5.8 लोक प्रशासन एवं नीतिशास्त्र
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपको अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास से अवगत कराया गया इस इकाई में हम आपको लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध पर प्रकाश डालेंगे।

व्यापक अर्थ में ज्ञान का स्वरूप एकीकृत होता है। यदि उसे विभिन्न शाखाओं में विभाजित किया जाता है तो ऐसा इसलिए कि उससे अध्ययन की सुगमता प्राप्त हो जाती है। कोई भी प्रशासनिक व्यवस्था एक विशेष राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में कार्य करती है। अतः प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना एवं उसकी भूमिका को सही रूप में समझने के लिए उस राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश को समझना आवश्यक है, जिसमें वह कार्य करती है। इस हेतु सम्बन्धित विषयों का ज्ञान आवश्यक है। दूसरे शब्दों में किसी सामाजिक व्यवस्था में लोक प्रशासन की भूमिका को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है।

प्रस्तुत इकाई में दी गयी पाठ्य सामग्री को पढकर आप भली-भाँति यह स्पष्ट कर सकेंगे कि लोक प्रशासन का विषय अन्य सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार सम्बन्धित है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- यह समझ सकेंगे कि लोक प्रशासन किस प्रकार अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित है।

- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि लोक प्रशासन किस प्रकार अपने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, कानूनी, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक परिवेशों से प्रभावित होता है और उन्हें भी प्रभावित करता है।
- ज्ञान के एकीकृत स्वरूप पर प्रकाश डाल सकेंगे।

5.2 लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान

लोक प्रशासन शायद ही किसी अन्य सामाजिक विज्ञान से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, जितना कि राजनीति विज्ञान से। राजनीति विज्ञान राज्य, सरकार तथा उन समस्त संस्थाओं का अध्ययन करता है, जिसके माध्यम से समाज के सदस्य अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। यह व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के लगभग आठवें दशक तक लोक प्रशासन, राजनीति विज्ञान का ही एक भाग माना जाता था। 1887 से संयुक्त राज्य अमेरिका में वुडरो विल्सन ने इसे राजनीति विज्ञान से पृथक करने का आह्वान किया। अपने लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में विल्सन ने लिखा कि 'प्रशासन राजनीति के विषय क्षेत्र के बाहर है। प्रशासकीय समस्याऐं राजनीतिक समस्याऐं नहीं होती। यद्यपि राजनीति, प्रशासन के कार्यों का स्वरूप निर्धारित करती है, तथापि उसको यह अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए कि वह प्रशासकीय पक्षों के बारे में हेर-फेर कर सके।' एक अन्य लेखक फ्रेंक गुडनाउ ने राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन के पृथक्करण का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि 'राजनीति राज्य-इच्छा को प्रतिपादित करती है, जबकि प्रशासन इस इच्छा या नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है।' उपर्युक्त मत संयुक्त राज्य अमेरिका की तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में सुधारों से प्रेरित थे, जो भ्रष्टाचार एवं अक्षमता से ग्रसित था। इसका उद्देश्य उस 'इनामी पद्धति' की बुराइयों को दूर करना था, जिसके अनुसार सत्ता में आने वाला राजनैतिक दल प्रशासन चलाने के लिए अपने पूर्ववर्ती द्वारा नियुक्त अधिकारियों के स्थान पर अपने चुने अधिकारियों को नियुक्त करता था। लेकिन कालान्तर में यह महसूस किया जाने लगा कि लोक प्रशासन की राजनीति विज्ञान से पृथकता इस विषय के विकास को अवरूद्ध कर रही है। परिणामस्वरूप, समकालीन विद्वान लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान के एकीकरण का पुनः समर्थन करने लगे है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासकीय व्यवस्था से जुड़ी होती है। वास्तव में प्रशासकीय व्यवस्था का सृजन ही राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से होता है। ये दोनों एक-दूसरे को इस सीमा तक प्रभावित करते हैं कि कभी-कभी इनकी पृथक भूमिका निर्धारित करना कठिन होता है। डिमॉक ने सही कहा है कि 'लोक प्रशासन तथा राजनीति एक-दूसरे से इतने घनिष्ठ हैं कि इन दोनों के मध्य कोई विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। राजनीतिज्ञ जब एक विभाग की अध्यक्षता करता है तो वह एक प्रशासक के रूप में कार्य करता है और जब वह सरकार में अपने दल की तस्वीर को सुधारने की कोशिश करता है, तो वह एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है।'

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रशासन का कार्य वहाँ आरम्भ होता है, जहाँ राजनीतिज्ञ का कार्य समाप्त होता है। अर्थात राजनीतिज्ञ पहले नीतियों का निर्धारण करता है तथा उसके बाद उन नीतियों को क्रियान्वित करने का दायित्व प्रशासक का होता है। लेकिन व्यावहारिक स्थिति तो यह है कि नीतियों के निर्धारण में भी प्रशासक वर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मंत्री जन प्रतिनिधि होते हैं, अपने विभाग के विशेषज्ञ नहीं। वे आते-जाते रहते हैं, स्थायी रूप से नहीं रहते। ऐसी स्थिति में उन्हें विशेषज्ञ प्रशासकों के सलाह पर निर्भर रहना पड़ता है।

वरिष्ठ प्रशासक मंत्रियों को आवश्यक आंकड़े, जानकारी तथा सलाह देकर नीति-निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वास्तव में अगर देखा जाय तो राजनीति की सफलता प्रशासकीय कार्यकुशलता पर और प्रशासकीय सफलता स्थायी राजनीति तथा स्वरूप पथ-प्रदर्शन पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, राजनीति के बिना प्रशासन तथा प्रशासन के बिना राजनीति अपूर्ण है। विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थायें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है जो उनके प्रशासन की प्रकृति और स्वरूप को प्रभावित करती है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक व्यवस्था को समझे बिना प्रशासनिक व्यवस्था को समझना मुश्किल है। उदाहरणस्वरूप, एक लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में प्रशासनिक कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने राजनीतिक स्वामी के आदेशों का पालन करें। ऐसी स्थिति में मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित 'नौकरशाही की तटस्थता' की अवधारणा सही नहीं रहती है। इसी प्रकार साम्यवादी देशों या विकासशील देशों में लोक प्रशासन एक विशेष प्रकार की भूमिका निभाता है। अतः सम्बन्धित देशों में लोक प्रशासन की भूमिका को समझने के लिए उन देशों की राजनीतिक व्यवस्था को समझना होगा।

राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन दोनों में अध्ययन के कुछ सामान्य क्षेत्र पाये जाते हैं। जैसे-तुलनात्मक संविधान, स्थानीय शासन, लोकनीति इत्यादि। इसके अतिरिक्त दोनों विषयों के शोधकर्ताओं की पद्धतियों एवं तकनीकों में भी बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन का राजनीति विज्ञान से निकट सम्बन्ध है। सैद्धान्तिक रूप से राजनीति एवं प्रशासन में भले ही भिन्नता हो, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इन्हें पृथक करना मुश्किल है। लेसली लिपसन ने ठीक ही कहा है कि ''सरकार के कार्यों के मध्य पूर्ण विभाजन की कोई रेखा खींचना असम्भव है। सरकार निरन्तर गति से चलने वाली एक प्रक्रिया है। व्यवस्थापन उसकी एक मंजिल है और प्रशासन दूसरी। दोनों एक-दूसरे से मिली हुई हैं और कुछ बिन्दुओं पर उनमें अन्तर कर पाना मुश्किल है।'' वास्तव में राजनीति एवं प्रशासन एक-दूसरे के पूरक हैं और उन्हें एक ही सिक्के का दो पहलू माना जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-1

1. प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के लगभग आठवें दशक तक लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान का ही एक भाग माना जाता था। सत्य/असत्य
2. ..... ने लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक करने का आह्वान किया।

5.3 लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र

समाजशास्त्र सामाजिक संरचनाओं, प्रक्रियाओं, रीति-रिवाजों, परम्पराओं इत्यादि का क्रमबद्ध अध्ययन करता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में यह व्यक्ति के समस्त क्रियाओं से सम्बन्धित है। लोक प्रशासन भी समाज की एक प्रक्रिया है। जहाँ एक तरफ सामाजिक परिवेश लोक प्रशासन की संरचना एवं भूमिका को प्रभावित करता है, वहीं दूसरी तरफ लोक प्रशासन भी कई बार सामाजिक परिवेश को प्रभावित करता है। विशेषकर उन परम्परागत समाजों में जो वर्गीय, जातिगत एवं धार्मिक प्रतिबद्धताओं से ग्रसित है और जहाँ पर्याप्त सामाजिक आर्थिक विषमताऐं विद्यमान हैं। लोक प्रशासन का अध्ययन बिना सामाजिक परिवेश को दृष्टिगत किये किया जाना सम्भव नहीं है। रिग्स एवं प्रेस्थस जैसे विद्वानों ने इसी उद्देश्य से लोक प्रशासन के अध्ययन में 'पारिस्थिकीय दृष्टिकोण' विकसित किया है।

प्रत्येक समाज कुछ विशेष लक्ष्यों, मूल्यों एवं विश्वासों से सम्बन्धित होता है। समाज का एक अंग होने के नाते लोक प्रशासन भी उन्हीं लक्ष्यों, मूल्यों एवं विश्वासों से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार इनमें पारस्परिक सम्बद्धता होती है। समाजशास्त्र का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के समूहों के व्यवहारों एवं उन तरीकों के अध्ययन से है, जिनसे कि समूह मनुष्य के कार्यों एवं मूल्य प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। प्रशासन एक सहकारी प्रयास है, जिसमें बहुत सारे लोग किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति में संलग्न होते हैं। प्रशासक वर्ग स्वयं अपने आप में एक समूह है जिसे ''नौकरशाही'' कहा जाता है और जिसकी एक विशिष्ट पहचान होती है। यह समूह अपने सामाजिक वातावरण को प्रभावित करता है और स्वयं इससे प्रभावित भी होता है। ऐसी स्थिति में प्रशासक वर्ग के लिए विभिन्न सामाजिक समूहों, उनके व्यवहारों एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की जानकारी आवश्यक है, जोकि उन्हें समाजशास्त्र ही उपलब्ध कराता है।

प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए केवल व्यक्ति को समझना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उस वातावरण को भी समझना आवश्यक है, जिसके अन्तर्गत वह निवास करता है। उदाहरणस्वरूप- अपराधों को रोकना एक प्रमुख प्रशासनिक समस्या है, लेकिन ऐसी समस्या का जड़ से उन्मूलन तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि उन सामाजिक आर्थिक कारणों का पता नहीं लगा लिया जाता, जिसके कारण बड़े पैमाने पर समाज में अपराध की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती है। यहाँ पर समाजशास्त्र लोक प्रशासन की मदद करता है। बहुत से व्यक्ति मजबूरी के कारण अपराध करते हैं और उनमें सुधरने की प्रवृत्ति होती है। अतः ऐसे व्यक्तियों के प्रति एक मानवीय दृष्टिकोण अपनाये जाने की जरूरत होती है। समाजशास्त्र प्रशासकों में इस तरह के मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। इसी से प्रेरित होकर जेल व्यवस्था में कई प्रकार के सुधार किये गये हैं और अपराधियों को समाजोपयेागी बनाने हेतु अनेक प्रकार की योजनाऐं चलाई जाती हैं।

आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों के अन्तर्गत लोक प्रशासन का कार्य केवल कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने या कर वसूलने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक हित में विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने से भी सम्बन्धित है। किसी योजना का सफल कार्यान्वयन इस बात पर निर्भर करता है कि प्रशासक उस योजना के निहितार्थ सामाजिक मूल्यों एवं उद्देश्यों के प्रति कितनी आस्था या प्रतिबद्धता रखते हैं। लोक प्रशासन में 'प्रतिबद्ध नौकरशाही' की अवधारणा का विकास इसी सन्दर्भ में हुआ है। यहाँ समाजशास्त्र किसी नीतिगत फैसले के सामाजिक निहितार्थ को समझने में लोक प्रशासन की मदद करता है।

लोक प्रशासन की परम्परागत अवधारणा में मानव व्यवहार को स्थिर मानकर प्रशासन की संरचनाओं को अधिक महत्व दिया गया था। लेकिन समकालीन सिद्धान्तवादी मानव व्यवहार को गतिशील मानते हुए यह जानने में उत्सुकता रखते हैं कि किसी विशेष परिस्थिति में प्रशासक द्वारा कोई विशेष निर्णय क्यों लिया गया? इस तरह के शोध हेतु प्रशासकों की सामाजिक पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक होता है, जिसे प्राप्त करने के लिए समाजशास्त्र द्वारा विकसित साधनों का प्रयोग किया जा सकता है। विशेषकर आधुनिक काल में लोक प्रशासन में ऐसे शोध की प्रवृत्ति बढी हैं, जिसमें बड़े पैमाने पर समाजशास्त्र द्वारा विकसित प्रतिमानों का प्रयोग किया जा रहा है।

मैक्स बेवर जैसे समाजशास्त्री द्वारा प्रस्तुत 'नौकरशाही का सिद्धान्त' लोक प्रशासन का एक चर्चित सिद्धान्त है, जिसने कई विद्वानों को प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त पदस्थिति, वर्ग, सत्ता इत्यादि पर किये गये समाजशास्त्र के कुछ हाल के शोधकार्यों ने लोक प्रशासन के अध्ययन को समृद्ध करने में सहायता दी है।

इस प्रकार, लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

अभ्यास प्रश्न- 2

1. सामाजिक परिवेश लोक प्रशासन की संरचना को प्रभावित नहीं करता है। सत्य/असत्य
2. प्रशासक वर्ग अपने आप में एक समूह है, जिसे ..... कहा जाता है।

5.4 लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र

लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र की निकटता प्राचीनकाल से ही देखने को मिलती है। कौटिल्य का ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' न केवल प्रशासन की कला पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है बल्कि अर्थशास्त्र का भी सन्दर्भ-ग्रन्थ है। कई मामलों में यह ग्रन्थ लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र के निकट सम्बन्धों को दर्शाता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र की घनिष्ठता को और भी बढा दिया है। आज के सन्दर्भ में प्रशासक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे आर्थिक समस्याओं के बारे में पर्याप्त समझदारी है। वस्तुतः प्रत्येक प्रशासकीय नीति का मूल्यांकन उसके आर्थिक परिणामों के आधार पर ही किया जाता है। यही कारण है कि विभिन्न दबाव समूह अपने-अपने आर्थिक हितों के संरक्षण के लिए प्रशासन को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। स्पष्टतः आर्थिक समस्याओं से अवगत न होने की स्थिति में प्रशासक अपने उत्तर दायित्वों का सही तरीके से निर्वाह नहीं कर सकते।

नवीन आर्थिक विचार प्रशासन के संगठन और उसकी रीतियों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते रहे हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में राज्य के प्रवेश के फलस्वरूप नये प्रकार के प्रशासकीय संगठन, सार्वजनिक निगम का उदय हुआ है। आज प्रशासकों के नियंत्रण में बीमा कम्पनियों के प्रबन्ध बैंकिंग, कृषि से सम्बन्धित समस्याओं का निपटारा आदि है। इस प्रकार आर्थिक मामलों में सरकारी क्षेत्र की भूमिका निरन्तर बढती रही है, जिसने लोक प्रशासन में अर्थशास्त्र के ज्ञान की महत्ता को बढा दिया है। यही कारण है कि हमारे देश में 'भारतीय आर्थिक सेवा' का अलग से गठन किया गया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र तथा लोक प्रशासन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि लोक प्रशासन अर्थशास्त्र को संगठन प्रदान करता है तो अर्थशास्त्र, प्रशासन को संगठन के लिए धन के स्रोत प्रदान करता है। इन दोनों की घनिष्ठता निम्नलिखित रूप से स्पष्ट की जा सकती है-

1. एक आर्थिक प्रश्न भी है और यह लोक प्रशासन का विषय भी है।
2. बजट का सम्बन्ध लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र दोनों से ही है।
3. उद्योगों का राष्ट्रीयकरण केवल एक आर्थिक प्रश्न ही नहीं है, यह लोक प्रशासन का गम्भीर विषय भी है।
4. उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ समाज में परिवर्तन होता है और जिसके फलस्वरूप हमारी प्रशासकीय व्यवस्था भी बदल जाती है।
5. राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था प्रशासन की कार्यकुशलता पर अबलम्बित है।
6. नियोजन अर्थशास्त्र तथा लोक प्रशासन दोनों से सम्बन्धित है।
7. अर्थशास्त्र का 'सांख्यिकी विभाग' लोक प्रशासन के संगठन का महत्वपूर्ण विभाग है।
8. सामान्य नीतियों के निर्धारण पर आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।
9. सरकारी तथा सार्वजनिक निगम, उद्योग-धन्धों की व्यवस्था, श्रमिक समस्या, मुद्रा, अधिकोषण आदि का सम्बन्ध लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र दोनों से है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक प्रशासन का अर्थशास्त्र के साथ निकट सम्बन्ध है।

5.5 लोक प्रशासन एवं विधि शास्त्र

विधि या कानून सत्ता द्वारा आरोपित आचार-विचार के वे नियम हैं, जिसका पालन करना अनिवार्य होता है और जिसका उल्लंघन करने पर व्यक्ति दण्ड का भागी होता है। नियमों को लागू करने का कार्य प्रशासन का होता है। अतः लोक प्रशासन एंव विधिशास्त्र एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।

लोक प्रशासन का संचालन देश की विधियों द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत होता है। प्रशासक कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता जो विधि के प्रतिकूल हो, भले ही अन्य आधारों पर वह विवेकपूर्ण क्यों न प्रतीत होता हो। यथार्थ में लोक प्रशासन को विधि के दाहिनी ओर रहना होता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है कि वह न केवल ऐसे कार्य करे जिनसे विधियों का उल्लंघन न हो, अपितु ऐसे कार्य करे जिनके लिए कानून अनुमति प्रदान करता हो। लोक प्रशासन एंव निजी प्रशासन में इसी आधार पर अन्तर किया जाता है कि निजी प्रशासन वैधानिक सत्ता की मर्यादा को उस रूप में स्वीकार नहीं करता है जिस रूप में लोक प्रशासन करता है। यद्यपि कानून प्रशासन को पर्याप्त 'स्वविवेकपूर्ण शक्तियां' भी प्रदान करता है, परन्तु स्वविवेक का प्रयोग भी स्वेच्छाचारी तरीके से नहीं किया जा सकता।

अधिकांश विधियों में सार्वजनिक नीतियों की अभिव्यक्ति होती है, जिसे क्रियान्वित करना प्रशासन का मुख्य दायित्व है। विल्सन के शब्दों में ''लोक प्रशासन सार्वजनिक विधि के व्यवस्थित तथा विस्तृत कार्यान्वयन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'' इस निकट सम्बन्ध के कारण ही कई देशों में लोक प्रशासन को मुख्यतः सार्वजनिक विधि की एक शाखा के रूप में ही मान्यता प्राप्त है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि प्रशासन की भूमिका केवल विधियों के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विधियों के निर्माण से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिकांश विधेयकों की उत्पत्ति प्रशासकीय विभागों में ही होती है।

प्रशासन के उत्तर दायित्व को वहन करने के क्षेत्र में विधि एक बहुत बड़ा साधन है। प्रशासन के अनाधिकृत कार्यों तथा वैधानिक सत्ता के उल्लंघन को न्यायालय विधियों के अनुसार ठीक कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त विधि के आधार पर प्रशासकों को नागरिकों के अधिकारों का अतिक्रमण करने से रोका जा सकता है। एक बड़ी सीमा तक विधि की मौलिक धारणाओं की रचना को प्रभावित करती है। वस्तुतः इसी आधार पर हम उन विधियों के औचित्य की व्याख्या कर सकते हैं, जिनके द्वारा समाज के कमजोर वर्गों के लोगों को शासन द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता है।

प्रशासन के विरूद्ध जाँच करने वाले अधिकारी 'ओमबुड्समैन' (भारतीय रूप लोकपाल एवं लोकायुक्त) का अध्ययन लोक प्रशासन के अन्तर्गत जन-शिकायतों को दूर करने वाली संस्था के रूप में किया जाता है। इस प्रकार की संस्थाओं का अध्ययन विधिशास्त्र तथा लोक प्रशासन के बीच बढते हुए सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यायोजित विधायन, प्रशासनिक न्यायाधिकरण का गठन, कार्य निष्पादन जैसे कुछ विषयों का अध्ययन लोक प्रशासन तथा विधिशास्त्र दोनों विषयों में किया जाता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन का विधिशास्त्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।

5.6 लोक प्रशासन एवं इतिहास

इतिहास सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है जो हमें भूतकाल की जानकारी उपलब्ध कराता है। लोक प्रशासन के अध्ययन हेतु अपेक्षित सामग्री हमें इतिहास से प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होता है। वास्तव में ऐतिहासिक सन्दर्भ की अनुपस्थिति में किसी भी देश की प्रशासकीय प्रणाली का अध्ययन समुचित रूप से नहीं किया जा सकता। सच तो

यह है कि विभिन्न प्रशासकीय संस्थाओं की उत्पत्ति और विकास को केवल इतिहास की सहायता से ही समझा जा सकता है।

इतिहास मानव अनुभवों की विशाल खान है। हमारी प्राचीन प्रशासनिक समस्याऐं क्या थीं और विशेष परिस्थितियों में उनका समाधान किस प्रकार हुआ? यह सब इतिहास से हमें ज्ञात हो सकता है। इतिहास में हम लोक प्रशासन के लिए उदाहरण एवं चेतावनी दोनों ही प्राप्त करते हैं। प्रशासन की भावी रूपरेखा तैयार करने में इतिहास हमारी बहुत बड़ी सहायता करता है। लोक प्रशासन अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति प्रयोगात्मक नहीं है। इतिहास में प्रशासन सम्बन्धी जो अनुभव है वे ही हमारे लिए प्रयोग की सामग्री है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में कौन-कौन से विचार कब और कैसी परिस्थितियों में उत्पन्न होते रहे हैं, किस प्रकार उसका खण्डन अथवा समर्थन होता रहा है, यह सब हमें इतिहास से मिल सकता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन की परम्परागत पद्धतियों में ऐतिहासिक पद्धति काफी लोकप्रिय रही है। इस सम्बन्ध में एल0 डी0 व्हाइट की दो पुस्तकें 'द फेडरलिस्ट्स' तथा 'जेफ्फरसोनियन्स' काफी चर्चित रही हैं। इन पुस्तकों में अमेरिकी गणतन्त्र के प्रथम चालीस वर्षों के संघ प्रशासन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ये पुस्तकें उस समय की प्रशासकीय व्यवस्था को समझने के लिए महत्वपूर्ण विषय सामग्री प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त एस0 बी0 क्राइन्स की 'एन इण्टोडक्शन टू द एडमिनिस्ट्रेटिव हिस्ट्री ऑफ में डिवल इंग्लैण्ड' मुखर्जी की 'लोकल गवर्नमेंण्ट इन एन्सिऐंट इण्डिया' जदुनाथ सरकार द्वारा रचित 'मुगल एडमिनिस्टेशन' बी0 जी0 सप्रे की 'ग्रोथ ऑफ इन्डियन एडमिनिस्ट्रेशन' इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस प्रकार का प्रशासनिक इतिहास का अध्ययन समकालीन लोक प्रशासन की पृष्टभूमि को समझने में हमारी मदद करता है। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रचलित प्रशासकीय व्यवस्थाओं पर विशेष ध्यान देने की प्रवृत्ति लोक प्रशासन के विषय के लिए एक शुभ संकेत है, क्योंकि इससे अत्यन्त मूल्यवान सामग्री प्राप्त होगी। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन इतिहास से भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

5.7 लोक प्रशासन एवं मनोविज्ञान

मनोविज्ञान समाज में मानवीय आचरण का अध्ययन है और लोक प्रशासन मानवीय प्रक्रियाओं का। अब से पहले प्रशासन में मनोविज्ञान के महत्व को स्वीकार नहीं किया जाता था, परन्तु अर्थशास्त्र की भाँति आज मनुष्य की प्रत्येक क्रिया में मनोवैज्ञानिक तत्व को खोजने की चेष्टा की जाती है। लोक प्रशासन में मनोविज्ञान का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ रहा है। विशेषकर सामाजिक एवं ओद्यौगिक मनोविज्ञान का महत्व आज सभी लोग स्वीकार करते हैं। सभी लोक कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने राजनीतिक स्वामी(जनता) के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखेंगे और अच्छे सम्बन्धों को विकसित करने के लिए मनोविज्ञान की जानकारी आवश्यक है। मानव की प्रकृति परिवर्तनशील है। कई बार परिस्थितिवश अथवा किसी भावावेश में आकर व्यक्ति अपने व्यवहार को बदल देता है। ऐसी स्थिति में एक कुशल प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि वह जन-मनोविज्ञान से परिचित हो। जनमत को समझने में मनोविज्ञान से काफी सहायता मिलती है। बहुत से अपराधों का विश्लेषण इसी आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोक सेवाओं में भर्ती के समय मनोवैज्ञानिकों द्वारा विकसित बुद्धि परिक्षणों का अधिकाधिक मात्रा में प्रयोग होने लगा है। लोक सेवाओं के क्षेत्र में उत्प्रेरणाओं तथा मनोबल की समस्याऐं यथार्थ में मनोवैज्ञानिक समस्याऐं हैं, जिन्हें मनोविज्ञान की मदद से ही समझा जा सकता है तथा उनका निराकरण किया जा सकता है।

5.8 लोक प्रशासन एवं नीतिशास्त्र

नीतिशास्त्र मानव आचरण एवं व्यवहार के सम्बन्ध में उचित, अनुचित का ज्ञान कराता है। लोक प्रशासन का उद्देश्य ऐसे अनुकूल एवं स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें नैतिकता सम्भव हो सके। अतः ये दोनों विषय एक-दूसरे से सम्बन्धित है।

प्रशासन में नैतिकता का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार हम नैतिकता के अभाव में स्वस्थ राजनीति की कल्पना नहीं कर सकते, उसी प्रकार इसके अभाव में कुशल एवं उत्तर दायी प्रशासन की कल्पना करना व्यर्थ है। नैतिक वातावरण की उत्पत्ति प्रशासन का लक्ष्य है। नैतिकता प्रशासन को वह मापदण्ड प्रदान करती है, जिसकी सहायता से प्रशासक-वर्ग के कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है। यद्यपि परम्परागत रूप से 'मितव्ययिता' एवं 'कार्यकुशलता' को प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य माना जाता रहा है, किन्तु वास्तविकता यह है कि नैतिकता विहीन प्रशासन न तो 'मितव्ययी' हो सकता है न ही कार्यकुशल। ऐसे प्रशासन से हम न तो प्रगति की अपेक्षा कर सकते हैं, ना ही जीवन में मूल्यवान वस्तुओं की।

विज्ञान और प्रविधि स्वयं किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकती। चाहे वे जातिगत या साम्प्रदायिक विद्वेष एवं संघर्ष के रूप में हो या छुआछूत, सती प्रथा, बाल विवाह, नारी उत्पीड़न जैसी सामाजिक बुराईयों के रूप में। हमें इन समस्याओं के समाधान के लिए ऐसी सामाजिक नैतिकता की आवश्यकता है जो मनुष्य में मानवीय गुणों को बढावा दे। यथार्थ में लोकतंत्र का अस्तित्व ही उच्च नैतिक गुणों को विकसित किये बिना सम्भव नहीं है। यदि मनुष्यों के बीच बन्धुत्व की भावना को जान बूझकर विकसित नहीं किया गया तो प्रविधि का विकास अन्ततोगत्वा विनाश एवं अराजकता को ही जन्म देगा। इसलिए हमारी आज की पृष्टभूमि में उच्च नैतिक गुणों से सम्पन्न व्यक्तियों की जितनी अधिक आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। वस्तुतः आज के युग में प्रशासन की बागडोर ऐसे लोगों के हाथ में सौंपे जाने पर ही समाज एवं राष्ट्र का कल्याण हो सकता है।

लोक प्रशासकों में जो गुण सबसे अधिक अपेक्षित है, वह है ईमानदारी। परन्तु आज हमारे देश के प्रशासकों में इस गुण का सर्वथा अभाव है। आम लोगों में यह धारणा बन गयी है कि बिना रिश्वत के कोई भी प्रशासनिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। वास्तव में सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास इसका एक प्रमुख कारण है। विभिन्न विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं के लिए आवंटित धनराशि का एक बहुत बड़ा हिस्सा प्रशासनिक अधिकारियों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा हड़प लिया जाता है। ऐसी स्थिति में क्या हम अपेक्षित प्रगति की कल्पना कर सकते है? वास्तव में देश की प्रगति को सम्भव बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश के प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार का अन्त हो। नीतिशास्त्र का अध्ययन तथा उसके नियमों का कार्यान्वयन हमें वांछित लक्ष्य की ओर आगे बढने की प्रेरणा दे सकता है।

अभ्यास प्रश्न- 3

1. आज के प्रशासक के लिए आर्थिक समस्याओं की पर्याप्त जानकारी आवश्यक है। सत्य/असत्य
2. ''लोक प्रशासन सार्वजनिक विधि के व्यवस्थित तथा विस्तृत कार्यान्वय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'' यह किसका कथन है?
3. लोक प्रशासन इतिहास से सम्बन्धित नहीं है। सत्य/असत्य
4. लोक सेवा के क्षेत्र में उत्प्रेरणाओं तथा मनोबल की समस्याएं यथार्थ में ..... समस्याऐं हैं।
5. परम्परागत रूप से मितव्ययिता एवं ..... को प्रशासन का मुख्य लक्ष्य माना जाता रहा है।

5.9 सारांश

विभिन्न सामाजिक घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं। अतः किसी भी सामाजिक घटना का विश्लेषण उसके विभिन्न आयामों को समझे बिना नहीं किया जा सकता। ज्ञान एक समन्वित इकाई है, लेकिन इसके विभिन्न पहलुओं के विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता ने विशिष्टीकरण को प्रेरित किया। यद्यपि विशिष्टीकरण की वृद्धि से शोध को बढावा मिला, लेकिन इससे सामाजिक यथार्थ के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाई है। अतः विभिन्न विषयों के अध्ययन में 'अन्तः अनुशासनात्मक दृष्टिकोण' अपनाना आवश्यक हो गया है। लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों- राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, विधिशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका अभ्युदय राजनीति विज्ञान से हुआ है। कुछ सताब्दी पूर्व इसे राजनीति विज्ञान से अलग किया गया, लेकिन एक स्वतंत्र विषय के रूप में बनाए रखने में कठिनाई हो रही है। यह महसूस किया जा रहा है कि राजनीति विज्ञान से ली गयी संकल्पनाओं से लोक प्रशासन को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। सैद्धान्तिक दृष्टि से राजनीति एवं प्रशासन भले ही अलग-अलग हों, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इनमें भिन्नता करना मुश्किल है। इसी प्रकार समाजशास्त्र से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि बिना सामाजिक परिवेश को समझे प्रशासन की प्रकृति एवं भूमिका को समझना मुश्किल है। मैक्स बेवर जैसे समाजशास्त्री के कार्यों ने लोक प्रशासन के सिद्धान्तों और व्यवहारों को प्रभावित किया है। आधुनिक काल में प्रशासन को सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख संवाहक माना जाता है।

इसी प्रकार नियोजित आर्थिक विकास की आवश्यकताओं ने अर्थशास्त्र के साथ भी लोक प्रशासन के सम्बन्धों को मजबूत बनाया है। नीतियों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने के लिए आधुनिक प्रशासकों को उसके आर्थिक पहलुओं की जानकारी आवश्यक है।

अर्द्ध-विकसित एवं विकासशील देशों में प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु निर्धनता का उन्मूलन करना है। संसाधनों को संघटित करने सम्बन्धी सभी मामलों (कराधान, निर्यात, आयात आदि) का प्रशासन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

प्रशासनिक संस्थाओं के वर्तमान स्वरूप को सही रूप में समझने के लिए उसके अतीत को जानना आवश्यक है। इस दृष्टि से इतिहास का ज्ञान लोक प्रशासन में लाभदायक है। विधिशास्त्र के साथ भी लोक प्रशासन का अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि प्रशासन को सार्वजनिक विधि के व्यवस्थित निष्पादन का यंत्र समझा जाता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल में एक कुशल प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि 'जन मनोविज्ञान' से परिचित हो। इस दृष्टि से मनोविज्ञान से भी लोक प्रशासन की निकटता बढी है। अन्त में बढते हुए प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही की प्रवृत्तियों के कारण लोक प्रशासन में नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना पर बहुत अधिक बल दिया जा रहा है। इस दृष्टि से नीतिशास्त्र के साथ भी इसके सम्बन्धों में प्रगाढता आई है।

5.10 शब्दावली

इनामी पद्धति- अमेरिका में पायी जाने वाली इस व्यवस्था को पद पुरस्कार व्यवस्था के नाम से भी जाना जाता है। यह एक प्रशासनिक बुराई थी जिसके अन्तर्गत प्रत्येक चुनाव के बाद नया प्रशासनिक अध्यक्ष अपनी रूचि के अनुसार प्रशासनिक पदों पर अपने दल के लोगों की नियुक्ति करता था।

विकासशील देश- ऐसा देश जो अर्द्ध-विकसित अवस्था से विकास की ओर अग्रसर है।

प्रतिबद्ध नौकरशाही- कुछ निश्चित उद्देश्यों एवं विचारधाराओं के प्रति समर्पित प्रशासनिक कर्मचारियों का वर्ग या प्रशासनिक व्यवस्था।

मनोबल- व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आधार पर मानसिक या नैतिक विकास।

ओम्बुडसमैन- संसद या ऐसी ही किसी संस्था द्वारा नियुक्त अधिकारी जो कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त हो और जो सरकारी विभागों द्वारा नागरिकों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार की शिकायतों की जाँच करे तथा शिकायतों का उचित समाधान सुझाये।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- **1.** सत्य, **2.** वुडरो विल्सन

अभ्यास प्रश्न 2- **1.** असत्य, **2.** नौकरशाही

अभ्यास प्रश्न 3- **1.** सत्य, **2.** विल्सन, **3.** असत्य, **4.** मनौवैज्ञानिक, **5.** कार्यकुशलता

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शरण, परमात्मा एवं चतुर्वेदी, दिनेश चन्द्र, (1985), लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ।
2. सिंह, आर0एन0,(1978), लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, रतन प्रकाशन मंदिर आगरा।

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डिमॉक, एम0इ0 एवं डिमॉक जी0ए0 (1975) पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई0बी0 एच0, पब्लिक कम्पनी, नई दिल्ली।
2. शर्मा, एम0पी0, (1960), पब्लिक एडमिनिस्टेशन थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस, किताब महल इलाहाबाद।

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन का राजनीति विज्ञान, समाजशाशास्त्र तथा अर्थशास्त्र से क्या सम्बन्ध है? विवेचना कीजिए।
2. लोक प्रशासन का विधिशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान एवं नीतिशास्त्र से सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 6 विकास प्रशासन- अर्थ, विशेषताऐं और क्षेत्र

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 विकास प्रशासन
    6.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
    6.2.2 विकास प्रशासन का उद्देश्य
    6.2.3 विकास प्रशासन की विशेषताऐं
    6.2.4 विकास प्रशासन की आवश्यक शर्तें
    6.2.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र
6.3 भारत में विकास प्रशासन
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

विकास प्रशासन द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात नये स्वतंत्र राष्ट्रों के उदय एवं पुनर्निर्माण की धारणाओं से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत विकास को सर्वोच्चता प्रदान करने हेतु समाज में आर्थिक-सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की धारा को प्रमुखता देना है। विकास प्रशासन के माध्यम से प्रशासन की यह पहल होती है कि देश के लोगों का सर्वांगीण विकास एवं प्रशासन में सहभागिता सुनिश्चित की जा सके। तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, कुपोषण एक सामान्य स्थिति थी। इन रूग्ण(बीमार) स्थितियों को परिवर्तित करने के लिए कम संसाधनों में अधिक से अधिक लोगों के जीवन स्तर को सुधारना एक कड़ी चुनौती थी। इसी सन्दर्भ में विकाश प्रशासन का उदय होता है जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लक्ष्यों को केन्द्रित करके उनका समाधान त्वरित समय में किया जा सके।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विकास प्रशासन की अवधारणा, अर्थ एवं उद्देश्यों के बारे में जान करेंगे।
- विकास प्रशासन के विशेषताओं, क्षेत्र एवं आवश्यक शर्तों के सम्बन्ध में जान करेंगे।
- भारत में विकास प्रशासन की प्रगति के बारे में जान सकेंगे।

6.2 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन एक गतिशील और परिवर्तनशील अवधारणा है, जो समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। यह सन्दर्भ प्राजातांत्रिक विधाओं में जनता की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए एवं उनके जीवन स्तर को उपर लाने का एक प्रयास है। स्वतंत्रता के पश्चात अधिकांश देशों ने संवैधानिक एवं समाजवादी उद्देश्यों हेतु कई प्रकार के प्रशासनिक प्रयास किए गये। इनमें मुख्यतः रोजगार उन्मुख योजनाऐं, गरीबी रेखा से उपर उठाने के प्रयास एवं लोगों को प्राथमिक उपचार की आधारभूत सुविधाऐं उपलब्ध कराना शामिल है। आज विश्व के देश विकास कार्यों में लगे हैं और उन कार्यों को सुचारू रूप से करने के लिए विकास प्रशासन की आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता द्वितीय महायुद्ध के बाद उत्पन्न परिस्थितियों के कारण महसूस की गयी। युद्ध की विभीषिका ने देशों के आधारभूत ढ़ाँचागत व्यवस्था पर जबरदस्त कुठाराघात किया, जिसके कारण देशों को योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए नियोजकों, प्रशासकों एवं अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों की सहायता लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। एक विषय के रूप में विकास प्रशासन अमेरिकी उपज है, जिसके विविध रूप अफ्रीका, लैटिन अमेरिका एवं एशिया के देशों में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। इन देशों में विकास प्रशासन का महत्व इतना हो गया है कि यहाँ इसकी प्रशासनिक संरचनाओं, संगठनों, नीतियों, योजनाओं, कार्यों एवं परियोजनाओं को विकासात्मक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के रूप में जाना गया है। आज के दौर में विकासात्मक कार्य राष्ट्र निर्माण और सामाजिक-आर्थिक प्रगति को लक्ष्य करके विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को मूर्त रूप दे रहे हैं।

6.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

विकास प्रशासन की रचना का उद्देश्य यह अध्ययन करना है कि लोक प्रशासन सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न पारिस्थितिकीय विन्यासों में किस प्रकार कार्य करता है और परिवर्तित भी होता है। इस विस्तृत परिप्रेक्ष्य में 'विकास प्रशासन' शब्द की अनेक व्याख्याएँ की गयी हैं। शब्दकोष में 'विकास' शब्द का अर्थ उद्देश्यमूलक है, क्योंकि इसका उल्लेख प्रायः उच्चतर, पूर्णतर और अधिकतर परिपक्वतापूर्ण स्थिति की ओर बढ़ना है। 'विकास' को मन की एक स्थिति तथा 'एक दिशा' के रूप में भी देखा गया है। एक निश्चित लक्ष्य की अपेक्षा विकास एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है। इसके अतिरिक्त विकास को परिवर्तन के उस पक्ष के रूप में भी देखा गया है जो नियोजित तथा अभीष्ट हो और प्रशासकीय कार्यों से निर्देशित हो।

'विकास प्रशासन' दो शब्दों के योग से बना है, विकास और प्रशासन। 'विकास' शब्द का अर्थ होता है निरन्तर आगे बढ़ना और 'प्रशासन' का अर्थ है सेवा करना। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विकास प्रशासन में जनता की सेवा के लिए विकास कार्यों को करना निहित है। लोक प्रशासन में विकास का तात्पर्य किसी सामाजिक संरचना का प्रगति की ओर बढ़ना है। इस प्रकार समाज में प्रगति की दिशा में जो भी परिवर्तन होते हैं उन्हें विकास की संज्ञा दी जाती है। विकास प्रशासन का आज विशेष महत्व है। इस शब्द को सबसे पहले 1955 में भारतीय विद्वान यू0 एल0 गोस्वामी ने प्रयोग किया था। परन्तु इसको औपचारिक मान्यता उस समय प्रदान की गयी जब इसके बौद्धिक आधार का निर्माण किया। तब से विकास प्रशासन की व्याख्याऐं और परिभाषाऐं बतायी जाती रही हैं। विद्वानों द्वारा विकास प्रशासन की निम्नलिखित परिभाषाऐं दी गयी हैं-

प्रो0 ए0 वीडनर के अनुसार, ''विकास प्रशासन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए संगठन का मार्गदर्शन करता है। यह मुख्य रूप से एक कार्योन्मुख एवं लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक प्रणाली पर जोर देता है।''

प्रो0 रिग्स के अनुसार, ''विकास प्रशासन का सम्बन्ध विकास कार्यक्रमों के प्रशासन, बड़े संगठन विशेषकर सरकार की प्रणालियों, विकास लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए नीतियों और योजनाओं को क्रियान्वित करने से है।''
डोनाल्ड सी0 स्टोन का कहना है कि ''विकास प्रशासन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त प्रयास के रूप में सभी तत्वों और साधनों (मानवीय और भौतिक) का सम्मिश्रण है। इसका लक्ष्य निर्धारित समयक्रम के अन्तर्गत विकास के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति है।''
जॉन डी0 मॉण्टगोमरी ने कहा है कि ''विकास प्रशासन का तात्पर्य अर्थव्यवस्था और कुछ हद तक सामाजिक सेवाओं में नियोजित ढंग से परिवर्तन लाना है।''
वी0 जगन्नाथ के अनुसार, ''विकास प्रशासन वह प्रक्रिया है जो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु क्रिया प्रेरित और अभिमुख होती है। इसके अन्तर्गत नीति, योजना, कार्यक्रम, परियोजनाऐं आदि सभी आती हैं।''
फेनसोड ने विकास प्रशासन की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''विकास प्रशासन नवीन मूल्यों को लाने वाला है, इसमें वे सभी नये कार्य सम्मिलित होते हैं जो विकासशील देशों ने आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के मार्ग पर चलने के लिए अपने हाथों में लिए हैं। साधारणतया विकास प्रशासन में संगठन और साधन सम्मिलित हैं जो नियोजन, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय आय का प्रसार करने के लिए साधनों को जुटाने और बाँटने के लिए स्थापित किये जाते हैं।''
उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से विकास प्रशासन की संकुचित और विस्तृत दोनों ही विचारधाराऐं स्पष्ट होती हैं। फेनसोड की परिभाषा संकुचित है तो वीडनर और रिग्स की परिभाषा विस्तृत है। विकास प्रशासन में भिन्नता के बावजूद भी सभी विद्वान इस मत से सहमत हैं कि यह लक्ष्योन्मुखी और कार्योन्मुखी है। सामान्यतया विकास प्रशासन को एक निश्चित और निर्धारित कार्यक्रम की पूर्ति के लिए अपनाया जाता है, न कि प्रतिदिन के प्रशासन को कार्यान्वित करने के लिए। परिभाषाओं के उपर्युक्त विश्लेषण के पश्चात विकास प्रशासन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तत्व उभरकर सामने आते हैं-

1. विकास प्रशासन आगे बढ़ने की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया है।
2. विकास प्रशासन गतिशील और निरन्तर प्रक्रिया है।
3. निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विकास प्रशासन संयुक्त प्रयास है।
4. तीसरी दुनिया की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का यह साधन है।
5. विकास प्रशासन केवल विकास का प्रशासन ही नहीं अपितु वह स्यवं में प्रशासन का विकास भी है।
6. यह कार्योन्मुखी और लक्ष्योन्मुखी भी है।

6.2.2 विकास प्रशासन का उद्देश्य

विकास प्रशासन के उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. विकास सम्बन्धी नीतियों एवं लक्ष्यों का उचित सामंजस्य स्थापित करना।
2. कार्यक्रम एवं परियोजनाओं का प्रबन्धन।
3. प्रशासनिक संगठन एवं प्रक्रिया का पुर्नगठन करना।
4. विकास कार्यों में जनता की सहभागिता सुनिश्चित करना।
5. प्रशासनिक पारदर्शिता को स्थापित करना।
6. सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संरचना की प्रगति करना।

7. परिणामों का मूल्यांकन करना।
8. आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी साधनों का प्रयोग करना।
9. लोगों को विकास में सहभागी बनाना।
10. लोगों के जीवन स्तर को सुधारना।

6.2.3 विकास प्रशासन की विशेषताऐं

विकास प्रशासन की अवधारणा का श्रेय अमेरिकन विचारकों को जाता है। एडवर्ड वीडनर, जो इस क्षेत्र में अग्रज हैं, जिन्होंने विकास प्रशासन को प्रक्रियान्मुख और लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक तन्त्र के रूप में माना है। दूसरी ओर प्रो0 रिग्स के अनुसार विकास प्रशासन के अन्तर्गत प्रशासनिक समस्याऐं और सरकारी सुधार दोनों ही आते हैं। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था की क्षमता बढ़ाने और विकास के लक्ष्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए नियोजित विकास की प्रक्रिया अपनायी जाती है। तथ्यों की दृष्टि से विकास प्रशासन योजना, नीति, कार्यक्रम तथा परियोजना से सम्बन्ध रखता है। अवधारणा रूप से विकास प्रशासन का अर्थ न केवल जनता के लिए प्रशासन है, परन्तु यह जनता के साथ कार्य करने वाला प्रशासन है। विकास प्रशासन सरकार का कार्यात्मक पहलू है, जिसका तात्पर्य सरकार द्वारा जनकल्याण तथा जनजीवन को व्यवस्थित करने के लिए किए गए प्रयासों से है। सामान्यतः विकास प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. विकास प्रशासन की शुरूआत ''कम्प्यूटरीकरण'' से होती है, वस्तुतः कम्प्यूटर प्रशासन में एक "मौन क्रान्ति" साबित हुआ है, क्योंकि कम्प्यूटरीकरण द्वारा प्रशासन का मशीनी कार्य, मशीन ले लेता है, जिसमें प्रशासन का मानवीय पक्ष सशक्त होता है, जिसे प्रशासन का मानकीकरण भी कहते हैं, क्योंकि आखिरकार प्रशासनिक संगठन एक मानवीय संगठन है।
2. ''वातावरण में लचीलापन'' विकास प्रशासन की अगली शर्त है और यह तब होता है, जब प्रशासन का कार्यबोझ कम्प्यूटर द्वारा बाँट दिया जाता है। लचीलापन का आशय है, प्रक्रियाओं का सरलीकरण, जिसमें संगठनात्मक तत्व साध्य नहीं, साधन होने हैं।
   लचीले वातावरण में, (जिसे उदार वातावरण भी कह सकते हैं) नवीन सोच को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि जब तक प्रशासन में नवीन सोच, कल्पनाशीलता नहीं होगी, विकास प्रशासन का सूत्रपात नहीं हो सकता, क्योंकि नवीन सोच ही, परिवर्तन की शुरूआत करती है।
3. ''परिवर्तन उन्मुखता'' विकास प्रशासन की अगली शर्त है, क्योंकि नवीन सोच अनिवार्य रूप से परिवर्तन को बढ़ावा नहीं देता है। जबकि विकास प्रशासन व्यवस्था में परिवर्तन की मांग करता है।
4. ''लक्ष्य उन्मुखता'' विकास प्रशान की महत्वपूर्ण शर्त है, जबकि सामान्य प्रशासन में, ज्यादातर क्षेत्रों में दिशाहीनता की स्थिति बनी रहती है। जैसे भारत में राजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, समाज में दशा स्पष्ट है, दिशा नहीं। जैसे भारत में औद्योगिक संस्कृति के माध्यम से वर्ग-समाज को बढ़ावा दिया जा रहा है, जो प्रतिस्पर्धात्मक एवं गतिशील होता है। जबकि दूसरी ओर आरक्षण नीति अथवा बोट-बैंक के निर्माण में जातिगत चेतना को बढ़ावा दिया जाता है जबकि जातिगत समाज जड़गत होता है। इस प्रकार समाज, वर्ग और जाति के छन्द में उलझकर रह गया है, जिससे दिशाहीनता की स्थिति उत्पन्न होती है।

5. ''प्रगतिवादिता'' अगला महत्वपूर्ण चरित्र है, जिसका अर्थ है, छोटे से बड़े लक्ष्य की ओर अग्रसर होना। जैसे भारत ताप विद्युत के पश्चात परमाणु विद्युत की ओर बढ़ रहा है, जो प्रगतिवादी दृष्टिकोण है और यह विकास प्रशासन का मूलमंत्र है। चूँकि प्रगति का कोई अन्त नहीं है, इसलिए विकास प्रशासन का कोई अन्त परिभाषित नहीं किया जा सकता है।
6. विकास प्रशासन ''परिणाम उन्मुख नियोजन'' पर टिका है, जबकि सामान्य प्रशासन प्रयास उन्मुख नियोजन करता है। इसी प्रकार पहले में क्रिया है तो दूसरे में विचार है, पहले में साध्य है तो दूसरे में साधन है। सरल शब्दों में विकास प्रशासन उपलब्धियों और प्रक्रियाओं से उलझा रहता है।
7. ''प्रेरणा'' विकास प्रशासन के लिए आक्सीजन की तरह है, क्योंकि प्रेरणा तभी कार्य करती है, जब योग्यता के अनुसार कार्य आवंटित होता है। कार्य के अनुसार उत्तर दायित्व, उत्तर दायित्व के अनुसार प्राधिकार और प्राधिकार के अनुसार पुरस्कार और इस आन्तरिक सम्बन्ध को विकास प्रशासन समझता है, जबकि सामान्य प्रशासन में इसका अभाव होता है। यही कारण है कि सामान्य प्रशासन में प्रतिबद्धता बढ़ती नहीं, घटती है।
8. ''लोक उन्मुखता'' अगली शर्त है, जिसका आशय है- लोक नीतियां लोक समस्याओं पर आधारित हों। वह आधारभूत समस्याओं से जुड़ी हुई हों। जबकि सामान्य प्रशासन में लोकनीतियां सामान्य आधारभूत समस्याओं को नजरअंदाज कर देती हैं। वस्तुतः लोक समस्याऐं वे हैं, जिसमें सार्वजनिक हित छिपा होता है, जिसका राष्ट्रीय महत्व होता है, उसके साथ व्यापक मांगें होती हैं और मांगों के साथ समर्थन भी होता है।
9. लोक उन्मुखता के पश्चात ''लोक भागीदारी'' अन्य महत्वपूर्ण शर्त है, यह पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए कि लोक उन्मुखता से ही लोक भागीदारिता सुनिश्चित होती है। वस्तुतः लोकभागीदारिता की कुछ अन्य शर्तें भी हैं, जैसे-
    - भागीदारिता के पर्याप्त अवसर होने चाहिए।
    - अवसर का लाभ उठाने के लिए योग्यता होनी चाहिए।
    - योग्यता साक्षरता से जुड़ा है।
    - योग्यता एवं साक्षरता पर्याप्त नहीं है, वस्तुतः भागीदारिता के लिए ''चाहत'' भी होनी चाहिए।
    - इन सब के उपर, समाज की सामाजिक मनोवैज्ञानिक संरचना सकारात्मक होनी चाहिए।
10. ''एकीकरण'' विकास प्रशासन की सफलता निर्धारित करता है, क्योंकि जब लोक-भागीदारिता सुनिश्चित होती है, तो वैचारिक मतभेद एवं हितों के टकराव भी बढ़ते हैं, जिससे प्रशासन में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। जिसके लिए विकास प्रशासन तैयार रहता है। जबकि सामान्य प्रशासन अराजकता के समक्ष घुटने टेक देता है। वहीं विकास प्रशासन एकीकरण का प्रयास करता है, जिसका अर्थ है- समन्वय।
11. अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण चरित्र है ''परिवर्तन ग्रहण करने की क्षमता'' क्योंकि विकास प्रशासन परिवर्तनों को आमंत्रित करता है, उन्हें समायोजित करता है और ऐसे परिवर्तन स्थायी होते हैं।

जबकि सामान्य प्रशासन परिवर्तनों को आमतौर पर हतोत्साहित करता है और यही कारण है कि प्रशासनिक पकड़ जैसे ही कमजोर होती है, परिवर्तन वापस अपनी स्थिति में चला जाता है।

कुल मिलाकर सैद्धान्तिक रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य प्रशासन एवं विकास प्रशासन अलग-अलग है, यह छन्दात्मक है, लेकिन वस्तुस्थिति बिल्कुल भिन्न है। वस्तुतः यह सामान्य प्रशासन है, जो विकास प्रशासन को आधार प्रदान करता है, क्योंकि जब तक प्रशासनिक गतिविधियों का विस्तार नहीं होगा, तब तक प्रशासन का कम्प्यूटरीकरण सम्भव नहीं। इस प्रकार कम्प्यूटरीकरण से पहले प्रशासन का एक वृहद ढ़ाँचा तो होना ही चाहिए, जो और कुछ नहीं सामान्य प्रशासन है, क्योंकि प्रयास एवं परिणाम को अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। संरचना एवं उत्पाद अलग-अलग नहीं हो सकते हैं। साधन और साध्य अलग-अलग नहीं हो सकते हैं। जब यह जुड़े हैं, तो सामान्य प्रशासन एवं विकास प्रशासन को अलग-अलग कैसे सोचा जा सकता है।

6.2.4 विकास प्रशासन की आवश्यक शर्तें

विकास प्रशासन देश के समग्र विकास तथा आय बढ़ाने की दिशा में नियोजन, अर्थिक उन्नयन, साधनों के कुशल आवंटन तथा संचारण हेतु उचित व्यवस्था के लिए कृत संकल्प है। इन उद्देश्यों हेतु निम्न आधार वांछनीय हैं-

1. निरन्तर बढ़ते हुए कार्यों के साथ विकास क्षेत्र में प्रशासन की भूमिका बढ़ती जायेगी।
2. सरकार समस्त विकास प्रक्रिया को निर्देशित करेगी।
3. सरकारी कार्यों की जटिलता बढ़ाने से विशेषज्ञों द्वारा कार्यों का निष्पादन करने की प्रवृत्ति बढ़ाना।
4. प्रशासन में सभी स्तरों पर नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्तियों में सेवा की भावना तथा समर्पण का जोश होना।
5. प्रशासन में तकनीकी परिवर्तनों को समझने और अपनाने की क्षमता होनी चाहिए।
6. प्रशासन और जनता के मध्य सहयोग और विश्वास की भावना रहनी चाहिए।
7. निर्णय लेने वाले संगठनों को लचकदार और कल्पनाशील होना पड़ेगा।
8. विकास प्रशासन की प्रक्रिया में कार्मिकों के प्रशिक्षण पर अनवरत जोर दिया जाना चाहिए।
9. विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया अनवरत तौर पर जारी रहनी चाहिए, जिससे कि हर स्तर पर लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित किया जा सके।
10. लोक-सहभागिता एवं लोकविमर्श को निरन्तर प्रोत्साहन मिलना चाहिए, जिससे कि आम आदमी निर्णयन की प्रक्रिया में अपने को हिस्सेदार महसूस कर सके।
11. अविकसित क्षेत्रों के विकास के लिए योजनाओं में प्राथमिकता मिलनी चाहिये।
12. प्रेस एवं संचार माध्यमों को तटस्थ रखना चाहिए, जिससे सूचना का सही प्रसार हो सके।
13. राजनीतिक स्थायित्व का होना आवश्यक है, क्योंकि राजनीतिक अस्थिरता योजनाओं को विफल कर सकती है।

6.2.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र

विकास प्रशासन लोक प्रशासन की एक नवीन और विस्तृत शाखा है। इसका जन्म विकासशील देशों की नयी-नयी प्रशासनिक योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने के सन्दर्भ में हुआ है। सामान्य तौर से विकास से सम्बन्धित कार्य विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। वैसे यह भी कहा जाता है कि विकासशील देश में सभी प्रशासन विकास प्रशासन ही है। विकास प्रशासन के क्षेत्र में वे समस्त गतिविधियाँ सम्मिलित हो जाती हैं जो

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक तथा प्रशासनिक विकास से सम्बन्धित हों एवं सरकार द्वारा संचालित की जाती हों। विकास प्रशासन से सम्बन्धित साहित्य में विकास प्रशासन का दो अर्थों में प्रयोग किया गया है, पहला- यह विकास के कार्यक्रमों में प्रशासन के रूप में देखा गया है और दूसरा- प्रशासन की क्षमता को बढ़ाने के रूप में इसका प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि विकास प्रशासन वह प्रशासन है जो विकास हेतु किये जाने वाले समस्त कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं आदि के निर्माण और क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इसके साथ ही साथ प्रशासन विभिन्न समस्याओं को सुलझाने हेतु अपनी क्षमता एवं कुशलता को भी बढ़ाता है। संक्षेप में जिस प्रकार विकास के क्षेत्र को किसी निर्धारित सीमा में नहीं बांधा जा सकता, उसी प्रकार विकास प्रशासन के क्षेत्र को भी किसी निर्धारित सीमा के अन्तर्गत अथवा शीर्षक के अन्तर्गत लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं है। फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए विकास प्रशासन के क्षेत्र को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है-

1. **पोस्डकार्ब(POSDCORB) सिद्धान्त-** चूँकि विकास प्रशासन, लोक प्रशासन का ही विस्तृत अंग है, इसलिए लूथर गुलिक द्वारा व्यक्त किया गया पोस्डकार्ब सिद्धान्त विकास प्रशासन के क्षेत्र के लिए प्रासंगिक है। यह शब्द निम्नलिखित शब्दों से मिलकर बना है- नियोजन, संगठन, कर्मचारी, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन तथा बजट। ये समस्त सिद्धान्त लोक प्रशासन के लिए आवश्यक हैं। विकास प्रशासन के क्षेत्र में योजनाओं का निर्माण करना, अधिकारियों एवं अन्य सेवा-वर्गों का संगठन बनाना, कर्मचारियों की श्रंखलाबद्ध व्यवस्था करने का कार्य सम्मिलित है, ताकि प्रत्येक कर्मचारी द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में उन्हें सत्ता प्रदान की जा सके तथा उन्हें कार्य के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश दिये जा सकें। इसमें समन्वय का भी महत्वपूर्ण अधिकार सम्मिलित है। विभिन्न अधिकारियों और कर्मचारियों को सौंपे गये कार्यों के मध्य समन्वय स्थापित करना मुख्य कार्य है, ताकि कार्यों के दोहराव को रोका जा सके। विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सूचनाओं और आँकड़ों के आधार पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है। प्रशासन चाहे लोक प्रशासन हो या विकास प्रशासन, बजट की व्यवस्था और निर्माण दोनों के लिए आवश्यक है।
2. **प्रशासनिक सुधार एवं प्रबन्धकीय विकास-** इन दोनों का विकास प्रशासन में अत्यन्त महत्व होता है, इसलिए प्रशासनिक सुधार एवं प्रबन्धकीय विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। प्रशासकीय और विकासात्मक संगठनों में संगठनात्मक और प्रतिक्रियात्मक सुधारों की हमेशा आवश्यकता पड़ती है। प्रशासकीय सुधार का मुख्य उद्देश्य है जटिल कार्यों और प्रक्रियाओं को सरल बनाना तथा उन नियमों का निर्माण करना जिनसे कम से कम श्रम एवं धन व्यय करके अधिकतम उत्पादक परिणाम प्राप्त किये जा सके। इसके लिए समय-समय पर विभिन्न आयोग एवं समितियाँ गठित की जाती हैं तथा प्रशासनिक सुझाव के सम्बन्ध में इनके प्रतिवेदन मागे जाते हैं। प्रतिवेदनों में सुझाऐ गये मुद्दों पर विचार करके उन्हें लागू करवाना विकासात्मक प्रशासन का प्रमुख कार्य हो गया है। इस प्रकार नवीन तकनीकी और प्रक्रियात्मक विकास पर अत्यधिक बल देना विकासात्मक प्रशासन का कर्तव्य बन जाता है।
3. **लोक-सेवकों की समस्याओं का अध्ययन-** विकास प्रशासन को नवीन योजनाओं, परियोजनाओं, विशेषीकरण तथा जटिल प्रशासनिक कार्यक्रमों को लागू करना पड़ता है। ऐसे कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विकास प्रशासन को अनूकूल लोक सेवकों की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए लोक-सेवकों को प्रशिक्षण हेतु विभिन्न प्रकार के विशेषीकृत प्रशिक्षण संस्थानों में भेजा जाता है, जहाँ उन्हें प्रशासकीय

समस्याओं और संगठनात्मक प्रबन्ध आदि के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है। इस प्रकार समय के साथ बदली हुयी आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल लोक-सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, चयन सेवा सम्बन्धित शर्तों आदि समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

4. **नवीनतम प्रबन्धकीय तकनीक का प्रयोग-** विकास प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य उन नवीन प्रबन्धकीय तकनीक की खोज करना है, जिनसे विकास कार्यक्रमों में कार्यकुशलता बढ़ायी जा सके। इस सम्बन्ध में विकसित देशों में अपनाये जाने वाले नवीन प्रबन्धकीय तरीकों को लागू करना चाहिए। विकासात्मक प्रशासन में प्रबन्ध के क्षेत्र में नवीन चुनौतियां सामने आती रहती हैं। उन चुनौतियों से कैसे तथा किस तरीके से निपटा जाए, यह विकासात्मक प्रशासन के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, क्योंकि बिना उचित और आधुनिक प्रक्रिया के नवीन और आधुनिक चुनौतियों का सामना सम्भव नहीं है।
5. **कम्प्यूटर प्रणाली का प्रयोग-** कम्प्यूटर विकासशील देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका और सहयोग प्रदान कर सकता है। प्रशासकीय प्रबन्ध तथा प्रशासकीय विकास के लिए प्रक्रिया के क्षेत्र में यह वरदान साबित हो रहा है। आज विकासशील देश में प्रशासन को कम्प्यूटर प्रणाली का उपयोग करना पड़ रहा है। डाटा प्रोसेसिंग के मामले में तो इसकी उपयोगिता अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हो रही है। कम्प्यूटर प्रणाली को विकास प्रशासन के क्षेत्र में अब सम्मिलित कर लिया गया है।
6. **मानवीय तत्व का अध्ययन-** विकास प्रशासन के विकास में मानवीय तत्व का अध्ययन अपरिहार्य है। मानव ही समस्त प्रशासकीय व्यवस्था का संचालक, स्रोत, आधार और मार्गदृष्टा है। प्रशासन पर परम्पराओं, सभ्यता, संस्कृति, राजनीति, आर्थिक, सामाजिक और बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है। इन सबका सम्बन्ध मानव से होता है। अतः विकास प्रशासन में विविध समस्याओं को हमें मानवीय व्यवहार के परिवेश में देखना चाहिए। इस प्रकार हम इसके अन्तर्गत सामाजिक मानक मूल्यों, व्यवहार, विचारों आदि का अध्ययन करते हैं।
7. **बहुआयामी विषय-** विकास प्रशासन में विकास को सर्वोच्चता प्रदान की जाती है और इसमें समस्त क्षेत्रों जैसे- सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में परिवर्तन, प्रगति एवं विकास किया जाता है। आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक ढाँचे का विकास करना विकास प्रशासन के क्षेत्र का चुनौती भरा कार्य होता है। वस्तुतः ये कार्य विकास प्रशासन की रीढ़ होते हैं। परम्परागत संरचनाओं की कमियों और प्रक्रियाओं का सुधार कर उनकी जगह नवीन प्रकार के आर्थिक व सामाजिक ढाँचे का निर्माण करना, विकास प्रशासन के समक्ष एक चुनौती भरा कार्य बन जाता है। गतिशील और परिवर्तनशील संरचनाओं को अगर ऐसे ही छोड़ दिया तो समय और परिस्थिति के बहाव की प्रक्रिया में पीछे रह जाती हैं। ये संरचनाऐं आधुनिक चुनौतियों का समाना करने के अनुकूल नहीं रह पाती हैं, अतः इन संरचनाओं का विकास व सुधार आवश्यक हो जाता है। भारत के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाऐं स्वीकार की गयी हैं। समाजवादी लोकल्याणकारी अवधारणा के अनुसार गरीब और अमीर के बीच पायी जाने वाली असमानता को पाटने के लिए नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत किया गया है और उन्हें सत्ता प्रदान की गयी है। इस प्रकार विकास प्रशासन के क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे का विकास करना महवपूर्ण कार्य है।

विकास प्रशासन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ग्रामीण एवं शहरी विकास के कार्यक्रमों को लागू करना है। ग्रामीण क्षेत्र में सिंचाई के पानी की व्यवस्था, सड़कों का निर्माण, पेयजल सुविधाऐं, सामुदायिक विकास योजनाएँ, रोजगार के कार्यक्रम, लघु-कुटीर उद्योग, आधुनिक तकनीकी का उपयोग तथा लोककल्याणकारी कार्यों को जनता तक पहुँचाना विकास प्रशासन का अंग बन गया है। इसी प्रकार शहरों में विकास के अनेक कार्यक्रम लागू किये जाते हैं। जैसे- आवासीय समस्या को हल करने के लिए आवासीय योजनाएँ, पीने के पानी की व्यवस्था, टेलीफोन, तार, संचार तथा आवागमन की सुविधाएँ, प्रदूषण नियन्त्रण की समस्याएँ आदि।

8. **जन सहभागिता-** विकास प्रशासन में जन-सम्पर्क तथा जन-सहभागिता का विशेष महत्व है। विकास कार्यों में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। वस्तुतः जन-सम्पर्क से यह जानने का प्रयास किया जाता है कि जन-कल्याण के लिए विकास के जो कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं उसका कितना लाभ आम जनता तक पहुँचता है तथा जनता की उस कार्यक्रम के सम्बन्ध में क्या प्रतिक्रिया है। इस प्रकार जन-सम्पर्क और जन-सहयोग विकास प्रशासन की एक आवश्यक शर्त है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त विकास प्रशासन के क्षेत्र में क्षेत्रीय परिषदें, सामुदायिक सेवाऐं, प्रबन्ध कार्यक्रम, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आदि का भी अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार जैसे-जैसे विकास सम्बन्धी कार्यक्रम बढ़ते जाते हैं, विकास प्रशासन का क्षेत्र भी व्यापक होता जाता है।

6.3 भारत में विकास प्रशासन

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन में निहित आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नेहरू की अगुवाई में प्रशासनिक एवं नियोजनतंत्र को स्थापित किया गया। योजना आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद जैसे निकाय अस्तित्व में आये। इनके उद्देश्यों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. **आर्थिक उद्देश्य-** नियोजन के आर्थिक उद्देश्य हैं, आर्थिक समानता, अवसर की समानता, अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार तथा अविकसित क्षेत्रों का विकास। नियोजन में राष्ट्रीय आय तथा अवसरों का समान वितरण सम्मिलित है। आय की समानता धनी वर्ग से अधिक कर द्वारा प्राप्त आय से निर्धन-वर्ग को सस्ती सेवाऐं- चिकित्सा, शिक्षा, समाजिक बीमा, सस्ते मकान आदि सुविधाऐं उपलब्ध कराने पर व्यय की जा सकती है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों को जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करके असमानता को दूर किया जा सकता है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों को जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करके असमानता को दूर किया जा सकता है।
2. **सामाजिक उद्देश्य-** नियोजन के सामाजिक उद्देश्यों में वर्गरहित समाज की स्थापना करने का लक्ष्य सम्मिलित है। श्रमिक व उद्योगपति दोनों को राष्ट्रीय आय का उचित अंश प्राप्त होना चाहिए। पिछड़ी जातियों को शिक्षा में सुविधा देना, सरकारी सेवाओं में प्राथमिकता प्रदान करना तथा महिलाओं को विकास की धारा में न्यायसंगत स्थान दिलाना। देश के दूर-दराज क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समूहों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ना एवं उनके अधिकारों की रक्षा करना।

भारत में कई कारणों से नियोजन की आवश्यकता महसूस की गयी- 1. देश की निर्धनता, 2. बेरोजगारी की समस्या, 3. औद्योगीकरण की आवश्यकता, 4. सामाजिक तथा आर्थिक विषमताऐं, 5.देश का पिछड़ापन, 6. अधिक जनसंख्या और 7. कुपोषण।

सरकार ने योजनाओं के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विभिन्न स्तरों पर समाज के हर क्षेत्र से लोगों को प्रशासन से जोड़ने के लिए राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है। सहभागिता को सुनिश्चित करने हेतु गाँव के स्तर पर पंचायतों को वित्तीय अधिकार उपलब्ध कराये हैं। जनप्रतिनिधियों को विकास में प्रत्यक्ष रूप से जोड़ने के लिए उन्हें धनराशि दी है। विशेष योजनाएँ जैसे की जे0आर0वाई0 व मनरेगा आदि को शुरू किया है, जिससे कि गाँवों में लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सके। ग्रामीण विकास के अन्तर्गत कृषि-क्षेत्र के तमाम प्रयोजनों को सरकार की तरफ से कम दाम पर खाद, बीज, बिजली, उपकरण इत्यादि उपलब्ध कराया जा रहा है। ग्रामीण परिवेश में रहने वाले लागों को मुफ़्त में शिक्षा के अवसर, पीने के पानी एवं स्वाथ्य सेवाएँ उपलब्ध हैं। इन सभी से विकास के नए प्रतिमान स्थापित हो रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकास प्रशासन लोगों की सहभागिता को महत्व नहीं देता है। सत्य/असत्य
2. परिवर्तन, विकास प्रशासन की महत्वपूर्ण कड़ी है। सत्य/असत्य
3. लक्ष्य को ध्यान में रखकर विकास प्रशासन आगे बढ़ता है। सत्य/असत्य
4. परिणाम, विकास प्रशासन के लिए महत्वपूर्ण होता है। सत्य/असत्य
5. विकास प्रशासन का क्षेत्र व्यापक है। सत्य/असत्य
6. विकास प्रशासन की प्राथमिकता लोग हैं, वस्तुवें नहीं। सत्य/असत्य

6.4 सारांश

विकास प्रशासन का अर्थ कुछ विद्वानों द्वारा प्रशासन के आधुनिकीकरण से लगाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि इसे आर्थिक विकास के लिए एक कुशल साधन के रूप में अधिक महत्व देते हैं। विकास प्रशासन सामान्य अर्थ में आर्थिक विकास की योजनाओं को बनाने तथा राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए साधनों को प्रवृत्त करने तथा बाँटने का कार्य करता है। तथ्यों की दृष्टि से विकास प्रशासन योजना, नीति, कार्यक्रम तथा परियाजनाओं से सम्बन्ध रखता है। विकास प्रशासन सरकार का कार्यात्मक पहलू है, जिसका तात्पर्य सरकार द्वारा जनकल्याण तथा जन-जीवन को व्यवस्थित करने के लिए किये गये प्रयासों से है। इसका जन्म विकासशील देशों की नयी-नयी प्रशासनिक योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने के सन्दर्भ में हुआ है। सामान्य तौर से सम्बन्धित कार्य विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। वैसे यह भी कहा जाता है कि विकासशील देश में सब प्रशासन विकास प्रशासन ही है। विकास प्रशासन के क्षेत्र में वे समस्त गतिविधियाँ सम्मिलित हो जाती हैं जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक तथा प्रशासनिक विकास से सम्बन्धित हों एवं सरकार द्वारा संचालित की जाती हों।

6.5 शब्दावली

कुठाराघात- लाक्षणिक रूप से ऐसा आघात, जिससे किसी वस्तु या व्यक्ति की जड़ कट जाए।
सभ्यता- किसी जाति या देश की बाह्य तथा भौतिक उन्नतियों का सामूहिक रूप।
पंचवर्षीय योजना- हर पाँच वर्ष के लिए योजना बनाना।

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य **3.** सत्य **4.** सत्य **5.** व्यापक **6.** लोग

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, मोहित (1979): ब्यूरोक्रेसी एण्ड डेवलेपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, उप्पल पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. बासु, रूम्की (1990): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: कान्सेप्ट एण्ड थ्योरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, दिल्ली।

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी, ए0 एवं माहेश्वरी एस0 (1990): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. भालेराव, सी0एन0, (सम्पादक) (1984): एडमिनिस्ट्रेशन, पालिटिक्स एण्ड डेवलेपमेंट इन इण्डिया, लालवानी पब्लिशर्स, बाम्बे।

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकास प्रशासन से आप क्या समझते हैं? टिप्पणी कीजिए।
2. विकास प्रशासन से सम्बन्धित एफ0 डब्लू0 रिग्स के विचारों पर प्रकाश डालिए।
3. विकास प्रशासन की विशेषताओं पर संक्षिप्त लेख लिखिये।
4. विकास प्रशासन की अवधारणा अमेरिका में हुई, परन्तु इसकी मुख्य भूमिका विकासशील देशों में है, टिप्पणी कीजिए।

इकाई- 7 विकसित एवं विकासशील देशों में विकास प्रशासन

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 विकसित और विकासशील देश- अर्थ एवं परिभाषा
7.3 विकसित और विकासशील देशों की विशेषताऐं
    7.3.1 विकासशील और विकसित देशों की राजनीतिक विशेषताऐं
    7.3.2 विकासशील और विकसित देशों की सामाजिक विशेषताऐं
    7.3.3 विकासशील और विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं
    7.3.4 विकासशील देशों का आर्थिक आधार
7.4 सारांश
7.5 शब्दावली
7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

विकसित एवं विकासशील देशों में विकास प्रशासन की चुनौतियाँ काफी भिन्न हैं। जहाँ एक ओर विकसित राष्ट्रों में साक्षरता, गरीबी, कुपोषण एवं बेरोजगारी मुख्य समस्या नहीं है, फिर भी लोगों के जीवन स्तर को सुधारने एवं आगे बढ़ाने की चुनौती प्रशासन के समक्ष निरन्तर बनी रहती है। बेहतर साक्षरता के कारण प्रशासन को लोगों को समस्याओं के निराकरण के लिए अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है, वहीं पर विकासशील देशों में निरक्षरता गरीबी एवं कुपोषण के कारण प्रशासन को लोगों के जीवन स्तर को सुधारने में अथक प्रयास करने होते हैं। आर्थिक असमानताओं के कारण स्थानीय आपसी विवाद प्रशासन के उद्देश्यों को आगे ले जाने में बांधा उत्पन्न करते हैं। इसलिए विकसित एवं विकासशील देशों की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विकसित एवं विकासशील देश क्या हैं, इसे जान पायेंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों में विकास प्रशासन की भूमिका के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- विकसित एवं विकाशसील देशों के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक प्रतिमानों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

7.2 विकसित एवं विकासशील देश- अर्थ एवं परिभाषा

विकसित और विकासशील देशों की संक्षिप्त रूप से कोई परिभाषा देना कठिन है। साधारणतया विकासशील शब्द को 'पिछड़ा', 'अविकसित' अथवा 'निर्धन' का पर्यायवाची समझा जाता रहा है। ये शब्द कुछ समय पहले तक एक-दूसरे के स्थान पर इसी अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं लेकिन इस विषय पर वर्तमान साहित्य में 'अविकसित' शब्द इस अर्थ में दूसरे 'विकासशील' 'निर्धन' अथवा 'पिछड़ा' शब्दों की तुलना में अधिक ठीक समझा गया है। विभिन्न विद्वानों ने विकाशील, विकसित तथा अविकसित देशों की विभिन्न प्रकार से परिभाषा देने का प्रयत्न किया है।

संयुक्त राष्ट्र विशेषज्ञों के अनुसार, ''एक विकासशील देश वह है, जिसमें आम तौर पर उत्पादन का कार्य तुलनात्मक दृष्टि से कम प्रति व्यक्ति वास्तविक पूँजी की लागत से किया जाता है। इसके साथ ही अन्य देशों की तुलना में कम विकसित तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इस परिभाषा से प्रति व्यक्ति कम आय तथा उत्पादन की पिछड़ी तकनीक पर जोर दिया गया है। इसका अभिप्राय ऐसे देशों से है जो संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रिया, पश्चिमी यूरोप के देशों की वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की दूर से कम प्रति व्यक्ति आय की दर वाले हैं। इस अर्थ में इन देशों के लिए निर्धन शब्द उचित होगा। यह परिभाषा ठीक अर्थों में 'विकासशील' देशों की धारणा को स्पष्ट नहीं करती।

इस प्रकार प्रो0 नर्क्से ने 'विकासशील' देशों की परिभाषा दी है। उसके अनुसार 'विकासशील' देश वे हैं जो विकसित देश की तुलना में अपनी जनसंख्या और संसाधनों की तुलना में पूँजी की दृष्टि से कम साधन सम्पन्न हैं। यह परिभाषा सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होती। इसके केवल पूँजी को आधार बनाया है और विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों को छोड़ दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूँजी एक आवश्यक तत्व है परन्तु प्रगति का केवल मात्र एक आधार नहीं।

भारतीय विद्वानों ने भी विकासशील देशों की परिभाषा करने का प्रयास किया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार, ''एक विकासशील देश वह है जिसका सह-अस्तित्व कम अथवा अधिक मात्रा में एक ओर अप्रयुक्त अथवा कम प्रयुक्त की गयी जन-शक्ति तथा दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के अप्रयोग पर आधारित है।'' इस स्थिति का कारण तकनीक के प्रयोग में स्थान अथवा कुछ विघ्नोत्पादक सामाजिक-आर्थिक कारण हो सकते हैं जो अर्थव्यवस्था में अधिक गतिशील शक्तियों को क्रियात्मक होने से रोकते हैं। भारतीय योजना आयोग द्वारा दी गयी यह परिभाषा अधिक व्यापक प्रतीत होती है, परन्तु समग्र दृष्टि से यह भी अपूर्ण है। इस परिभाषा में अप्रयुक्त संसाधनों पर बल दिया गया है। ये अप्रयुक्त संसाधन विकसित देशों में भी हो सकते हैं। इसी प्रकार कुछ विद्वानों के अनुसार विकासशील देश वे हैं जिनमें पूँजीगत वस्तुओं के स्टाक तथा वित्तीय आपूर्ति की तुलना में अकुशल श्रमिकों की अधिकता हो, अप्रयुक्त कार्यक्षम संसाधन, प्रति व्यक्ति दर से कम उत्पादकता, धीमी उत्पादन-कुशलता, जिनमें कृषि तथा आरम्भिक उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है। ऐसे देशों में गुप्त बेरोजगारी बहुत होती है और स्थायी काम-काज की कमी होती है। जेकब वाइनर ने हमें अधिक स्वीकार्य योग्य, अधिक विस्तृत और सार्थक परिभाषा दी है। उसके अनुसार, ''एक विकासशील देश वह है जिसमें अधिक पूँजी, अधिक श्रम अथवा अधिक उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के भावी प्रयोग की सम्भावना रहती है, ताकि ये देश की वर्तमान जनसंख्या का जीवन-स्तर ऊँचा बना सकें अथवा वर्तमान प्रति व्यक्ति उच्च आय दर को बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए भी कायम रख सकें।'' विकासशील देशों की दी गयी यह परिभाषा अधिक सटीक है। इसमें आर्थिक विकास

को निश्चित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारकों पर बल दिया गया है। वे हैं- प्रति व्यक्ति की दर से आय तथा विकासशीलता की सामर्थ्य। इसमें विकासशील देशों की प्रकृति के सम्बन्ध में भी संक्षिप्त व्याख्या उपलब्ध है।

विकासशील देशों की प्रकृति के सम्बन्ध में दी गयी परिभाषा संक्षिप्त व्याख्या करती है, क्योंकि 'विकास' एक ऐसी धारणा है जो बहुमुखी है। अतः विकसित तथा विकासशील देशों के सम्बन्ध में हमारा अध्ययन उस समय तक अपूर्ण रहेगा जब तक हम देश की केवल आर्थिक विशिष्टताओं पर बल देते हैं। अतः हमें देश के राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का भी अध्ययन करना होगा। परन्तु प्रमुख कठिनाई यह है कि एक विकासशील देश की रूपरेखा कैसे निश्चित की जाये। इससे भी अधिक कठिन काम विश्व में ऐसे देश को ढूँढ़ना है, जिसमें विकासशील देशों की सभी विशेषताऐं उपलब्ध हों। कुछ विद्वानों ने सभी विकासशील देशों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है- उच्च आय वाले, मध्यम आय वाले तथा कम आय वाले देश।

इस वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि इन देशों में आर्थिक विकास की दृष्टि से बहुत अधिक विषमता है। साथ ही ये देश एक-दूसरे से अन्य दिशाओं में भी काफी भिन्न हैं। विकासशील देशों में विषमता के प्रमुख आधार ये हैं-

1. विकसित देशों की आय प्रति व्यक्ति काफी अधिक होती है, जबकि विकासशील देशों की काफी कम।
2. विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर अल्प है, वहीं विकासशील देशों में यह अधिक है।
3. विकसित देशों में औद्योगिक एवं सेवा-क्षेत्र का अनुपात कृषि के तुलना में काफी अधिक होता है। विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र का अनुपात काफी अधिक होता है।
4. औद्योगिक क्षेत्र में विकसित राष्ट्र उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं, जबकि विकासशील देशों में परम्परागत तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।
5. प्राथमिक उपचार की सुविधाऐं, स्कूल, शैक्षिक स्तर विकसित राष्ट्रों में काफी अधिक होता है तथा विकासशील देशों में तुलनात्मक रूप से काफी कम होता है।
6. विकसित राष्ट्रों में गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्या कम है तथा विकासशील देशों में बेरोजगारी की दर काफी अधिक है।
7. विकासशील देशों में उत्खनन(खनन), पशुपालन एवं प्राथमिक क्षेत्रों से जुड़ी सेवाओं का बाहुल्य है, दूसरी ओर विकसित राष्ट्रों में उच्च मूल्य सवंर्धित सेवाओं तथा उत्पादों की बहुतायत है।
8. प्रशासनिक इकाईयाँ विकासशील देशों में काफी संकुचित हैं, जबकि विकसित राष्ट्रों में ये काफी दक्ष हैं।
9. आधारभूत सेवाऐं जैसे- पानी, बिजली, सड़क विकसित राष्ट्रों में उच्च कोटी की हैं, जबकि विकासशील देशों में ये निम्न स्तर की हैं।

अभ्यास प्रश्न- 1

1. विकसित राष्ट्रों के विकास का आधार सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आधुनिकीकरण है। सत्य/असत्य
2. विकासशील देशों में प्रशासन को लक्ष्योउन्मुखी होना चाहिये। सत्य/असत्य
3. विकासशील देशों में जन्म की दर काफी अधिक रहती है। सत्य/असत्य

7.3 विकसित और विकासशील देशों की विशेषताऐं

विकसित और विकासशील देशों की विशेषताओं को निम्न शीर्षकों से समझने का प्रयास करते हैं।

7.3.1 विकासशील और विकसित देशों की राजनीतिक विशेषताऐं

1. **राजनीतिक स्थायित्व-** कई विकासशील देशों में प्रारम्भिक अथवा वास्तविक राजनीतिक अस्थिरता विद्यमान है। यह अस्थिरता हो सकता है कि, उन पद्धतियों का अवशिष्ट हो जो औपनिवेशिक शक्तियों के विरूद्ध चलाये गये देशगत आन्दोलनों के परिणामस्वरूप विकसित हुई हों। ऐसे देशों में अपूर्ण लक्ष्यों के कारण बहुत अधिक निराशा फैल जाती है। ऐसे देशों में चाहे कैसी भी राजनीतिक संस्थाऐं विद्यमान हों, उनमें सभी जन-समुदायों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। ऐसे देशों में विभिन्न जातीय, भाषाई अथवा धार्मिक वर्गों में भेदभाव की भावना जड़ें जमा चुकी हैं। ऐसी स्थितियों में विकासशील देश राजनैतिक दृष्टि से स्थायी नहीं रह सकते।

   विकसित देशों के लिए राजनीतिक स्थिरता एक प्रमुख आवश्यकता है। किसी भी मूल्य पर ये देश की राजनीतिक स्थिरता को बनाये रखना चाहते हैं। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर ऐसे देशों ने कुछ ऐसी राजनैतिक संस्थाओं का विकास किया है जो न केवल विभिन्न जातियों को प्रतिनिधित्व देती है, बल्कि उन्होंने कुछ सशक्त प्रथाओं का भी विकास किया है। ऐसे देशों में भेदभाव की बहुत ही कम सम्भावना है।
2. **राजनीतिक प्रमुखों की विकास के लिए प्रतिबद्धता-** राजनीतिक प्रमुखों में वचनबद्धता का अभाव होता है। उनका ध्यान लोगों की इच्छाओं की पूर्ति की अपेक्षा स्वार्थ की पूर्ति की ओर अधिक रहता है। उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य हर स्थिति में शक्ति को हथियाना है। हरियाणा राज्य में हाल ही में घटित घटनाऐं तथा अन्य कई राज्यों की घटनाऐं इस बात का संकेत करती हैं कि बन्दूक की नोक पर लोग शक्ति हथियाना चाहते हैं। यदि विकासशील देशों में इस प्रकार की परिस्थिति रहती है, तब राजनीतिक नेताओं में विकास के लिए प्रतिबद्ध होना बहुत कम सम्भव है। ऐसे देशों की एक रोचक विशेषता यह है कि ऐसे असामाजिक तत्व जिन्हें समाज ने त्याग दिया है, अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं। स्मगलर, कातिल तथा उग्रवादी ऐसे लोग देश की बागडोर हथियाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उदाहरण के लिए लीबिया, सूडान इत्यादि। विकसित देशों में स्थिति सर्वथा विपरीत है। राजनीतिक नेताओं में 'विकास' के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित प्रतिबद्धता है। विकसित देशों में यह प्रतिबद्धता कुछ आदर्शों पर चलती है। साँझे लक्ष्य हैं- कृषि अथवा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, जीवन-स्तर, जन-स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यक्तिगत पेंशन, स्त्रियों तथा निम्न जातियों की परम्परागत भूमिका में परिवर्तन, एक जाति के प्रति वफादारी का नव-निर्मित राष्ट्र के प्रति वफादारी के रूप में परिवर्तन के सम्बन्ध में नये संशोधित कार्यक्रमों को अपनाना।
3. **आधुनिकीकरण करने वाले तथा परम्परागत नेता-** विकासशील देशों में आधुनिकीकरण के पक्षपाती तथा परम्परागत नेताओं के मध्य बड़ा भारी भेद रहता है। आधुनिकीकरण के पक्षधरों का झुकाव नगरीकरण की ओर होता है। वे पश्चिमीकरण में अधिक विश्वास करते हैं। वे सुशिक्षित युवा होते हैं। वे राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। दूसरी ओर परम्परागत नेताओं का झुकाव ग्रामों की ओर अधिक होता है। वे स्थानीय रस्मों-रिवाजों तथा अपने ही धर्म में विश्वास रखने वाले होते हैं। साथ ही इस प्रकार के नेता परिवर्तन के विरूद्ध होते हैं। ऐसे परिवर्तन को वे मूल्यों पर कुठाराघात समझते हैं। नये नेता तकनीकी कौशल को प्राप्त करना चाहेंगे जो राष्ट्र के विकास के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। परन्तु पुराने विचारों वाले नेता ग्रामीण क्षेत्रों तथा गन्दी बस्तियों के प्रति गहरी वफादारी को बनाये रखने में अधिक विश्वास रखते हैं।

4. **राजनीतिक शक्ति की न्याय संगति-** विकासशील अथवा अपूर्ण विकसित देशों में राजनीतिक शक्ति विधि अनुसार नहीं होती। इन देशों में अवैध तरीकों से शक्ति प्राप्त की जाती है। विकासशील देशों में राजनीतिक व्यवस्था को छः भागों में बाँटा जाता है- परम्परागत निरंकुश शासन व्यवस्था; निरंकुश नेतृत्व व्यवस्था; बहुतन्त्रीय स्पर्द्धात्मक व्यवस्था; प्रभावी दल अर्द्ध-स्पर्द्धात्मक व्यवस्था और कम्युनिस्ट व्यवस्था। परम्परागत निरंकुश व्यवस्थाओं में राजनैतिक नेता चिर-स्थापित सामाजिक व्यवस्था से शक्ति प्राप्त करते हैं, जिनमें अधिकतर बल वंशानुगत राज्य-पद्धति अथवा कुलीनतन्त्रीय शासन-व्यवस्था पर दिया जाता है। इस व्यवस्था के कुछ उदाहरण यमन, सऊदी अरब, अफगानिस्तान, इथोपिया, लीबिया मोरक्को और ईरान हैं। ईरान जैसे कुछ देशों में बड़े परिवर्तन हो चुके हैं। लेकिन कुलीनतन्त्र शासन व्यवस्था में सैनिक अधिकारी और कभी-कभी उनके असैनिक मित्र भी शासक होते हैं। दक्षिणी कोरिया, थाईलैण्ड, बर्मा, इण्डोनेशिया और इराक इसके उदाहरण हैं।

   बहुतन्त्रीय स्पर्द्धात्मक व्यवस्था में फिलिपाइन, इजराइल, अर्जेण्टीना, ब्राजील तुर्की तथा नाइजीरिया जैसे राज्यों में पश्चिमी दल अर्द्ध-स्पर्द्धात्मक व्यवस्था में वास्तव में एक दल बहुत प्रभावी होता है। देश की राजनैतिक शक्ति पर उसका लगभग एकाधिकार होता है। ऐसे देशों में दूसरी पार्टियां वैध तो होती हैं, परन्तु उनके पास अधिकार नाम मात्र का होता है। इसके उदाहरण भारत और मोरक्को हैं।

5. **राजनीति कार्यक्रम की सीमा-** विकासशील देशों में राजनीतिक कार्यक्रमों की मात्रा और कार्य-क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि लोगों के अन्दर राजनैतिक जागरूकता का अभाव होता है। इस सम्बन्ध में जो भी संस्थाएँ होती हैं, वे क्रियाशील नहीं होती, क्योंकि इन देशों की शक्ति वैध नहीं होती।

   दूसरी ओर विकसित देशों में इस प्रकार की परिस्थिति नहीं होती। वास्तव में ऐसे समाज कल्याणकारी राज्य होते हैं। कल्याणकारी राज्यों का जन्म ऐसी समस्याओं का समाधान करना है जो औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा बढ़ रही जनसंख्या के कारण उत्पन्न हुई हैं, जो विकास-क्रम का एक भाग हैं।

6. **राजनीति व्यवस्था में लोगों की रूचि और ग्रस्तता-** विकासशील देशों में राजनीतिक व्यवस्था में लोगों की रूचि तथा भागीदारी उत्साहजनक नहीं है। अनपढ़ता के कारण अधिकतर लोग राजनीतिक कार्यों के महत्व को नहीं समझते। लेकिन भारत जैसे देश में इस प्रकार की स्थिति नहीं है। लोग अपने देशों की राजनैतिक प्रक्रिया में रूचि नहीं रखते और ना ही उसमें भाग लेते हैं, लेकिन यह अवस्था नगण्य है। वास्तव में विकसित देशों में लोग राजनीतिक कार्यों में अधिक रूचि लेने के साथ राजनीतिक कार्यों में सक्रिय रूप से भाग भी लेते हैं।

7. **राजनीतिक निर्णय-** राजनीतिक नेताओं के सम्बन्ध में पहले की गयी चर्चा में हमने संकेत दिया है कि अविकासशील समाज में परम्परागत नेतृत्व अधिक सशक्त होता जाता है। लेकिन विकसित देशों में परम्परागत नेतृत्व प्रतिदिन दुर्बल होता जाता है। इन परिस्थितियों में जहाँ परम्परागत नेतृत्व निरन्तर शक्ति और प्रभाव को प्राप्त करता जाता है, तर्कसंगत तथा धर्म-निरपेक्षता के आधार पर निर्णय लेने सम्भव नहीं होते। न्याय और तर्कसंगति की सभी सीमाओं को लाँघ कर किसी एक अथवा दूसरे समुदाय को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से राजनीतिक निर्णय लिये जाते हैं।

8. **राजनीतिक दल-** विकसित तथा विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों ने बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि विकासशील देशों में राजनैतिक दलों ने अपने उत्तर दायित्व का निर्वाह नहीं किया, ताकि देश को राजनैतिक स्थिरता प्राप्त हो जाये।

उदाहरणस्वरूप, भारत जैसे देश में हम सशक्त दल पद्धति का विकास नहीं कर सके, ताकि लोगों को बहुदलीय प्रणाली में स्पष्ट रूप से विकल्प मिल सके। भारत में भाषा, धर्म तथा जाति के आधार पर बहुत से दल विद्यमान हैं। यही नहीं, भारत में राजनीतिक दलों में अनुशासन का पूर्ण अभाव है।

7.3.2 विकासशील और विकसित देशों की सामाजिक विशेषताऐं

1. **भूमिकाओं का निर्धारण-** विकासशील देशों में भूमिकाओं का निर्धारण उपलब्धियों के आधार पर नहीं, आरोपण/कर (Tax) के आधार पर होता है। परन्तु विकसित देशों में यह स्थिति सर्वथा विपरीत है। दोनों विकासशील तथा विकसित अथवा अविकसित देशों में विभिन्न स्तर होते हैं। परन्तु स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं कि विकासशील अथवा अविकसित देशों में यह स्तर-भेद जन्म अथवा आरोपण के आधार पर होता है, जबकि विकसित देशों में यह आधार आरोपण की अपेक्षा उपलब्धियों के आधार पर निश्चित होता है। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि भारत जैसे देश में सामाजिक स्तरों में पारस्परिक गत्यात्मकता बहुत कम हैं। इसके विपरीत यूरोप में सामाजिक गत्यात्मकता बहुत है।
2. **जातीय संरचना-** विकासशील देश में जातीय संरचना बड़ी कठोर होती है। हमारे देश में उच्च जातीय हिन्दू, निम्न जातीय हिन्दू की लड़की से विवाह नहीं करते, अन्तर-जातीय विवाह की तो बात ही दूर रही। यह जानना बड़ा रोचक है कि हमारे देश में प्रशासनिक व्यवस्था भी जातीय स्तर-पद्धति के बहुत अनुकूल पड़ती है। हमारे प्रशासकीय ढ़ाँचे में चार स्तरों के कर्मचारी हैं। यह सोचा ही नहीं जा सकता तथा यह असम्भव भी है कि श्रेणी चार के कर्मचारी को उन्नति प्रदान करके प्रथम श्रेणी का कर्मचारी बना दिया जाये। इस प्रकार प्रशासिनक श्रेणियाँ भी जातीय श्रेणियों के अनुरूप हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों में इस प्रकार का स्तरीकरण नहीं है और वहाँ गुणों के आधार पर एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में उन्नति सम्भावित है। इस प्रकार वहाँ उपलब्धियों पर अधिक बल दिया जाता है।
3. **सामाजिक संघर्ष-** विकसित देशों में सामाजिक संघर्ष की मात्रा अविकसित देशों की अपेक्षा बहुत कम होती है। अविकसित देशों में ये संघर्ष अन्तर-जातीय अथवा प्रादेशिकता के आधार पर झगड़ों का रूप धारण कर लेते हैं। उदाहरणस्वरूप, भारत जैसे देश में हम लगभग हर रोज जातीय दंगों के कारण भारत के किसी न किसी भाग में एक-दो हत्याओं के बारे में सुन लेते हैं और इनकी प्रतिक्रिया देश के दूसरे भागों में बहुत अधिक हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि विकसित देशों में ऐसी स्थिति होती ही नहीं। ऐसे देशों में भी मिथकों का प्रचार, जैसे- जातीय आधार पर उत्तमता, रंग-भेद, इत्यादि के कारण जातीय दंगे भड़के हैं, हडतालें हुई हैं, शान्ति, कानून और व्यवस्था को आघात पहुँचा है। झाड़-फूँक, हत्या और विनाश हुआ है। परन्तु इन देशों में इस प्रकार की स्थिति चिन्ताजनक नहीं होती। ऐसी घटनाऐं कभी-कभी घटती हैं। विकासशील देशों में यह स्थिति नियन्त्रण से बाहर जा रही है। उदाहरणस्वरूप भारत जैसे देश में नई दिल्ली में तथा देश के अन्य भागों में (श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या के पश्चात) सिक्खों की हत्या। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के सदस्यों को जिन्दा ही जला देना, भारतीय इतिहास की कुछ भयंकर दुर्घटनाऐं हैं। इसी प्रकार की स्थिति पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा अफ्रीका के कुछ देशों में भी विद्यमान है। इन्हीं सामाजिक झगड़ों के परिणामस्वरूप विकसित देश, विकासशील देशों को अपने नियन्त्रण में रख रहे हैं और उन्हें अपनी राजनैतिक पकड़ में बनाये रखना चाहते हैं। विकसित देशों के लिए यह लाभदायक है, परन्तु विकासशील देशें के लिए आत्महत्या के समान है।

7.3.3 विकासशील और विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

1. **कार्य-विशेषज्ञता की मात्रा-** विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था में कार्य-विशेषज्ञता की कम मात्रा एक महत्वपूर्ण विशेषता है। लेकिन दूसरी ओर संसार के सभी विकसित देशों ने अपने प्रशासकीय ढाँचे को नौकरशाही का अध्ययन करते समय मैक्स वेबर द्वारा दिये गये विचार के अनुसार कार्य-विशेषज्ञता के सिद्धान्त पर व्यवस्थित किया है। इसी प्रकार पर फ्रैड रिग्स ने विकसित देशों में प्रशासनिक व्यवस्था के अन्दर विभेदीकरण अथवा अधिक मात्रा में श्रम-विभाजन पर बल दिया है। उसके अनुसार विकसित समाज उस बहुरंगीय प्रकाश की तरह है जो प्रिज्म में से विश्लेषित होकर आ रहा है। सफेद प्रकाश अथवा मिश्रित प्रकाश की प्राचीन समाज से तुलना की जा सकती है। इसके मध्य में प्रिज्मीय समाज है। वह विकासशील अथवा प्रिज्मीय समाज की तुलना उस स्थिति से करता है, जिसमें प्रकाश प्रिज्म के अन्दर बहुरंगीय प्रकाश में बदलता है। इस मॉडल के अनुसार विकसित समाज में कार्य के विभेदीकरण पर बल दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप औरंगजेब जैसा राजा अपनी सरकार में कार्यपालक, विधायक तथा न्यायपालक भी था, क्योंकि वह कानून का निर्माता भी था, उन्हें लागू भी करता था और यह निश्चय करता था कि क्या इसे ठीक तरह से लागू भी किया गया है अथवा नहीं। लेकिन आधुनिक सरकार में उक्त कार्यों को करने वाले अलग-अलग अंग हैं। यह उदाहरण उस व्यवस्था को प्रकट करता है जिसे रिग्ज ने विश्लेषण द्वारा प्रकट किया है। यहाँ यह बताना रोचक है कि प्रारम्भिक ब्रिटिश प्रशासन काल में भारतीय प्रशासनिक सेवाएँ- वैधानिक, कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य तथा औचित्य का निपटारा करने का काम करती थीं। वास्तव में भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के सदस्यों को भारतीय कौंसिल एक्ट के अधीन कौंसिलों द्वारा नामांकित किया जाता था। इस प्रकार वे वैधानिक कार्यों में भाग लेते थे। इसी के साथ-साथ प्रशासकीय अधिकारी थे और कार्यपालिका के सदस्य होते थे। वे ही न्यापालिका का कार्य भी करते थे। अब, वास्तव में भारत में विधि-निर्माता, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका शक्तियाँ एक-दूसरे से अलग-अलग हैं। लेकिन कुछ राज्यों में जिला स्तर पर कार्यपालिका तथा अपराध सम्बन्धी न्याय देने का काम एक ही अधिकारी द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया के अनुसार हम राजनैतिक व्यवस्था में विभेदीकरण की स्थिति को देखते हैं। उदाहरणस्वरूप विकासशील देशों में जिला मजिस्ट्रेट के स्तर पर विभेदीकरण का अभाव हमें अंग्रेजों से विरासत में मिला है। जिला मजिस्ट्रेट का कानून और व्यवस्था को बनाये रखने के लिए, राजस्व इकट्ठा करने के लिए योजना बनाने और विकास के लिए विभागों में तालमेल बनाये रखने तथा उन्हें नियन्त्रण में रखने के लिए उत्तर दायी है। इस प्रकार जिला मजिस्ट्रेट का कार्यालय अविभेदित संरचना का उदाहरण है।
2. **प्रशासकीय कार्यों का विकास और विस्तार-** विकासशील देशों में प्रशासकीय कार्यों का भार कम होता है, क्योंकि ऐसे देशों में औद्योगीकरण तीव्र गति से नहीं होता। अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में रहती है। बेशक विकासशील देशों में नगरीकरण हो रहा है, लेकिन यह नगण्य है। इसकी तुलना में विकसित देशों और प्रशासकीय क्षेत्र में बहुत अधिक विकास और विस्तार हो गया है। इसका कारण पर्याप्त सीमा तक औद्योगीकरण, नगरीकरण, लगभग प्रत्येक उन्नति के क्षेत्र में वैधानिक खोज तथा प्रत्येक क्षेत्र में नये उपकरणों की सहायता से कार्य सम्पादन करना इसके साधन हैं। इन देशों में प्रजा पर प्रशासन करने के बहुत आसान तरीके विकसित किये गये हैं। हर सम्भव प्रयत्न किया जा रहा है कि जटिलताओं और

प्रशासकीय प्रक्रिया में इसको कम किया जाये, परन्तु विकाशील देशों में ऐसी अवस्था का विकास नहीं हुआ।

3. **लोक प्रशासन का प्रतिमान-** विकासशील देशों में लोक प्रशासन का प्रतिमान अधिकतर पश्चिम की नकल है। अक्सर ये देश अपने पूर्व प्रशासकों की प्रशासन-पद्धति को अपनाते हैं। इन देशों में प्रशासन पद्धति देशी उपज नहीं होती, बल्कि यह अधिकतर विकसित देशों से ली जाती है। विकसित देशों में कुछ समय पश्चात अपने लिये ऐसे प्रशासकीय ढाँचे बना लिये हैं जो केवल उन्हीं देशों के अनुकूल हैं। परन्तु दुर्भाग्य से विकासशील देशों ने इन ढाँचों को बिना किसी प्रकार के सोच-विचार के अपनी प्रशासन-पद्धति के रूप में अपना लिया है। पश्चिम से अथवा अपने पूर्व प्रशासकों से लिये गये प्रशासकीय ढाँचों के बड़े हानिकर परिणाम निकले हैं।
4. **नौकरशाही का स्तर-** विकासशील देशों की नौकरशाही में कुशल जन-शक्ति की कमी होती है। यदि विकासशील देश अपने विकास कार्यक्रमों में तेजी लाना चाहते हैं, तो उन्हें कुशल जन-शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। वास्तव में समस्या नियुक्ति और योग्य जन-शक्ति की नहीं है, क्योंकि अधिक बेरोजगारी अथवा कम रोजगारी की स्थिति रहती है। निम्न स्तर के लोगों की उदाहरण स्वरूप सहायकों, टाइपिस्टों, चपरासियों की भर्ती विश्व स्तर पर ही आवश्यकता से अधिक है, कमी तो प्रशिक्षित प्रशासकों की है। भारत में भी शिक्षित नवयुवकों में भी अत्यधिक बेरोजगारी होने के बावजूद प्रशिक्षित प्रबन्धों की कमी है। आजकल प्रबन्धकीय कौशल का विकास किया गया है और हमें वित्तीय प्रबन्ध, कर्मचारी प्रबन्ध सामान-सूची प्रबन्ध इत्यादि के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता है। लेकिन विकसित देशों में इस प्रकार की अवस्था नहीं होती। इन देशों में प्रशासनिक व्यवस्था से नीति-निर्माण की प्रक्रिया, इसके सदस्यों तथा अन्य भागीदारों द्वारा व्यावसायिक कार्य समझा जाता है। इन देशों में नौकरशाही लोगों में व्यवसायीकरण को विशेषीकरण का ही चिन्ह माना जाता है।

7.3.4 विकासशील देशों का आर्थिक आधार

निर्धनता, संसार में विकासशील देशों की एक बड़ी प्रमुख विशेषता है। क्रान्ति से पूर्व की स्थिति की तुलना में, इनमें से अधिक देश अधिक निर्धन तथा कम विकसित हैं। वे तो औद्योगीकरण से पहले की स्थिति वाले पाश्चात्य देशों से भी अधिक निर्धन हैं। यह स्थिति अधिक जनसंख्या वाले देशों से दूसरे देशों की तुलना में अधिक दयनीय है।

1. **प्राथमिक उत्पाद-** विकासशील देशों की एक मूलभूत विशेषता यह भी है कि ये ऐसे देश हैं, जिनमें केवल प्राथमिक वस्तुओं का ही उत्पादन होता है। वास्तव में विकासशील देशों में उत्पादन का प्रारूप प्रमुखतया अनाज तथा कच्चे माल के उत्पादन के रूप में होता है। विकासशील देश प्रमुखतया कृषि प्रधान देश होता है। उदाहरणस्वरूप भारत में 70 प्रतिशत से अधिक लोग आजीविका के लिए प्रमुखतया कृषि पर निर्भर करते हैं।
2. **प्राकृतिक संसाधन-** विकासशील देशों में प्राकृतिक संसाधनों का अस्तित्व होता है, परन्तु तकनीकी ज्ञान के बिना उनका उपयोग पूर्णतया नहीं किया जाता। यह आम धारणा है कि विकासशील देश इस कारण निर्धन हैं कि उनके पास संसाधनों की कमी है।

3. **अर्थव्यवस्था की प्रकृति-** लगभग सभी विकासशील देशों में आर्थिक दोहरापन देखने को मिलता है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह दो भागों में विभाजित है। वे हैं- 1. बाजार, 2. आधारभूत। लेकिन विकसित देशों में यह स्थिति या तो नगण्य है, अथवा इसका अभाव है।
4. **तकनीक का स्तर-** विकासशील देशों में तकनीक का स्तर बहुत नीचा है। इन दोनों में कृषि-क्षेत्र तथा उद्योग-क्षेत्र में जिन तकनीकों का पालन किया जा रहा है, वे पिछड़ी हुई हैं और पुरानी हैं। वह तकनीक जो पाश्चात्य देशों में पुरानी हो जाती है, वह विकासशील देशों द्वारा अपना ली जाती है। इसी प्रकार तकनीकी दोहरापन भी विकासशील देशों की एक प्रमुख विशेषता है।
5. **रोजगार के अवसर-** विकासशील देशों में रोजगार के अवसरों की कमी के कारण अधिक संख्या में लोग कृषि-कार्य में लग जाते हैं। परन्तु विकसित देशों में यह स्थिति नहीं है, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि इन देशों में रोजगार सम्बन्धी कोई समस्याऐं ही नहीं हैं। वास्तविकता तो यह है कि उच्च तकनीकी क्रान्ति के कारण सरकारों के कार्यक्रमों की प्रक्रियाएँ अधिक सरल हो गयी हैं, परन्तु इसके साथ ही अनेक समस्याऐं जिनमें रोजगार की समस्या भी है, उत्पन्न हो गयी हैं। लेकिन इन देशों में स्थिति अधिक चिन्ताजनक नहीं है। किन्तु विकासशील देशों में यह बद- से-बदतर होती जा रही है।
6. **पूँजी की उपलब्धि-** बहुत से विकासशील देशों को प्रायः 'पूँजी की दृष्टि से निर्धन' अथवा 'अल्प बचत' अथवा 'अल्प निवेश' वाली अर्थ व्यवस्थाऐं कहा जाता है। इसकी तुलना में जापान जैसे देश में यह 45 प्रतिशत से ऊपर है और इसी प्रकार फिनलैण्ड में यह 35 प्रतिशत से ऊपर है। भारत में पूँजी-निर्माण 20 प्रतिशत तक पहुँच गया है। इतना होने पर भी इसका लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचा।
7. **सार्वजनिक क्षेत्र पर निर्भरता-** नेतृत्व के लिए सार्वजनिक क्षेत्र पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। अनेक विकासशील देशों ने ऐसे सामाजिक ढाँचे का विकास कर लिया है जो सामाजिक या मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास करता है। ऐसे देशों में सार्वजनिक क्षेत्र नेतृत्व प्रदान करता है। विकसित देशों में यह स्थिति नहीं है।

अभ्यास प्रश्न- 2

1. विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था में कोई दोष नहीं है। सत्य/असत्य
2. विकसित राष्ट्रों में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व कम है। सत्य/असत्य
3. विकास प्रशासन विकासशील देशों में राजनीतिक स्थायित्व देता है। सत्य/असत्य
4. रिग्स का 'साला मॉडल' विकासशील देशों से सम्बन्धित है। सत्य/असत्य

7.4 सारांश

विकसित एवं विकासशील देशों की पारिस्थितिक भिन्नता प्रशासन के रूप, आचरण एवं उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं। इस बात का समर्थन रिग्स ने अपने मॉडल में विस्तृत रूप से हमें बताया है। साधारणतया विकाशसील, पिछड़ा, अविकसित अथवा निर्धन को इसका पर्यायवाची समझा जाता रहा है। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार, एक विकाशसील देश वह है जिसमें आमतौर पर उत्पादन का कार्य तुलनात्मक दृष्टि से कम प्रति व्यक्ति वास्तविक पूँजी की लागत से किया जाता है। इसके साथ ही विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा कम विकसित तकनीक का प्रयोग होता है। भारतीय विद्वानों के अनुसार एक विकाशसील देश वह है, जिसका सह-अस्तित्व कम अथवा अधिक मात्रा में एक ओर अप्रयुक्त अथवा कम प्रयुक्त की गयी जनशक्ति तथा दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर आधारित

है। इस स्थिति का कारण तकनीक के प्रयोग में स्थान अथवा कुछ विघ्नोत्पादक सामाजिक-आर्थिक कारण हो सकते हैं। प्रायः कुछ राष्ट्रों का पिछड़ापन निम्न बिन्दुओं पर आधारित है- 1. निम्न तकनीक, 2. अधिक जनसंख्या, 3. जातीय एवं पुरातन भूमि व्यवस्था, 4. निम्न स्तर का मानवीय संसाधन, 5. राजनीतिक अस्थिरता, 6. सामाजिक पिछड़ापन।

विकाशसील देशों की ये सभी प्रकार की विषमताएँ उन देशों की विकास की पद्धति तथा विकास दर में भेद उत्पन्न करते हैं।

7.5 शब्दावली

औपनिवेशिक- उपनिवेश का, उपनिवेश में होने वाले अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाला, उपनिवेश का निवासी,
पुरातन- पुराना या प्राचीन,
उत्खनन- खोदकर बाहर निकालना

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 **1.** सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य
अभ्यास प्रश्न -2 **1.** असत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, सविन्दर (1996): भारत में विकास प्रशासन, न्यू अकैडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर।
2. भ्रामरी, सी0पी0 (1972): "एडमिनिस्ट्रेशन इन ए चेन्जिंग सोसायटी", नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. हिल, जे0 माइकल (1972): "दी सोशियोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन", वीडनफील्ड एवं निकोलसन, लंदन।
4. भालेराव, सी0एन0 (सम्पादक) (1990): "एडमिनिस्ट्रेशन, पालिटिक्स एण्ड डेवलेपमेंट इन इन्डिया", लालवानी पब्लिशर्स, बाम्बे।

7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बाबा, नूरजहाँ (1984): "पीपल्स पार्टीसिपेशन इन डेवलेपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया", उप्पल पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. भट्टाचार्या, मोहित (1987): "पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन", वर्ल्ड प्रेस, दिल्ली।

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रतिमानों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
2. विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के सन्दर्भ में विकास प्रशासन की भूमिका पर लेख लिखिये।
3. "विकासशील देशों में विकास प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य, विकास एवं आधुनिकीकरण है" टिप्पणी कीजिए।

इकाई- 8 तुलनात्मक लोक प्रशासन- अर्थ, क्षेत्र एवं अध्ययन के दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन
    8.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन: अर्थ एवं परिभाषा
    8.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास
    8.2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य
    8.2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व
8.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के उपागम/दृष्टिकोण
    8.3.1 संरचनात्मक कार्यात्मक उपागम
    8.3.2 पारिस्थितिकीय उपागम
    8.3.3 व्यवहारवादी उपागम
8.4 सारांश
8.5 शब्दावली
8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में एक नवीन अवधारणा है। लोक प्रशासन के अध्ययन और विकास के क्षेत्र में जो तुलनात्मक पद्धति प्रयोग में लायी जाती थी उसी से तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा उत्पन्न हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय तथा उसके बाद के वर्षों में विभिन्न सामाजिक विज्ञानों ने तुलनात्मक अध्ययन तथा तुलनात्मक विश्लेषण पर विशेष बल देना आरम्भ कर दिया था। इसी दौरान सामाजिक शास्त्रों को विज्ञान की श्रेणी में रखने के लिए अपनी वैज्ञानिकता को बढ़ा-चढ़ा कर सम्बन्धित विषयों के विद्वान प्रयत्न करने लगे थे। वे विज्ञान में प्रगतिवादी दृष्टिकोण एवं तर्क प्रणाली की पद्धति पर सरकारों, समाजों एवं राजनीतिक इकाइयों का तुलनात्मक विवेचन करने में जुट गये। इनका मानना था कि तुलनात्मक दृष्टिकोण से हम किसी भी सन्दर्भ के भिन्न-भिन्न लक्ष्यों में वांछित परिवर्तन ला सकेंगे।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ एवं उद्देश्यों को समझ पायेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास एवं महत्व को समझ सकेंगे।

- तुलनात्मक लोक प्रशासन के विभिन्न उपागमों को जान सकेंगे।

8.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन अर्थ एवं परिभाषा

एडविन स्टीन, हर्बर्ट साइमन तथा ड्वाइट वाल्डो जैसे विद्वानों ने भी लोक प्रशासन को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए वैज्ञानिक साहित्यों की व्याख्या पर बल देना प्रारम्भ किया था। लेकिन रॉबर्ट डॉहल ने कहा कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होता तब तक विज्ञान होने का इसका दावा खोखला है।'' किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुशासन की तरह लोक प्रशासन में भी तुलनात्मक विश्लेषण की विधि का सुनिश्चित महत्व है। अतः इस बात को ध्यान में रखकर लोक प्रशासन के विद्वानों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-साहित्य तथा प्रशासकों के तुलनात्मक विश्लेषण पर बल देना प्रारम्भ किया। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के प्रारम्भिक चरणों में ड्वाइट वाल्डो, फैरेल हैडी, स्टोक्स इत्यादि विद्वानों ने अहम भूमिका निभायी। बाद में तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को अधिक समृद्ध बनाने में फ्रेड रिग्स, रिचर्ड गेबल, फ्रेडरिक क्लीवलैण्ड, एलफ्रेड डायमण्ड, फैरेल हैडी, फ्रेंक शेरवुड तथा जॉन मॉन्टगुमरी इत्यादि विद्वानों ने इसे अत्यधिक समृद्ध बनाया। ये उपर्युक्त विद्वान 'अमेरिकन सोसाइटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' द्वारा 1963 में गठित तुलनात्मक प्रशासनिक समूह से सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। 1970 के अन्त तक फ्रेड रिग्स इसके अध्यक्ष रहे। इसके बाद रिचर्ड गेबल को इसका अध्यक्ष बनाया गया। तुलनात्मक प्रशासनिक समूह की तुलना का केन्द्र विकासशील राष्ट्रों की समस्या थी। विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पर्यावरण में देखा जाता था। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास के लिए इस समूह ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियाँ, सम्मेलन तथा सेमिनारों का आयोजन करवाया।

आर0 के0 अरोड़ा ने अपनी पुस्तक में लोक प्रशासन के क्षितिज को विस्तृत किया है। विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का उनके पर्यावरण की स्थिति में अध्ययन करके इसने लोक प्रशासन के विषय-क्षेत्र को अधिक व्यवस्थित बनाया है और अपने सदस्यों में विकास प्रशासन की समस्या में रूचि को प्रोत्साहित किया है।''

टी0 एन0 चतुर्वेदी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न सार्वजनिक एवं प्रशासनिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

निमरोड राफाली के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन, तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन का अध्ययन है।''

तुलनात्मक प्रशासन समूह ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को पारिभाषित करते हुए कहा है कि ''विभिन्न संस्कृतियों तथा राष्ट्रीय विन्यासों में प्रयुक्त हुए लोक प्रशासन के सिद्धान्त और वह तथ्यात्मक सामग्री जिसके द्वारा इनका विस्तार और परीक्षण किया जा सकता है, तुलनात्मक लोक प्रशासन के अंग हैं।''

ए0 आर0 त्यागी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन एक ऐसा अनुशासन है, जो लोक प्रशासन के सम्पूर्ण सत्य को जानने के लिए समय, स्थान और संस्कृतिक विभिन्नता की परवाह किये बिना तुलनात्मक अध्ययन में व्यावहारिक यन्त्रों का प्रयोग करता है।''

रूमकी बासु के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा हमें विभिन्न देशों में अपनाये जाने वाले उन प्रशासनिक व्यवहारों की जानकारी मिलती है जिन्हें अपने राष्ट्र की प्रणाली में अपनाया जा सकता है।''

''वस्तुतः तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का एक ऐसा तुलनात्मक अध्ययन है, जिसके निष्कर्षों के आधार पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जाता है।''

तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रेरणा के कारकों की चर्चा करते हुए डॉ0 एम0 पी0 शर्मा एवं बी0 एल0 सडाना ने कहा है कि द्वितीय विश्व युद्ध के समय पश्चिमी और विशेषकर अमेरिकी विद्वानों का बहुत से विकासशील राष्ट्रों के लोक प्रशासन के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ, जिसमें उन्होंने कुछ नयी विशेषताएँ देखी और उनमें उनकी रूचि पैदा हुयी। दूसरी तरफ वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में होने वाली नयी घटनाओं का प्रशासनों के ढाँचे के स्वरूप पर प्रभाव पड़ा जिससे तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में रूचि को प्रोत्साहन मिला। एक अन्य कारण यह रहा है कि विश्व के रंगमंच पर भारी संख्या में नये देश उभर कर सामने आये तथा वे तीव्र आर्थिक विकास में लग गये। इन राष्ट्रों के विकास में लोक प्रशासन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अतः वैज्ञानिक जाँच के लिए तथा तुलना के लिए नये अवसर प्राप्त हुए। परम्परागत लोक प्रशासन की अवधारणाऐं पुरातन हो चुकी थीं। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन के रूप में लोक प्रशासन का नया आयाम विकसित हुआ।

8.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके बाद के काल को पुराने और नये लोक प्रशासन के मध्य एक विभाजक रेखा माना जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के विकासशील देशों को ज्यों-ज्यों नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, त्यों-त्यों लगभग इसी रफ्तार में लोक प्रशासन का साहित्य समृद्ध और सबल होने लगा। इस काल में उठने वाली समस्याओं के समाधान में लोक प्रशासन अत्यधिक संघर्षशील बन गया। तत्पश्चात उसके स्वरूप और प्रकृति में अनेक बदलाव आये। इस दौरान अमेरिकी विद्वानों ने अनेक तुलनात्मक अध्ययन किये तथा धीरे-धीरे उनकी तुलना का केन्द्र सिर्फ यूरोपीय देश ही न होकर विश्व की प्रशासकीय व्यवस्थाऐं बनने लगी। जिन प्रमुख कारणों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में अपना योगदान दिया, वे निम्नलिखित हैं-

1. द्वितीय विश्व युद्व के दौरान अमेरिका, ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य विकसित देशों के प्रशासकों और विद्वानों का विकासशील देशों सहित अन्य देशों के लोक प्रशासन के सिद्धान्त तथा व्यावहार से परिचय हुआ। उन्हें विदेशी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अनेक नवीनताऐं और विशेषताऐं नजर आयी। इन विशेषताओं और मौलिकताओं को भली प्रकार जानने के उद्देश्य से उनमें तुलनात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागृत होने लगी।
2. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान लोक प्रशासन तथा इसके अध्ययन को जिन नयी-नयी जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ा उसके लिए परम्परागत लोक प्रशासन का दृष्टिकोण अपर्याप्त और कमजोर लगने लगा ड्वाइट वाल्डो ने भी कहा है कि ''परम्परागत लोक प्रशासन का विद्यार्थी केवल एक देश के प्रशासन की जानकारी प्राप्त कर सकता था, किन्तु दूसरे देश से उसकी समानता या अन्तर देखने में असमर्थ थी।'' परम्परागत लोक प्रशासन की इन कमियों से लोक प्रशासन के आधुनिक विद्वान समझौता करने तैयार नहीं थे। फलतः तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन अस्तित्व में आया।
3. द्वितीय विश्व युद्ध की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इस दौरान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और समन्वय की भावना का प्रबल विकास हुआ। विभिन्न राष्ट्र अपने विकास के लिए दूसरे राष्ट्रों पर अपनी निर्भरता बढ़ाने लगे। यह निर्भरता सिर्फ आर्थिक, औद्योगिक और तकनीकी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि प्रशासकीय क्षेत्र में भी एक देश दूसरे देश के प्रशासकीय सिद्धान्तों और सफलताओं का प्रयोग अपने देश में करने को इच्छुक हो उठे। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और समन्वय के फलस्वरूप उत्पन्न हुई इस ''इच्छा'' ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को विकसित किया। टी0 एन0 चतुर्वेदी ने भी इस बात को

स्वीकार किया कि ''तुलनात्मक अध्ययन के विकास में विभिन्न राष्ट्रों एवं क्षेत्रों के बीच बढ़ रही पारस्परिक निर्भरता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।''

4. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विभिन्न सामाजिक शास्त्रों ने अपने विषय का अधिकाधिक वैज्ञानिक होने का दावा प्रस्तुत किया। लोक प्रशासन उन शास्त्रों से अधिक वैज्ञानिक होते हुए भी तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में वैज्ञानिक होने का खोखला दावा नहीं पेश कर सका। 1947 में रॉबर्ड ए0 डॉहल ने भी अपने एक निबन्ध में कहा है कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होगा तब तक वह विज्ञान नहीं माना जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन को वैज्ञानिकों की कसौटी पर खरा उतारने के लिए लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को प्रर्याप्त महत्व दिया जाने लगा।
5. प्रारम्भिक काल में लोक प्रशासन में विषय-वस्तु तथा व्यवस्थित स्पष्टीकरण का अभाव था। किसी भी विषय के लिए उसकी विषय-वस्तु का व्यवस्थित ढंग से स्पष्ट न होना हानिकारक माना जाता है। एडवर्ड शिल्स की यह मान्यता है कि ''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन की विषय-विषय वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु भी तुलनात्मक दृष्टिकोण का विकास उपयोगी था।
6. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि सम्पूर्ण विश्व लगभग दो गुटों में विभक्त हो गया। दोनों गुटों द्वारा नवोदित विकासशील देशों को अपने-अपने पक्ष में करने की होड़ लग गयी। इस हेतु अमेरिका, सोवियत संघ तथा अन्य राष्ट्रों ने सहायता का सहारा लिया। नवोदित राष्ट्रों के ये देश आर्थिक, औद्योगिक, तकनीकी तथा संचार के क्षेत्रों में सहायता देने लगे। इस सहायता को तभी सार्थक बनाया जा सकता था, जब इन सहायताओं के कार्यान्वयन की विधि सहायता प्राप्त करने वाले देशों को ज्ञात हो। अतः वहाँ के प्रशासन के कार्मिकों को विकसित देशों में प्रशिक्षण दिया जाने लगा तथा विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को उन देशों में लागू किया जाने लगा जहाँ पहले इसकी तकनीकी सहायता को लागू करने के लिए उपयुक्त वातारण नहीं था। अतः दो गुटों के शीतयुद्ध में जिस सहायता के राजनीति ने जन्म लिया था, उसे प्रभावशाली और सार्थक बनाने के लिए लोक प्रशासन के दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस की गयी।
7. प्रारम्भिक काल में ही लोक प्रशासन का तुलनात्मक दृष्टिकोण विद्वानों को इतना अधिक महत्वपूर्ण लगने लगा कि इसके भविष्य से वे काफी आशान्वित होने लगे। अतः उनकी यह आकांक्षा प्रबल होनी लगी कि तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में विकसित किया जाय।
8. प्रशासन और समाज के घनिष्ठ सम्बन्ध ने भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में अहम भूमिका निभायी, क्योंकि प्रत्येक देश की सामाजिक संरचना वहाँ के प्रशासनिक ढाँचे को प्रभावित करती है। इस सामाजिक संरचना और प्रशासकीय संरचना के सम्बन्धों को पहचानना लोक प्रशासन के विद्वानों के लिए आवश्यक बन गया। यदि किसी एक देश की प्रशासकीय संरचना और प्रक्रिया को दूसरे देश में लागू करना है तो दूसरे देश में उसे अपनाने से पूर्व वहाँ की सामाजिक और राजनीतिक संरचना को जानना आवश्यक हो जाता है। अतः इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन का दृष्टिकोण अनिवार्य बन गया।

8.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य

तुलनात्मक लोक प्रशासन आनुभविक एवं वैज्ञानिक स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करके हमारे आनुभविक व सैद्धान्तिक ज्ञान को एकत्रित, व्यवस्थित व विस्तृत करता है। अतः यह जानना आवश्यक है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के कौन-कौन से प्रमुख उद्देश्य हो सकते हैं। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. विशिष्ट प्रशासनिक समस्याओं, प्रणालियों आदि का अध्ययन करके सामान्य नियमों और सिद्धान्तों की स्थापना करना।
2. विभिन्न संस्कृतियों, राष्ट्रों एवं व्यवस्थाओं का पारगामी विश्लेषण और व्याख्या करना और इस तरह आधुनिक लोक प्रशासन के क्षेत्र में विस्तार करना।
3. विभिन्न प्रशानिक रूपों और प्रणालियों की तुलनात्मक परिस्थिति को पहचान कर उनकी सफलताओं एवं असफलताओं के कारणों का पता लगाना।
4. तुलनात्मक अध्ययनों के सन्दर्भ में त्रुटियों को प्रकाश में लाकर प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता और अनिवार्यता बतलाना।
5. विकास और प्रशासन को अपने अनुभवों का लाभ देकर उनको गति प्रदान करना।

उपर्युक्त उद्देश्य के अतिरिक्त-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का उद्देश्य सरकारों को नीति-निर्धारण में योगदान देना भी है।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य विश्व की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में ज्ञानवर्द्धन करना भी रहा है।
- लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षितिज को व्यापक, व्यावहारिक और वैज्ञानिक बनाना तुलनात्मक लोक प्रशासन का प्रथम उद्देश्य रहा है।
- विकासशील देशों में प्रबन्धकीय विज्ञान तथा प्रशासकीय विज्ञान के क्षेत्र में नयी-नयी प्रविधियों के प्रयोग को बढ़ावा देना भी तुलनात्मक लोक प्रशासन का एक लक्ष्य रहा है।

अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को समृद्ध, व्यापक तथा वैज्ञानिक बनाने के उद्देश्य को तुलनात्मक लोक प्रशासन अपना कर्तव्य मानता है।

8.2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के महत्व को आज विश्व के प्रायः सभी देशों में स्वीकार कर लिया गया है। लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन प्रभावशाली रूप से प्रयत्नशील रहा है। सयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा जापान के विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया है। सर्वप्रथम 1948 में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को स्वतन्त्र रूप से कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया गया था। इसका श्रेय वहाँ के प्राध्यापक प्रो0 ड्वाइट वाल्कओ को था। विश्व के अन्य विकासशील देशों में भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रशासन के महत्व को ध्यान में रखते हुए इसे पाठ्यक्रम में शामिल किया जा रहा है। भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर पर लोक प्रशासन विषय के एक अनिवार्य प्रश्न-पत्र के रूप में तुलनात्मक लोक प्रशासन की पढ़ाई की जाती है।

आज का आधुनिक राज्य प्रशासकीय राज्य बन गया है, जहाँ मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासन का प्रवेश इस हद तक बढ़ चुका है कि प्रशासन के असफल होते ही हमारी सभ्यता असफल हो जायेगी। विश्व के अधिकांश राष्ट्र अपने को अधिकाधिक प्रजातांन्त्रिक होने का दावा प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् राष्ट्रों में इस बात की होड़ लग गयी है कि कौन राष्ट्र किससे अधिक जन-इच्छाओं का ख्याल रखता है? ऐसी स्थिति में जनकल्याणकारी योजनाऐं तथा विकास की योजनाऐं प्रचुर मात्रा में लागू की जाती हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं तथा उपलब्धियों की तुलना की जाती हैं, विश्लेषण किया जाता है तथा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किसी खास देश में किसी खास प्रकार की विकास योजना किस ढंग से लागू की गयी तथा लोग उससे कितना लाभान्वित हुए। तुलनात्मक लोक प्रशासन के तहत अब यह बात ज्यादा आसान हो गयी है कि किसी विकासशील अथवा विकसित देश की प्रशासनिक प्रणाली का अध्ययन करके उसकी विशेषताओं को जाना जाऐ। अगर वे प्रशासनिक विशेषताऐं अपने देश के विकास के लिए उपयोगी हैं तो उन्हें देश को शासन-प्रणाली में लागू किया जा सकता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की आवश्यकता कई कारणों से महसूस की गयी जैसे- प्रशासनिक चिंतकों की विविध विचारधारा थी तो उसी प्रकार विधिक, वैज्ञानिक, यांत्रिक प्रशासनिक, मानवीय सामाजिक एवं मानोवैज्ञानिक विचारधाराओं की शुरूआत हुई। अतः प्रशासनिक सिद्धान्तों को सम्पूर्ण में समझने के लिए इन विचारों एवं विचारधाराओं की तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता हुई।

ज्यादातर प्रशासनिक चिंतकों की पृष्ठभूमि पश्चात्य देशों की हैं तथा उनकी विचारधारा पूर्वी देशों में समान रूप से लागू नहीं होती है। इसलिए तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता हुई, ताकि पूर्वी देशों का तुलनात्मक सिद्धान्त तैयार किया जा सके।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात विशेष रूप से परमाणु बम की विभीषका के कारण मानवीय दृष्टिकोण प्रबल हुआ, तदनुसार बहुत सारे देशों को औपनिवेशिक शासन से आजादी मिली और इन देशों में नवीन प्रशासन की आवश्यकता थी, जिसने तुलनात्मक अध्ययन को प्रेरित किया है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन एक नये युग का सूत्रपात है। विलियम जे0 सिफिन ने अपनी पुस्तक में कहा है कि ‘‘यदि विज्ञान मूलतः प्रविधि की बात है तो तुलनात्मक लोक प्रशासन का प्रमुख मूल्य यह है कि इसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है।’’ वस्तुतः तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व इस बात से ज्यादा बढ़ गया है कि तुलना के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों ने इसे अन्य सामाजशास्त्रों की अपेक्षा कहीं ज्यादा वैज्ञानिक बना दिया है। विज्ञान की भाँति अब इसके सिद्धान्त विकसित हो गये हैं। इसमें तुलना की जाती है, विश्लेषण किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध की अवधारणा ने इसे और अधिक मजबूत बनाया है।

विभिन्न देशों की सामाजिक भौगोलिक और आर्थिक स्थितियों में अन्तर होने से उनकी प्रशासकीय व्यवस्था अथवा पद्धति में भी अन्तर होता है। प्रशासकीय सच्चाई का पता लगाने के लिए किसी देश के अन्दरूनी कारकों का पता लगाना तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन समझना आवश्यक होता है। इन तुलनाओं के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों एवं भिन्न-भिन्न पर्यावरणों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है तथा यह जानने का भी प्रयास किया जाता है कि किसी खास प्रकार के कारकों का किसी प्रशासनिक व्यवस्था के किस अंग पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन विकासात्मक प्रशासन के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही लगभग दोनों का उदय हुआ है। विकासात्मक प्रशासन को अनेक नयी-नयी विकास योजनाओं के सन्दर्भ में नयी-नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके लिए प्रशासनिक विकास और सुधार आवश्यक हो जाते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वान विभिन्न राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का सैद्धान्तिक व व्यावहारिक

विवेचन करके यह बताने का प्रयास करते हैं कि विकासात्मक प्रशासन के लिए किस प्रशासकीय तकनीक को लागू किया जाय तथा कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए प्रशासकीय संरचना में कौन सा परिवर्तन किया जाय? तुलना के द्वारा प्राप्त इन निष्कर्षों द्वारा विकास प्रशासन का मार्ग-दर्शन होता है।

लोक प्रशासन के विद्वानों का विशेष उत्तर दायित्व उनको आवश्यक बना देता है कि वे प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करें, परन्तु ये विद्वान यह उत्तर दायित्व तभी निभा सकते हैं, जबकि वे प्रशासनिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं व प्रक्रियाओं में जो विविधता व विभिन्नता है। इसका तुलनात्मक विश्लेषण करके न केवल स्वयं समझने का प्रयत्न करें वरन् सम्बन्धित देश के प्रशासकों के समझने योग्य सुझावों को प्रस्तुत करें। इसलिए प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में अब तुलना मुख्य बिन्दु बन गया है। लोक प्रशासन की बढ़ती हुई तुलनात्मक प्रवृत्ति ने इस विषय को अत्यधिक व्यापक और उपयोगी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

टी0 एन0 चतुर्वेदी के तुलनातमक लोक प्रशासन की अध्ययन-प्रणाली की अग्रलिखित लाभ बताये हैं-

1. तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली के कारण सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र व्यापक हुआ है। पहले यह संकीर्ण सांस्कृतिक बन्धनों से मर्यादित था।
2. तुलनात्मक अध्ययन की क्रान्ति ने 'सिद्धान्त रचना' में अधिक वैज्ञानिकता ला दी है।
3. तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली, दृष्टि को व्यापक बना देती है जिसके कारण दुनिया को आत्म-केन्द्रित या आत्म-संस्कृति को केन्द्रित देखने की संकीर्णता नहीं रह पाती।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन से सामाजिक विश्लेषण का क्षेत्र बढ़ाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलता है।

लोक प्रशासन और प्रशाकीय व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए इसमें तुलनात्मक दृष्टिकोण का सहारा लिया जाता है। लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन कैसे और किन-किन क्षेत्रों में किया जा सकता है? जब तक किसी भी अनुशासन का अध्ययन-क्षेत्र और विषय-वस्तु स्पष्ट न हो तो वह स्वतन्त्र अनुशासन का रूप नहीं ले पाता है। वैसे मोटे तौर पर तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का क्षेत्र विश्व के समस्त देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाऐं मानी गयी हैं। प्रशासन का यह दृष्टिकोण इस बात की ओर इंगित करता है कि किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन एवं तुलना किसी भी दूसरे देश की प्रशासकीय व्यवस्था के साथ की जा सकती है। लेकिन वस्तुतः इसे तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का वैज्ञानिक क्षेत्र नहीं माना जा सकता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-क्षेत्र के सूक्ष्म दृष्टिकोण के अनुसार इसका अध्ययन तीन स्तरों पर किया जा सकता है-

1. **वृहतस्तरीय अध्ययन-** वृहतस्तरीय अध्ययन का मुख्य जोर इस बात पर रहता है कि किसी देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन दूसरे देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था के साथ किया जाय। यह अध्ययन दोनों देशों के पर्यावरण के उचित सन्दर्भ में किया जाता है। जैसे- भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का फ्रान्स अथवा जापान की प्रशासनिक व्यवस्था के साथ तुलनात्मक अध्ययन। वृहतस्तरीय अध्ययन में सम्बन्धित देश की प्रशासनिक व्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है। इस अध्ययन में दोनों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण को भी शामिल किया जाता है। सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था की तुलना और विश्लेषण के पश्चात ही तुलनात्मक

लोक प्रशासन के वृहतस्तरीय अध्ययन में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अतः लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन का यह विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र है।

2. **मध्यवर्ती अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के मध्यवर्ती अध्ययन क्षेत्र के तहत प्रशासनिक व्यवस्था के इस महत्वपूर्ण भाग या अंग की तुलना की जाती है जो आकार और क्षेत्र में अपेक्षाकृत बड़ा हो अर्थात् इसके अन्तर्गत दो देशों के प्रशासन के महत्वपूर्ण एवं बड़े अंगों की तुलना की जाती है। जैसे-भारत और सोवियत संघ को स्थानीय सरकारों की तुलना अथवा भारत एवं ब्रिटेन के कार्मिक प्रशासन की तुलना तथा फ्रान्स और जर्मनी में नौकरशाही की तुलना इत्यादि मध्यवर्ती अध्ययन के उदाहरण हैं। यह अध्ययन न तो सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन होता है न ही किसी सूक्ष्म अथवा छोटे अंग की तुलना, बल्कि प्रशासन के एक बहुत बड़े भाग की तुलना दूसरे देश की उसी स्तर की प्रशासनिक व्यवस्था के साथ ही की जाती है।
3. **लघुस्तरीय अध्ययन-** लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में आजकल लघुस्तरीय अध्ययन अधिक प्रचलित है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन में किसी खास विभाग अथवा विभाग की किसी खास प्रक्रिया का अध्ययन किसी दूसरी प्रशासनिक व्यवस्था के तहत सम्बन्धित विभाग की इस प्रक्रिया के साथ की जाती है। यह अध्ययन का सूक्ष्म एवं छोटा स्तर है। प्रशासनिक अनुसंधान के लिए तुलनातमक लोक प्रशासन के क्षेत्र में इसका प्रयोग किया जा रहा है, जैसे- भारत के असैनिक अभियान की प्रशिक्षण व्यवस्था की ब्रिटेन के असैनिक अभियान की प्रशिक्षण व्यवस्था के साथ तुलना। भारत और फ्रान्स की उच्च सेवाओं में भर्ती प्रक्रिया के लिए योग्यता परीक्षण का तुलनात्मक अध्ययन। भारत, अमेरिका और फ्रान्स में भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए किये गये प्रशासनिक सुधारों का तुलनात्मक अध्ययन इत्यादि लघुस्तरीय अध्ययन के उदाहरण हो सकते हैं। इस प्रकार के अध्ययन ज्यादा उपयुक्त और सार्थक साबित होते हैं।

8.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोण या उपागम

जब भी एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में विषय का उदय होता है तो उसके समक्ष एक महत्वपूर्ण समस्या अध्ययन के उन दृष्टिकोणों, उपागमों और विधियों की हो जाती है जिनका सहारा लेकर विषय की गहराई तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के समक्ष भी इस प्रश्न का उठना कोई आश्चर्य की बात नहीं, बल्कि स्वाभाविक ही था। तुलनात्मक लोक प्रशासन के उदय के साथ ही इस बात की खोज की जाने लगी कि इसके अध्ययन के लिए कौन-कौन से उपागम ज्यादा उपयुक्त होंगे। प्रारम्भ में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए उन परम्परागत विधियों और उपागमों को अपनाने का प्रयास किया गया जो अब तक लोक प्रशासन के अध्ययन में प्रयोग में लायी जाती थीं, किन्तु बहुत जल्द ही इन उपागमों की अपर्याप्तता स्पष्ट हो गयी। अतः अधिक अनुभवपरक और अधिक व्यावहारिक उपागम की तलाश की जाने लगी। हरबर्ट साइमन, एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स, ला0 पालोम्बरा, रॉबर्ट ए0 डॉहल, डेविड ईस्टन, जॉन मॉन्टगुमरी, फ्रेंक शेरवुड तथा ड्वाइट वाल्डो जैसे विद्वानों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के उपागमों की तलाश को समृद्ध बनाया तथा इससे सम्बन्धित अनेक रचनाऐं, निबन्ध तथा पुस्तकें प्रसारित की। मुख्य रूप से तुलनात्मक लोक प्रशासन के अर्वाचीन दृष्टिकोणों में निम्नलिखित तीन उपागम ज्यादा उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं-

8.3.1 संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण

सर्वप्रथम 1955 में संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण का उल्लेख लोक प्रशासन के क्षेत्र में ड्वाइड वाल्डो ने किया था तथा इसकी उपयोगिता पर वृहत रूप से प्रकाश डाला था। प्रो0 रिग्स को ड्वाइट वाल्डो का यह विचार ज्यादा अच्छा लगा था। अतः उन्होंने 1957 में इसी दृष्टिकोण के आधार पर अपना क्षेत्रिक औद्योगिकी मॉडल प्रस्तुत किया। तत्पश्चात प्रो0 रिग्स तुलनातमक लोक प्रशासन के क्षेत्र में संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण के वास्तविक प्रयोगकर्त्ता माने जाने लगे। हालाँकि सामाजिक विश्लेषण के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण का प्रयोग काफी पहले से हो रहा था। इस दृष्टिकोण के समर्थकों में पूर्व से ही टैलकॉट पार्सन्स, रॉबर्ट मर्टन, गेब्रियल आमण्ड तथा डेविड एप्टर इत्यादि विद्वान थे। लेकिन इनका दृष्टिकोण तुलनात्मक लोक प्रशासन में इसके प्रयोग की तरफ नहीं था। तुलनात्मक लोक प्रशासन में संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना होती है। इस संरचना के द्वारा तथा संरचना के विभिन्न अंगों के द्वारा अपनी क्षमतानुसार कार्य सम्पदित किये जाते हैं। निर्धारित कार्य को सम्पादित करने वाली विभिन्न संरचनाओं का तुलनात्मक विवेचन और विश्लेषण ही इस दृष्टिकोण का केन्द्र-बिन्दु है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों की यह मान्यता है कि लोक प्रशासन एक सुनियोजित एवं गतिशील मशीन है। इसका अध्ययन उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार स्कूटर, मोटरकार या साइकिल के विभिन्न अंगों और उसके कार्यों का अध्ययन किया जाता है। ये सभी अंग आपसी समन्वय और अन्तनिर्भरता के साथ अपने कार्यों का सम्पन्न करते हैं, तो इन्हें संगठनात्मक-संरचनात्मक कार्य कहा जाता है। इनकी संरचना और कार्यों का तुलनात्मक विवेचन करना ही संरचनात्मक-कार्ययात्मक दृष्टिकोण हुआ। लोक प्रशासन के विभिन्न अनुसंन्धानकर्त्ता इस पर शोध करते हैं कि दो विभिन्न संरचनाओं में कौन-कौन सी समानता अथवा असमानता है, जबकि उन्हें एक ही प्रकृति के कार्य सम्पादित करने होते हैं।

8.3.2 पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण को एक महत्वपूर्ण उपागम माना जाता है। इस दृष्टिकोण को समृद्ध बनाने का श्रेय एफ0डब्ल्यू0 रिग्स, रॉबर्ट ए0 डॉहल जे0 एम0 गॉस और मार्टिन इत्यादि विद्वानों को प्रमुख रूप से जाता है। तुलनातमक लोक प्रशासन के पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि जिस तरह प्रत्येक प्रकार के पौधे सभी प्रकार के वातावरण में नहीं फल-फूल सकते अथवा नहीं विकसित हो सकते हैं उसी प्रकार प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था सभी देशों की परिस्थितियों और वातावरणों में उपयोगी और सफल नहीं हो सकती। लोक प्रशासन भी अपने देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों एवं पर्यावरण से प्रभावित होता है। अतः पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की मान्यता है कि लोक प्रशासन का अध्ययन इन परिस्थितियों और पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के समर्थकों की यह मान्यता है कि किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण एवं अध्ययन करने से पूर्व उस सामाजिक और राजनीतिक संरचना को भी समझा जाना चाहिए जिसमें वह कार्य कर रहा है। प्रो0 एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स का 'प्रिज्मेटिक साला मॉडल' पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण के अध्ययन पर ही आधारित है।

अपने शोध कार्य में उनको यह महसूस हुआ कि प्रशासन को सम्पूर्णता से समझने के लिए पहले समाज को समझना अनिवार्य होगा, क्योंकि समाज अत्यन्त व्यापक विषय है, जिसकी एक फसल के रूप में प्रशासन है।

अतः उनका शोध सामाजिक अधिक हैं, प्रशासनिक कम। संरचनात्मक और प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण के द्वारा पहले उन्होंने समाज को समझने की कोशिश की। उनके अनुसार, किसी भी समाज के पाँच महत्वपूर्ण कार्य होते हैं- 1. सामाजिक 2. आर्थिक, 3. राजनीतिक, 4. संचार, 5. सांकेतिक (आस्था एवं विकास)

किसी भी समाज में ये पाँचों कार्य किसी एक संस्था द्वारा संचालित हो सकते हैं और यही कार्य पूरे समाज के द्वारा ही संचालित होते हैं, जैसे- शरीर की एक कोशिका जीवन की सभी क्रियाओं को करने में समर्थ होते है, जैसे- श्वसन, पाचन इत्यादि। लेकिन कोशिकाओं से बना हुआ शरीर भी इन कार्यों को करने में समर्थ है।

रिग्स कहते हैं, प्राथमिक समाज में परिवार एक प्राथमिक संस्था है और यही सम्पूर्ण संस्था होती है, क्योंकि समाज के सभी कार्य इस संस्था द्वारा संचालित होते हैं। लेकिन आधुनिक समाज में यह कार्य परिवार संस्था से बाहर निकलते जाते हैं। इस प्रकार परिवार संस्था का आकार छोटा होता जाता है और राजनैतिक और आर्थिक कार्य इत्यादि पृथक संस्था का रूप लेने लगते हैं। जैसे परिवार का मुखिया जो परिवार में राजनीतिक प्राधिकार होता था, वह आधुनिक समाज में राज्य और सरकार का रूप ले लेता है। इसी प्रकार परिवार का आर्थिक कार्य, बैंक और बीमा संस्थाओं का रूप ले लेता है।

रिग्स ने इस प्रकार समाज के आधारभूत चरित्रों को विश्लेषित करके, 1956 में 'कृषिका औद्योगिका मॉडल' प्रस्तुत किया। उन्होंने कृषि और औद्योगिक समाज के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार-

1. कृषि समाज में व्यक्ति की सामाजिक मान्यता उसके जन्म से जुड़ी होती है, जबकि औद्योगिक समाज में यह मान्यता उसके कर्म और उपलब्धियों से जुड़ी होती है।
2. पहले में समाज स्थिर होता है, जबकि दूसरे में समाज गतिशील होता है। अतः पहले में सामाजिक स्तरीकरण स्पष्ट होता है, जबकि दूसरे में यह स्पष्ट नहीं होता है।
3. पहले में ये मत स्पष्ट नहीं होता है, क्योंकि एक ही व्यक्ति कई व्यवसाय से जुड़ा होता है, जबकि दूसरे में पेशेगत स्तर बिल्कुल स्पष्ट होता है। अर्थात व्यवसाय स्पष्ट होता है और उससे अलग-अलग लोग जुड़ जाते हैं।
4. पहले में सामाजिक मूल्य परम्पराओं पर टिके होते हैं, जबकि दूसरे में सामाजिक मूल्य तर्कों पर आधारित होते हैं।

कृषक और औद्योगिक आदर्श समाज के चरित्र हैं, अर्थात यह वास्तव में नहीं होते हैं। व्यवहार में अर्थात वास्तविकता में ट्रांजिशिया होता है, जिसमें कृषिक और औद्योगिका के चरित्रों का सहअस्तित्व होता है और किसी समाज को कृषि समाज तब कहा जाता है, जब उसमें कृषि के चरित्र प्रभावी होते हैं। ऐसा ही औद्योगिक समाज में भी होता है।

रिग्स अपने सामाजिक शोध को आगे बढ़ाते हुए 1957 में समाज का 'प्रिज्मेटिक मॉडल' प्रतिपादित करता है, जिसमें उन्होंने प्रकाश के वर्ण-विक्षेपण के सिद्धान्त की सहायता ली। इस मॉडल में रिग्स कहते हैं, जब प्रिज्य के एक सिरे पर सूर्य के प्रकाश की सफेद पुन्ज पड़ती है तो उसमें सारे रंगों का विलय होता है और इसकी तुलना उन्होंने विसात समाज(Chessboard society) से ही की है, जो प्राथमिक समाज है, जिसमें परिवार संस्था में समाज के सभी संस्थाओं का विलय रहता है, जिसके कारण परिवार को प्राथमिक संस्था भी कहा जाता है।

प्रिज्म के दूसरे सिरे से सात रंगों का वर्णविक्षेपण होता है और यह महत्तम विक्षेपण है, क्योंकि विक्षेपण से और रंग नहीं निकलते हैं।

रिग्स ने इसे सर्वाधिक विकसित समाज से जोड़ा है, जिससे उन्होंने विवर्तित समाज कहा है, जिसमें समाज की सभी संस्थाएँ विशिष्ट और स्पष्ट होती है।

8.3.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण

व्यवहारवादी दृष्टिकोण को तुलनातमक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए नवीनतम दृष्टिकोण माना जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत व्यवहारवादी दृष्टिकोण को समृद्ध बनाने में हरबर्ट साइमन तथा कैटलिन इत्यादि विद्वान उल्लेखनीय है। हालाँकि सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की शुरूआत काफी पहले ही हो चुकी थी और सामाजिक विज्ञान के प्रत्येक विषय में इसके उदय का कारण परम्परावादी दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता के फलस्वरूप हुई प्रतिक्रिया मानी जाती है। लोक प्रशासन में भी अध्ययन के परम्परावादी दृष्टिकोण अपूर्ण तथा अपर्याप्त साबित हुए। अतः उसे अधिक व्यावहारिक और उपयोगी बनाने के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया।

हरबर्ट साइमन ने अपने एक निबन्ध 'प्रशासनिक व्यवहार' में लोक प्रशासन के अध्ययन की परम्परागत रीति का खण्डन किया और कहा कि यदि हम संगठन का सही और वैज्ञानिक विवेचन करना चाहते हैं तो वह अध्ययन व्यवहार पर आधारित होना चाहिए। साइमन ने प्रशासन के व्यवहारिक पहलू को महत्व देते हुए कहा कि प्रत्येक संगठन में कार्य करने वाले हर व्यक्ति की अपनी इच्छाऐं और आकांक्षाऐं होती हैं तथा उसका व्यवहार मनोवैज्ञानिक स्थिति और प्रेरणाओं से प्रभावित होता है। व्यक्ति की व्यक्तिगत और सामाजिक स्थितियाँ अनेक प्रकार से उसके आचरण को प्रभावित करती हैं। अतः लोक प्रशासन का अध्ययन तभी व्यवस्थित और वैज्ञानिक हो सकेगा जब मानवीय व्यवहार के इन प्रभावशील तत्वों का सही विवेचन किया जाय। व्यावहारिक दृष्टिकोण ही अध्ययनकर्त्ता को संगठन में काम कर रहे व्यक्तियों के व्यवहारों और आचरण को सही ढंग से अभिव्यक्त कर सकेगा। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी दृष्टिकोण वर्ष 1960 के आसपास अपने चरमोत्कर्ष पर था, उसके बाद के विकास को उत्तर व्यवहारवादी क्रान्ति नाम से जाना जाने लगा।

उत्तर -व्यवहारवाद की यह मान्यता थी कि यद्यपि व्यवहारवाद ने प्रशासनिक जगत को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है, परन्तु पूर्ण बोध के लिए वह पर्याप्त नहीं है। व्यवहारवादी रूढिवादिता को चुनौती दी जाने लगी थी। डेविड ईस्टन ने इस स्थिति को उत्तर -व्यवहारवादी क्रान्ति की संज्ञा दी। डेविड ईस्टन के अनुसार उत्तर - व्यवहारवाद यह मानता है कि प्रविधि की अपेक्षा उन वास्तविकताओं को महत्व दिया जाना चाहिए जो वर्तमान में गम्भीर सामाजिक और प्रशासनिक समस्याओं की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. हरबर्ट साइमन की किताब का नाम क्या है?
2. व्यवहारवाद का उदय अमेरिका में हुआ। सत्य/असत्य
3. प्रिज्मेटिक मॉडल रिग्स से सम्बन्धित है। सत्य/असत्य
4. प्रिज्मेटिक मॉडल विकासशील देशों के सम्बन्ध में है। सत्य/असत्य
5. तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी दृष्टिकोण 1969 के आस-पास अपने चरमोत्कर्ष पर था। सत्य/असत्य

8.4 सारांश

तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात एशिया एवं अफ्रीका में नवोदित राष्ट्रों के उदय के साथ ही लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में रूचि उत्पन्न हुई। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वानों एवं समर्थकों का मूल उद्देश्य लोक प्रशासन को परम्परागत अध्ययन क्षेत्र एवं पुरातन अध्ययन प्रणालियों की सीमा से बाहर लाकर उसके क्षेत्र को विस्तृत करना तथा नयी समस्याओं के समाधान के अनुरूप नयी मान्यताओं को स्थापित करना था। तुलनात्मक लोक प्रशासन आधुनिक एवं वैज्ञानिक स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करके हमारे अनुभविक व सैद्धान्तिक ज्ञान को एकत्रित, व्यवस्थित व विस्तृत करता है। यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को समृद्ध, व्यापक तथा वैज्ञानिक बनाने के उद्देश्य को तुलनात्मक लोक प्रशासन अपना कर्त्तव्य मानता है। ऐसी आशा की जाती है कि इस प्रकार का तुलनात्मक विश्लेषण प्रायोगिकता और सार्वभौमिकता को भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए सामान्यीकरण के विभिन्न स्तरों पर प्रशासनिक प्रतिरूपों से सम्बन्धित परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। प्रशासन की उपज के साथ ही इस बात की खोज की जाने लगी कि इसके अध्ययन के लिए कौन-कौन से उपागम अधिक उपयुक्त होंगे, जो उपागम विकसित किये गये उनमें संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण, पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण एवं व्यवहारवादी दृष्टिकोण मुख्य हैं।

8.5 शब्दावली

विश्लेषण - किसी विषय के सभी अंगों की छानबीन करना जिससे उसका वास्तविक रूप सामने आये।
वृहद- विस्तार से, बहुत बड़ा।
दृष्टिकोण- किसी बात या विषय को किसी विशिष्ट दिशा या पहलू से देखने या सोचने-समझने का ढंग।
प्राधिकार- वह विशिष्ट अधिकार या शक्ति जिसके अनुसार औरों को कुछ करने की आज्ञा या आदेश दिया जा सकता हो।

8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरोरा, आर0 के0 (1979): "कम्परेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस।
2. चतुर्वेदी, टी0 एन0 (1992): तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर।
3. चटर्जी (1990): डेवलेपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, सुरजीत पब्लिकेशन, दिल्ली।

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हेडी, फेरल (1984): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: ए कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव, प्रिंटिस हाल, न्यू जर्सी।
2. त्यागी, ए0 आर0 (1990): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
3. अवस्थी, ए0 एवं माहेश्वरी एस0 (1990): लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन की परिभाषा और इसके अध्ययन के विभिन्न उपागमों की व्याख्या कीजिए।
3. तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन पर विभिन्न विद्वानों के विचारों पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 9 प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन
9.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश
9.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश
9.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश
9.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन में पर्यावरण, परिवेश अथवा परिस्थितिकी के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। ऐसा माना गया है कि जिस प्रकार से एक पौधे के लिये उपयुक्त जलवायु, प्रकाश और बाहरी वातावरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार से एक सामाजिक संस्था के विकास और प्रशासन के लिये भी एक विशेष वातावरण आवश्यक है। मार्क्स के समय से ही यह माना जाता है कि व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का स्वरूप उसकी बाहरी परिस्थितियों के द्वारा निर्धारित होता है। आज जब सम्पूर्ण राज्य का स्वरूप ही प्रशासनिक हो गया है तो किसी भी संस्था या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे. पर्यावरण, संस्कृति, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक. परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान का एक विषय है। इसे समझने के लिये देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पर्यावरण और लोक प्रशासन की अन्तर्सम्बद्धता को समझ पायेंगे।
- भली-भाँति समझ पायेंगे कि विभिन्न प्रकार का पर्यावरण लोक प्रशासन को किस प्रकार प्रभावित करता है?

9.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन

मनुष्य तथा उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य संस्थान पर्यावरण की देन है। पर्यावरण (Ecology) का शब्द जीवशास्त्र से लिया गया है। जहाँ इसका अभिप्राय होता है, पशु जाति तथा इसके प्राकृतिक वातावरण में परस्पर निर्भरता। किसी सामाजिक व्यवस्था में, वातावरण या पर्यावरण का अर्थ है- संस्थान, इतिहास, विधि, आचारशास्त्र, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल प्रतीक, पौराणिक गाथाऐं आदि, जिनको भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति का नाम दिया जाता है। लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। एक ही प्रकार की संस्थाऐं अलग-अलग वातावरणों में विभिन्न प्रकार से कार्य करती है। अतः यदि हम किसी संस्था के संगठन और उसके कार्यों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो तत्सम्बन्धी वातावरण का विवेचन करना आवश्यक होगा। चूंकि लोक प्रशासन एक उप-व्यवस्था है, इसकी सामाजिक व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया होती है, सामाजिक व्यवस्था इसके आकार को ढालती है और यह सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में ये बात पूर्ण रूप से सत्य है, क्योंकि जो प्रशासनिक संस्थाऐं एक देश में सफलतापूर्वक कार्य करती है, उनको दूसरे देश भी अपनाने का प्रयास करते हैं। इनकी सफलता के लिये आवश्यक होता है कि उसके लिये उपर्युक्त पर्यावरण की व्यवस्था की जाये। अतः उस देश विशेष की समस्या परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थाओं के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक व्यवस्था और सरकार के रूप में भी अध्ययन किया जाये। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व है। प्रशासन के कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है, ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरूआत करते समय उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था की जा सके। अर्थात् लोक प्रशासन तथा पर्यावरण का सम्बन्ध द्विपक्षीय है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में वी0पी0 सिंह कहते हैं ''किसी भी समय प्रशासन पर सांस्कृतिक वातावरण का अचूक प्रभाव होता है।'' 1947 में जॉन एम0 गॉस ने, लोक नौकरशाही और इसके पर्यावरण की अनिवार्य परस्पर निर्भरता का अध्ययन करने के लिये पर्यावरण की धारणा को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया। उसी वर्ष राबर्ट डहल ने अंतः सांस्कृतिक अध्ययनों की बात कही और प्रशासनिक ढाँचों और व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभाव पर बल दिया। उन्होंने कहा कि लोक प्रशासन, 'राष्ट्रीय. मनोविज्ञान' तथा राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के प्रभाव से बच नहीं सकता। 1950 के उपरान्त ही पर्यावरण की लोक प्रशासन के साथ संगति (Relevance) के अध्ययन में वास्तविक और विस्तृत रूचि देखी गयी। लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक अध्ययन के अर्थ और महत्व को रमेश के0 अरोड़ा तथा अगस्टो फेरेरोस ने बताया कि लोक नौकरशाही को समाज के कई बुनियादी संस्थानों में से एक समझा जाना चाहिये। अतः इसके ढाँचे और कार्य को समझने के लिये इसका अध्ययन दूसरे संस्थानों के साथ पारस्परिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिये। अतः उस देश विशेष की समस्या. परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थानों के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक. व्यवस्था और सरकार के रूप के सन्दर्भ में भी अध्ययन किया जाये।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व होता है। प्रशासन की कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है? ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरुआत करते समय उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था की जा सके। डॉ0 आर0 के0 दुबे ने पर्यावरण या परिवेश के अध्ययन की इसी महत्ता को बताते हुए कहा कि ''लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की ये मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक समस्या की जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य. परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।''

सन् 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक, "The Ecology of Public Administration" प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया गया था। रिग्स का कहना है कि ''किसी भी प्रशासनिक संरचना का महत्व उसकी परिस्थितिकी के अन्तर्गत ही समझा जा सकता है।'' रिग्स के अतिरिक्त जॉन एम0 गौस, रॉबर्ट डल, रास्को मार्टिन आदि विद्वानों ने भी लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्यन को व्यापक, विस्तृत एवं समृद्ध बनाया है। लोक प्रशासन की परिस्थितिकी का अध्ययन करने एवं तद्अनुसार प्रशासनिक कार्यकलापों का विश्लेषण करने से प्रशासनिक सुधारों को एक सार्थक दिशा मिल सकती है एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासनिक प्रक्रियाऐं तथा व्यवहार परिवर्धित किया जा सकता है।

अतः यह स्वीकार कर लिया गया है कि विभिन्न स्थितियों में लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक आयामों का ज्ञान लोक प्रशासन के अध्ययन के वैज्ञानिक विकास में सहायता दे सकता है। इसका व्यवहारिक महत्व इस बात में है कि, यह तकनीकी सहायता तथा प्रशासनिक विकास के क्षेत्रों में नीति-निर्माण प्रक्रिया का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करता है।

9.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश

जैसा कि आपने अभी जाना कि लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः सभ्यता तथा संस्कृति में वही अन्तर माना जाता है जो शरीर तथा आत्मा में होता है। सभ्यता बाह्य, भौतिकवादी तथा शीघ्र परिवर्तित होने वाले सामाजिक सन्दर्भों की व्याख्या करती है, जबकि संस्कृति आन्तरिक, आध्यात्मिक तथा मानव व्यवहार के पक्षों से जुड़ी है। 'संस्कृति' शब्द की उचित व्याख्या करना बहुत कठिन है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का अर्थ किसी समुदाय की जीवनशैली है, जिसका समुदाय के रहन-सहन, खान-पान, पहनावा एवं जीवनशैली पर विशेष प्रभाव पड़ा है एवं समाज की संस्कृति अपने नागरिकों को अनेक आदर्शात्मक मूल्य प्रदान करती है। इन मूल्यों से लोक प्रशासन का संगठन एवं व्यवहार भी अछूता नहीं रहता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के निम्न अधिकारियों के प्रति दृष्टिकोण आदि पर इस बात का विशेष प्रभाव पड़ता है कि उस समाज विशेष की संस्कृति और मूल्य क्या हैं? एक-दूसरे को सम्मान देना, शिष्ट भाषा में विरोध करना तथा किसी भी कार्य के प्रति सहयोग, सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण अपनाना, अन्तः संस्कार और संस्कृति की ही अमूल्य देन होते हैं। संस्कार, संस्कृति और मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही प्रशासनिक व संवैधानिक कानूनों का निर्माण किया जाता है और यही कारण है कि एक देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून दूसरे देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून से एकदम भिन्न और विपरीत होते हैं। जी0ई0 ग्लेडन ने भी अपनी पुस्तक, "Dynamics of Public

Administration" में लोक प्रशासन और सांस्कृतिक परिवेश के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि ''यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामजंस्य स्थापित नहीं करती, तो सामाजिक असन्तोष और हिंसा से ढांचा अन्ततः ध्वस्त ही हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूलन क्षमता ही प्रशासन में लोक सामांजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।''

यदि भारतीय संस्कृति पर नजर डालें तो, भारतीय संस्कृति की धारा अनेकों बार अवरूद्ध भी हुई, परन्तु समय-समय पर भारतीय महापुरूषों ने उसे पुनः एकीकृत किया। साथ ही आधुनिक स्वरूप प्रदान करके उसे शाश्वत भी बना दिया। सामाजिक मूल्य, सम्प्रदाय, रूढ़ियां, भाषा, संचार, रहन-सहन, खान-पान, बोली तथा धर्म आदि संस्कृति के अंग माने जाते हैं। लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले प्रमुख सांस्कृतिक पर्यावरणीय कारकों में धर्म एवं साम्प्रदायिक आस्थाऐं, भाषा एवं बोली, शिक्षा तथा मूल्य, पहनावा, परम्पराऐं, रीति-रिवाज, लिपि, संचार के साधन आदि आते हैं।

सभ्यता व संस्कृति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है और इसे कई कारकों ने परिवर्तित किया है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कभी बहुत तीव्र और कभी धीमी भी रही है। व्यक्ति के व्यवहार तथा प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करने में सम्बन्धित समाज की सांस्कृतिक विशेषताऐं बहुत प्रभाव डालती है। यदि धर्म के सन्दर्भ में देखा जाये तो भारत जैसे देश में अनेक धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं। धर्म का अभिप्राय सामान्य शब्दों में होता है। वे तत्व जिनके रहने से ये समाज रहता है और जिनके ना रहने से यह समाज बिखर कर नष्ट हो जाता है। जैसे- धैर्य, क्षमा, उदारता, सन्तोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, सत्य, प्रेम, अहिंसा, परोपकार, सहयोग, अपनी ही भांति दूसरों की चिंता करना आदि और धर्म के इन तत्वों को नैतिक मूल्य या श्रेष्ठ जीवन-पद्धति के तत्व भी कहा जा सकता है। साथ ही ये कर्तव्य भी कहला सकते हैं और मानवीय सद्-गुण भी। ये तत्व दुनिया में सर्वत्र और सभी के लिये कल्याणकारी होते हैं और मानव-मात्र के लिये हितकर भी होते हैं। इनकी हितकारिता को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कोई भी नहीं नकार सकता। धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णतः उतार लेने के लिये और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिये भारत में विभिन्न दर्शनों एवं सम्प्रदायों का विकास हुआ है जैसे- अद्वैत, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध तथा सिक्ख आदि। धर्म साध्य होता है और सम्प्रदाय उसकी प्राप्ति का साधन। भाषा, विचार-अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य साधन है। जिन देशों की राष्ट्रीय भाषा होती है, वहाँ प्रशासन का कार्य सुविधाजनक बन जाता है।

उपरोक्त सभी सांस्कृतिक तत्वों के बारे में जानने के बाद ये स्पष्ट हो जाता है कि लोक प्रशासन संस्कृति में बांधा है, क्योंकि इसकी स्थिति या पर्यावरण इसको ढालता है तथा यह विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों या पर्यावरणों में निजी विशेषताओं का विकास करता है। विभिन्न देशों में लोक प्रशासन के ढ़ाँचों और कार्यों को देखने से पता चलता है कि औपचारिक संगठनों में बाहरी एकरूपता है, फिर भी उनके अनौपचारिक तथा व्यवहारिक नमूनों में बहुत अधिक विभिन्नताऐं हैं। इसका कारण भी यही है कि, प्रत्येक का रूप उसके समाज की संस्कृति ही प्रदान करती है। इन विभिन्नताओं के कारण ही एफ0 डब्ल्यू रिग्स सामाजिक ढ़ाँचों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में करते हैं- संयोजित (Fused), प्रिजमीय(Prismatic) तथा निवर्तित(Diffracted) और उन्होंने इन तीनों श्रेणियों में प्रशासन की निजी विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रिजमीय समाज के विश्लेषण में प्रशासनिक ढ़ाँचों पर पड़ने वाला पर्यावरण का प्रभाव ही ध्यान का मुख्य केन्द्र है।

यह अवश्य कहना होगा कि किसी भी समाज के सांस्कृतिक मूल्य अपरिवर्तनीय नहीं होते। संस्कृति परिवर्तनशीन है और संस्कृति तथा प्रशासन में निरन्तर परस्पर क्रिया होती रहती है। यही परस्पर क्रिया लोक प्रशासन तथा सरकार की भूमिका की पुनर्व्याख्या करती है। ये पारस्परिक क्रिया एकपक्षीय अथवा एक दिशोन्मुखी नहीं है अर्थात्

केवल संस्कृति तथा पर्यावरण ही प्रशासन को प्रभावित नहीं करता अपितु यह द्विपक्षीय या द्वि-दिशोन्मुखी है। लोक प्रशासन भी समाज की संस्कृति और पर्यावरण पर समान रूप से प्रभाव डालता है। भारत में संस्कृति तथा प्रशासन के बीच परस्पर क्रिया के एक अध्ययन में बी0 पी0 सिंह लिखते है कि ''भारत में एक नया प्रशासनिक लोकाचार अधिकाधिक देखने में आ रहा है जो सामान्य इच्छा को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है और नई चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये वह अपनी संगठनात्मक योग्यता तथा आदान(Inputs) को विकसित कर रहा है। इस सन्दर्भ में प्रशासन निरन्तर हमारे समाज की राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया में लगा है। यह इन व्यवस्थाओं को परिवर्तित करने वाले प्रभाव का कार्य करता है और साथ ही स्वयं भी इन सम्बन्धित व्यवस्थाओं की क्रियाओं से प्रभावित होता है। चूँकि लोक प्रशासन संस्कृति से बंधा है अत: इसका परिणाम यह है कि एक पर्यावरणात्मक स्थिति का लोक प्रशासन किसी भिन्न सांस्कृतिक. पर्यावरण से प्रतिरोपित(transplanted) नहीं किया जा सकता। रॉल्फ ब्रायबंटी(Ralph Braibanti) भी इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। उनका कथन है ''जब संस्थानों को एक पर्यावरण से दूसरे वातावरण में प्रतिरोपित या स्थानान्तरित किया जाता है तो उनका विकास पूर्वकल्पित मार्गों पर नहीं होता और हो सकता है कि वे ऐसी आवश्यकताओं को पूरा करें जो उनकी उत्पत्ति के स्थान की आवश्यकताओं से भिन्न हो।'' एक समाज से लाये गये विचारों और ढ़ाँचों को प्राप्तकर्ता समाज में पूर्व स्थित विचार और ढांचा परिवर्तिन ही एक बहुत ही गतिशील प्रक्रिया के द्वारा ढाल देते हैं। जिस प्रक्रिया को विभिन्न नाम दिये जाते हैं जैसे- संस्कृति प्रसारण तथा अभिग्रहण(culture radiation and reciption) और स्वदेशीकरण का सर्पिल गति से बढ़ना (spiralling indegenization)।

निष्कर्ष के तौर पर ये कहा जा सकता है कि प्रशासनिक व्यवहार को भली-भाँति समझने एवं उसका आर्थिक विश्लेषण करने के लिये प्रशासन के राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण को समझना आवश्यक होता है। गाई पीटर्स तथा माइकल क्रोजियर, लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति या प्रशासनिक संस्कृति(Administrative culture) के अध्ययन की भी आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। प्रशासनिक संस्कृति वे पारम्परिक तरीके या ढंग हैं, जिसमें धार्मिक सोच और कार्य करते हैं। प्रत्येक देश में लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति बाह्य कारकों से अत्यधिक प्रभावित रहती है। भारत में बाबूराज, फाईलराज, नेता-संस्कृति, स्पीड मनी (कार्य शीघ्र करने के लिये पैसा देना) तथा नियमों के चक्रव्यूह प्रशासनिक संस्कृति के पर्याय हैं।

यह स्वयं-सिद्ध है कि अन्य संस्थानों की भाँति नौकरशाही भी समाज, जिसका की वह भाग है, को प्रतिबिम्बित करती है। औपचारिक नियमों एवं विवेकपूर्ण आचार का अध्ययन विशाल सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण जिसका कि नौकरशाही एक भाग है, के सन्दर्भ में किया जाना चाहिये। उदाहरण के तौर पर, भारत में अंग्रेजों ने असैनिक सेवाओं का विकास सामान्य योग्यता, ईमानदारी, निष्पक्षता तथा राजनीतिक तटस्थता के सिद्धान्तों के आधार पर किया था। भारत की नौकरशाही की भूमिका इन आदर्श नियमों की भाषा में नहीं समझी जा सकती, अपितु इसका अध्ययन तो इनकी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं तथा दिशाओं के सन्दर्भ में होना चाहिए। अतः अनुभवमूलक अध्ययनों के आधार पर इस दृष्टिकोण को समर्थन मिलता है कि संस्कृति और प्रशासनिक उप-व्यवस्था के बीच निकट का सम्बन्ध है। गाई पीटर्स ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि ''कई बार नौकरशाही का चित्रण ऐसे किया जाता है, जैसे कि वे अपने समाजों को कुचलती चली जाती है। किन्तु वे अपने समाज तथा उनके मूल्यों के साथ कई पतले, परन्तु सशक्त बंधनों से बंधी होती है।''

9.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश

किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, संस्थात्मक नमूनों, वर्ग अथवा जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक वसीयत संपदा(legacy), परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास तथा आदर्श, लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उस के प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, इसका कारण ये है कि लोक प्रशासन के भीतर का मानवीय तल अपने समाज की उपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं और संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। लोक सेवा में सम्मिलित होने से पूर्व ही वे समाज के मूल्यों, लोकाचार तथा परम्पराओं को अपना लेता है। सामाजिक वातावरण में वह जिस दृष्टिकोण और रवैये का विकास कर लेता है, वे लोक सेवा में उसके निर्णयों को बहुत हद तक प्रभावित करते हैं। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं व संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। किसी भी प्रशासन की अनुक्रियाशीलता(Responsiveness) उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि, मूल्यों और व्यवहारों से अलग करके नहीं देखी जा सकती, यही उसकी निर्णय क्रिया तथा समाज में जिस प्रकार के लोगों से वह अपने आप को जोड़ता है उन पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। रिग्स के द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, समूहों, वर्ग (या जाति) सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्य, आस्था, विश्वास, आदर्श तथा लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उसके प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालता है।

भारतीय समाज की विशेषता यह कि वह बहुलवादी समाज है, सभी सामाजिक प्राणी लोक सेवकों की भूमिका निभाते हैं। संक्षेप में, सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाते हैं- वर्ग तथा जाति, सामाजिक परम्पराऐं एवं मूल्य, सामाजिक न्याय एवं समानता, सामाजिक सम्बन्ध, पारिवारिक संस्कार, शिक्षा संस्थानों की भूमिका, सामाजिक परिवर्तनशीलता की दर, संचार के साधन, स्वैच्छिक संगठन और जनसंख्या तथा स्वास्थ्य।

भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गों को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग या जाति पिछड़ी और कमजोर है, उसे विशेष सुविधाऐं देकर ऊपर उठाना, प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। इसी प्रकार भारतीय समाज की संरचना के आधार जाति (वर्ग) और उप-जाति है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज जाति प्रधान रहा है और स्वतंत्रता के बाद समस्त राजनीतिक गतिविधियां, चुनाव, नियुक्तियां, दलों आदि में जाति का प्रभाव बढ़ा है और यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। प्रो0 जैन ने लिखा है कि, ''जनजातीय, भाषार्थी, धार्मिक, क्षेत्रीय और जातिगत निष्ठा भारतीय समाज की आधार रचना की मूल विशेषता है। इसने यहाँ की राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणाली पर गहरी छाप डाली है और विकास की प्रक्रियाओं को भी प्रभावित किया है।'' इन सबके अतिरिक्त एक और तथ्य जो प्रशासनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है कि, प्रशासन को अब केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं चलाया जा सकता, बल्कि प्रशासन के संचालन के लिये आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकरशाही से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव बना रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तर दायी बना रहता है। दूसरी ओर, सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससे ये बात और स्पष्ट हो जाती है कि प्रशासन को सामाजिक परिवेश के अनुसार संचालित करना पड़ता है। समाज, प्रशासन के अनुसार नहीं बल्कि प्रशासन, समाज के अनुसार संचालित होता है।

सामाजिक पर्यावरण के अन्य तत्व जैसे- रूढ़ियां(mores), परिवर्तन अथवा सुधार की ओर समाज का रवैया, धर्म, भाषा, परिवार या कबीले जैसे रक्त सम्बन्धी समूह, संघटन के तत्व जैसे संचार और यातायात के साधन आदि भी लोक प्रशासन को प्रभावित करते हैं। रिग्स ने परिवारों सम्प्रदायों, सामाजिक वर्गों तथा सभाओं जैसे समूहों आदि सामाजिक ढ़ाँचों का लोक प्रशासन पर सम्भावित प्रभाव देखा था। इनका लोक सेवाओं की भर्ती, समाजीकरण, पदोन्नति तथा गतिशीलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। इसके अतिरिक्त, सामान्य सहमति तथा समानता जैसे प्रशासनिक मूल्यों को ढालने के लिये प्रशासन में संस्कृति और प्रतीकों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज में जो तनाव और संघर्ष प्रचिलत होते हैं, नौकरशाही उसका प्रतिनिधित्व करती है। यदि हमारा समाज गुटों में बँटा है और प्रान्त या क्षेत्रों की ओर झुकता है तो निश्चित रूप से यह संकीर्ण दृष्टिकोण सरकारी कर्मचारियों का भी प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के तौर पर, नाइजीरिया में विस्तृत परिवार का प्रभाव बहुत महत्व रखता है, राजनीतिक संरक्षण की अपेक्षा भाई-भतीजावाद की समस्या बहुत बड़ी है, अतः राजनीतिज्ञ तथा असैनिक कर्मचारी दोनों ही पर रिश्तेदारों के एक दायरे को सहायता या समर्थन करने के लिए उग्र तथा निरन्तर दबाव रहता है। भाई-भतीजावाद, पक्षपात तथा भ्रष्टाचार केवल नाइजीरिया की ही विशेषता नहीं है। वास्तव में यह अधिकतर विकासशील देशों के लोक प्रशासन के बहुत सामान्य लक्षण हैं। इसका कारण यह है कि इन देशों में पारिवारिक या रक्त-सम्बन्ध अभी भी बहुत सशक्त हैं, जबकि पश्चिमी देशों में बहुत हद तक कम हो गये हैं। इसके अतिरिक्त विकासशील समाजों में यद्यपि भाई-भतीजावाद तथा भ्रष्टाचार की औपचारिक रूप से आलोचना की जाती है, फिर भी ये काफी प्रचलित हैं और इनको समाज की अदृश्य मान्यता प्राप्त है। प्रिजमीय (Prismatic) समाजों की व्याख्या करते हुए रिग्स कहते हैं कि ये रिवाज लोक प्रशासन में औपचारिकतावाद का कारण है। माइकल क्रोजियर ने फ्रांस की नौकरशाही के व्यवहार में वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक नियमों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी है। रूस के प्रशासन का आधुनिकीकरण करने के प्रयासों में पीटर महान(Peter the Great) को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा था, क्योंकि परम्परागत सामाजिक मान्यताऐं शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होती है। परिवार, वंश, मूल निवास स्थान, सामुदायिक मान्यताऐं तथा सामाजिक मूल्य व्यक्ति के संस्कारों के भीतर तक समाहित होते हैं। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में भाई-भतीजावाद का प्रचलन कम है, क्योंकि वहाँ व्यक्ति तथा परिवार (रक्त सम्बन्धी) की घनिष्ठता एवं आत्मीयता उस प्रकार की नहीं है, जैसे कि भारत या अन्य विकासशील देशों में पायी जाती है। शहरी बनाम ग्रामीण समाज की जीवनशैली तथा उनकी महत्वपूर्ण प्रकृति के पदों पर शहरी एवं अंग्रेजी पृष्ठभूमि के व्यक्तियों का विशेषाधिकार एवं सेना में जवानों के पदों पर ग्रामीण युवाओं का चयन सम्पूर्ण सामाजिक ढ़ाँचे की स्वतः व्याख्या करते हैं।

9.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश

लोक प्रशासन की जड़ें राजनीति में होती हैं। राजनीति का सम्बन्ध किसी देश के शासन से होता है और शासन का क्रियात्मक रूप प्रशासन में दिखता है। प्रशासन और राजनीति का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होता है। दोनों ही एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण से पूर्णतया अलग नहीं होता है। यह दोनों मिल कर वह स्थिति या वातावरण बनाते हैं, जिनमें लोक प्रशासन को यदि अधिक नहीं तो उतना अवश्य प्रभावित करता है जितना कि सामाजिक पर्यावरण। राजनीति परिवेश में जब बदलाव आता है, तब प्रशासनिक संस्थाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश के लोक प्रशासन तथा उसकी संरचनाओं पर वहाँ के राजनीतिक परिवेश का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। शासन तथा राजनीतिक पर्यावरण एक-दूसरे

के पर्याय बनते जा रहे हैं। राजनीतिक पर्यावरण के कुछ कारक जैसे- संवैधानिक पर्यावरण, शासन प्रणाली, शक्तियों का बंटवारा, राजनीतिक दलों की मान्यताऐं, राजनीतिज्ञ व लोक सेवक सम्बन्ध आदि लोक प्रशासन की परिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं।

भारतीय सन्दर्भ में प्रशासन एवं राजनीतिक पर्यावरण की विवेचना करने के लिये हमें इसको विकासशील और विकसित देशों के सन्दर्भ में समझना होगा। विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक पर्यावरण सर्वथा भिन्न प्रकृति का पाया जाता है एवं दोनों स्थानों में लोक प्रशासन में अन्तर दिखाई पड़ता है। विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भिन्न होती है, क्योंकि वहाँ की सेवाऐं थोड़ी परिपक्वता प्राप्त होती है तथा वहाँ आधुनिकता भी देखने को मिलती है। आधुनिकीकृत राजनीति में कई प्रकार के लक्षण देखने को मिलते हैं, जैसे- नौकरशाही का विशेषीकरण, उच्चस्तरीय व्यवसायिक पुट, कार्यक्षेत्र विस्तार, आपसी सामंजस्य, जनसहयोग, सच्चरित्रता आदि। नियंत्रण एवं आपसी समन्वय सहित अधिकार क्षेत्र की भी स्पष्टता रहती है, अतः विकसित राष्ट्रों की राजनीति एवं लोक प्रशासन दोनों मिलकर राष्ट्रीय विकास में योगदान देते हैं। वहीं दूसरी ओर यदि विकासशील राष्ट्रों की ओर देखें तो वहाँ राजनीतिक व्यवहार बहुत ही अस्पष्ट एवं अपरिपक्व दिखाई देता है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक प्रक्रियाऐं तथा संस्थाऐं एक संक्रमणकाल से गुजरती हैं, जहाँ विकासवादी विचारधाराऐं, सरकारों की अस्थिरता, शासक तथा शासकों के मध्य खाई, राजनीतिक संस्थाओं में असन्तुलन तथा विदेशी शक्तियों का प्रभाव दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय समस्याओं तथा विवादित विषयों पर सर्वसम्मति का अभाव पाया जाता है परिणामस्वरूप सत्तारूढ़ शासक दल द्वारा पूर्ववर्ती राजनीतिक दल द्वारा बनायी गयी नीतियों तथा कार्यक्रमों को परिवर्तित कर दिया जाता है। राजनीतिक दलों की संविधान, कानून तथा राष्ट्रीय विकास के प्रति कटिबद्धता नहीं होती है, बल्कि वो वोटों की राजनीति में ज्यादा विश्वास करते हैं। फैरेल हैडी, आमण्ड, राबर्ट टूकर तथा शोल्स आदि ने विकसित एवं विकासशील देशों में शासन, राजनीति एवं नौकरशाही को वर्गीकृत करने का प्रयास किया, उनके अनुसार प्रशासन की कुछ विशेषताऐं इस प्रकार से हैं-

1. **आधुनिकीकृत प्रशासन(Mordernizing Administration)-** जापान आधुनिकीकृत प्रशासन का उदाहरण माना जाता है। जापान के संविधान के अनुसार लोक सेवक किसी विशेष समूह के नहीं बल्कि समाज के प्रतिनिधि माने जाते हैं। यहाँ लोक सेवक राजनीतिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
2. **परम्परागत स्वेच्छाचारी व्यवस्था(Traditional-AutocraticSystem)-** ऐसी व्यवस्था में यमन, पेरू, मोरक्को आदि शामिल किये गये हैं, जहाँ जनाधिक्य की समस्या भी है। यहाँ परम्परागत राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था पायी जाती है। अर्थात् दलों या दबाव समूहों का अस्तित्व न के बराबर है, प्रशासनिक तंत्र एवं सेना स्वेच्छाचार्य शासकों की इच्छाओं को पूरा करने में व्यक्त होती है। समाज के विकास को शासकों द्वारा प्राथमिकता नहीं दी जाती है, केवल प्रयास भर किये जाते हैं।
3. **नागरिक संस्कृति(Civic Culture)-** नागरिक संस्कृति का प्रचलन संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन में पाया जाता है। यहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक संस्कृति में समानता है तथा लोकसेवक राजनीति के साथ मिलकर काम करते हैं। सामाजिक शक्तियाँ अर्थात् नागरिक भी इन देशों में लोक प्रशासन में विशेष भूमिका निभाती हैं।
4. **शास्त्रीय प्रशासन(Classic Administration)-** फ्रान्स तथा जर्मनी जैसे देशों में शास्त्रीय प्रशासन प्रवर्तित है, जहाँ कितनी भी राजनीतिक उथल-पुथल क्यों न मचे, लोक प्रशासन यथावत कार्य करता

रहता है। अधिकार सम्पन्न लोक सेवक बहुत शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में भी रूचि लेते हैं।

5. **नौकरशाही अभिजन व्यवस्था(Bureaucratic Elite System)-** इस प्रकार की व्यवस्था के उदाहरण में म्यांमार (बर्मा), इण्डोनेशिया, इराक, सूडान एवं कई अफ्रीकी देशों को शामिल किया जाता है। इन देशों में शासक वर्ग तथा लोक सेवक वर्ग में समाज के उच्च वर्ग, धनी किसान, उद्योगपति और प्रभुत्व सम्पन्न शामिल होते हैं। इन लोगों की वास्तव में सामाजिक न्याय एवं विकास में कोई आस्था नहीं होती, वहीं दूसरी तरफ जनता का भी इन पर ज्यादा विश्वास नहीं होता। लोक सेवकों की अपेक्षा सैनिक अधिकारी शासन सत्ता और राजनीति के ज्यादा समीप होते हैं।
6. **प्रभावशाली दल: गतिशील व्यवस्था(Dominant Party : Mobilization System)-** मिस्त्र, घाना, अल्जीरिया, बोलिविया एवं अन्य पश्चिमी अफ्रीकी देशों में प्रवर्तित है। इन देशों की राजनीति में दमन एवं निरंकुशता अधिक मात्रा में पायी जाती है। इन देशों में केवल एक ही राजनीतिक दल अग्रणी रहता है, बाकी दलों को आगे नहीं आने दिया जाता है। विशिष्ट समूह, शिक्षित युवा, नौकरशाही तथा अभिजन आदि सत्ता के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित करते हैं।
7. **प्रभावशाली दल: अर्द्ध प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था(Dominant Party: Semi Competitive System)-** इस के अन्तर्गत ऐसे देश आते हैं, जहाँ एक ही राजनीतिज्ञ वर्षों तक अपना प्रभुत्व बनाये रखता है। हालांकि यहाँ अन्य दल भी मौजूद होते हैं, परन्तु वे कड़ी प्रतिस्पर्द्धा में नहीं होते हैं। भारत की कांग्रेस पार्टी और मैक्सिको की पी0आर0आई0 इसके उदाहरणों में शामिल हैं। डेविड एप्टर इसे गतिशील व्यवस्था मानते हैं, जिसका उद्देश्य समाज परिवर्तन, पंथ निरपेक्षता तथा समानता स्थापित करना है। यहाँ नौकरशाही की स्थिति मध्यम होते हुए पूर्णतया प्रभावी नहीं कहीं जा सकती है।
8. **बहुलवादी प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था(PolyarchialCompetitveSystem)-** इस व्यवस्था में फिलीपीन्स, मलेशिया, लेबनान, ब्राजील, तुर्की, श्रीलंका जैसे विकासशील देशों को शामिल किया जाता है। इन देशों में अनेक राजनीतिक दल, समूह या संगठन कार्य करते हैं। ये सभी संगठन भी प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में चलते हैं और नीति निर्माण एवं अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर इनकी सहमति रहती है। राबर्ट डाल ने बहुलवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत बताया है कि प्रत्येक संगठन किसी ना किसी स्तर पर अपनी भूमिका अवश्य निभाता है। जनसाधारण के बीच सक्रिय रहकर राजनीतिक दल न केवल जनमत का निर्माण करते हैं, बल्कि शासन सत्ता की प्राप्ति के लिये सदैव संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में वे नौकरशाही से भी उलझते रहते हैं।
9. **साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था(Communist Totalitarian System)-** इस व्यवस्था के अन्तर्गत वे विकासशील देश आ जाते हैं, जहाँ साम्यवाद का प्रचलन है। जैसे- रोमानिया, पोलैण्ड, हंगरी, बुल्गारिया आदि। लेकिन बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में साम्यवाद का मोह हटने लगा था। साम्यवाद का तात्पर्य उस शासन व्यवस्था से है, जिसमें जनता के कल्याण एवं विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सरकार स्वयं उठाती है और उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का नियंत्रण रहता है। दूसरी ओर सर्वाधिकारवाद वह व्यवस्था है, जब व्यक्ति के जीवन की समस्त गतिविधियां सरकार के नियंत्रण में आ जाती हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं रहता है। साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था अब उपरोक्त वर्णित सभी देशों में दम तोड़ चुकी है।

उपरोक्त वर्णित राजनीतिक, संवैधानिक वर्गीकरण, समय के साथ परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि स्वयं राजनीति भी समसामायिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है।

इस प्रकार इन सभी विशेषताओं को देखने के बाद भारतीय सन्दर्भ में राजनीतिक पर्यावरण को समझना अधिक आसान हो जाता है। राजनीतिक अस्थिरता के सन्दर्भ में यदि भारत की स्थिति की विवेचना की जाये तो भारत में वर्ष 1989 से 1998 के मध्य हुए चार आम चुनावों के समय केन्द्र में त्रिशंकु विधायिका(Hung Parliament) की स्थिति उत्पन्न होने पर अस्थिर सरकारों द्वारा शासन संचालित किया गया। इस प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका सुदृढ़ नहीं कहीं जा सकती है, क्योंकि गठबन्धन या साँझा सरकारें बिना किसी सहारे के नहीं चल सकती हैं। इस राजनीतिक अस्थिरता का दुष्परिणाम यह हुआ है कि परम्परागत नौकरशाही अर्थात् स्थायी कार्यपालिका की निंरकुशता नियन्त्रित होने के स्थान पर और अधिक बढ़ी तथा विकास की प्रक्रिया नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है। इसी प्रकार यदि राजनीतिक परिदृश्य में व्याप्त निराशा, संघर्ष, अस्थिरता और अवसरवादिता के समग्र सामाजिक ढ़ाँचे और लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली को प्रभावित करने का प्रश्न है, तो भारत में भी ये स्थिति पायी जाती है। सैद्धान्तिक रूप से कोई भी लोक सेवक राजनीतिक कार्यकलापों में भाग नहीं ले सकता है, फिर भी प्रशासनिक अधिकारियों में पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक भेदभाव पाया जाता है। सरकारी कर्मचारियों के स्थानान्तरण तथा पदस्थापन में दिखाई देने वाली राजनीतिक संकीर्णताऐं लोक प्रशासन को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। नीति-निर्माण का कार्य राजनीतिक मंत्री द्वारा किया जाता है एवं निष्पादन का कार्य लोक सेवकों का होता है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक मान्यताओं का प्रशासन पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक है। 'नवीन लोक प्रशासन' की विचारधारा भी यह मानती है कि राजनीति तथा लोक प्रशासन का पृथक्करण ना तो सम्भव है और ना ही व्यवहारिक।

9.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश

आधुनिक युग में आर्थिक विकास का अत्यधिक महत्व हो गया है। कुछ समय पूर्व तक राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास के अनुसार ही नवीन इकाईयों का गठन किया जाता है। आर्थिक पर्यावरण ऐसा तत्व है जो लोक प्रशासन के साथ परस्पर क्रिया में लगा होता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहाँ के लोक प्रशासन के स्वरूप, संगठनों और कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश का लोक प्रशासन वैसा ही होता है, जैसा कि वहाँ का आर्थिक पर्यावरण होता है। उच्च स्तरीय संसाधनों से सम्पन्न देश का प्रशासनिक-तंत्र विकसित होता है तो दूसरी ओर आर्थिक विपन्नताओं से जूझते विकासशील राष्ट्रों का प्रशासनिक तंत्र व्याधिग्रस्त होता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में तीव्र आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण के लिये प्रशासनिक सुधारों को आवश्यक समझा जाता है। सामान्यतः अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा नीतियां राजनीति एवं प्रशासन द्वारा निर्धारित की जाती हैं। प्रशासन को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इनके लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व भी प्रशासन का ही होता है, अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहाँ के आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप मात्र कानून व्यवस्था तक ही सीमित न होकर, व्यक्ति के जीवन के हर पहलू को सवारने के लिये लोक कल्याणकारी बन गया है। डॉ0 आर0 के0 दुबे लिखते हैं ''लोक कल्याणकारी राज्य में आर्थिक विकास और सामाजिक विकास की अनेकों नवीन योजनाऐं संचालित की जाती है। प्रत्येक आर्थिक योजना पर्यावरण की परिस्थितियों से ही प्रभावित

होती है, लेकिन इन योजनाओं को लागू करना लोक प्रशासन का दायित्व बन जाता है। आर्थिक विकास कार्यक्रमों को पूरा करने की लोक प्रशासन की क्षमता उत्पादन का महत्वपूर्ण निर्णायक तत्व होती है। आर्थिक विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा अपनी योग्यता को बढ़ाने हेतु लोक प्रशासन को आमतौर पर नये मूल्यों को भी अपनाना पड़ता है। अतः आर्थिक वातावरण तथा लोक प्रशासन दोनों एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रया करते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।'' लोक प्रशासन और पर्यावरण के आर्थिक पहलू को कुछ तथ्यों का अध्ययन करके और स्पष्टता से समझा जा सकता है।

1. आधुनिक काल में यह माना जाता है कि सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया मूलतः लोक प्रशासन की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है।
2. आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लोक प्रशासन की भूमिका महतवपूर्ण है। प्रशासन को सदा आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं।
3. किसी भी देश की आर्थिक दशाओं में प्रगति या अवनति प्रशासन की नीतियों पर निर्भर करती है।
4. आर्थिक व्यवहार का प्रशासन पर भी प्रभाव पड़ता है। कोई भी देश जब अपना आर्थिक विकास करना चाहता है, तब उसे तदनुसार संस्थागत परिवर्तन करने होते हैं। ऐसी व्यवस्था की जाती है कि अधिक काम करने का प्रोत्साहन प्राप्त हो।
5. अर्थव्यवस्था की समस्त गतिविधियों पर राज्य एवं समाज के हित में नियंत्रण करने का दायित्व भी प्रशासन का होता है।
6. अर्थ या वित्त, प्रशासन का जीवन-रक्त कहा जाता है। जिस प्रकार रक्त का नियमित प्रवाह शरीर के संचालन के लिये आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये भी पर्याप्त साधन, कर्मचारियों का सन्तोष, कार्य की उचित दशाऐं आदि की व्यवस्था वित्त के द्वारा ही की जाती है।
7. विकासशील देशों का प्रशासन जो विकास प्रशासन का पर्याय बन चुका है, का प्रमुख उद्देश्य भी सामाजिक, आर्थिक विकास को सुनिश्चित करना होता है।
8. इसके अतिरिक्त तीव्र आर्थिक विकास किसी भी देश में नियोजित तरीके से ही प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन का उद्देश्य सीमित साधनों के द्वारा कम समय में अधिक लक्ष्यों की प्राप्ति होता है। इनकी प्रगति के लिये प्रशासन का स्वरूप लोक कल्याणकारी हो जाता है और विकासशील प्रशासन का जन्म होता है। इस प्रकार लोक प्रशासन नियोजन तन्त्र का चालक और प्रेरक होता है।
9. लोक प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण कमी या समस्या भ्रष्टाचार के अनेक कारण हैं, जिनमें से प्रमुख आर्थिक ही है। अतः प्रशासन को भ्रष्टाचार रहित रखने के लिए आर्थिक उपाय ही खोजने होंगे।

अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि ना केवल प्रशासन आन्तरिक जीवन को नियंत्रित करता है, बल्कि देश की आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी प्रशासन पर पड़ता है। लोक प्रशासन की समस्याऐं वास्तविक होती हैं तथा पूर्ण अर्थव्यवस्था का ही एक अंग होती है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध, कार्य एवं प्रकृति देश के आर्थिक जीवन का एक निर्णायक तत्व मानी जाती है।

विकासशील देशों में लोक अधिकारियों का कम वेतन तथा सरकारी भ्रष्टाचार भी उनके आर्थिक विकास के निम्न स्तर, तथा तकनीकी और मानवीय साधनों की कमी से जुड़े हुए हैं। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था भी पिछड़ी हुई मानी जाती है, क्योंकि उसमें जनाधिक्य, परम्परागत देशों की भरमार, कम औद्योगिकीकरण, तकनीकी

पिछड़ापन, गरीबी, बेरोजगारी, संसाधनों की कमी या निम्न गुणवता, कृषि पर बहुत अधिक निर्भरता आदि की समस्याऐं भी जुड़ी रहती हैं। अर्थव्यवस्था की इस शोचनीय स्थिति के कारण ही लोक प्रशासन के सम्मुख नित नई चुनौतियां उत्पन्न होती रहती हैं। इसी कारण यह कहा जाता है कि, किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को समझे बिना प्रशासन का विश्लेषण करना जटिल एवं अव्यवहारिक है। भारत सहित विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में एक ओर पर्याप्त भूमि अनुपयोगी पड़ी है, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी बढ़ रही है। वास्तव में विकासशील देशों में आर्थिक संसाधनों तथा नीतियों में समन्वय एवं व्यवहारिकता का पर्याप्त अन्तर रहने के कारण अर्थव्यवस्था का संचालन बिखरा हुआ है और कमजोर दिखाई पड़ता है। अमेरीकी प्रशासन का अध्ययन करने के पश्चात एफ0डब्ल्यू0 रिग्स का निष्कर्ष था कि अमेरीकी प्रशासन की बहुत सी विशेषताऐं उसकी अर्थव्यवस्था के नमूने पर ढली हुई है, यही बात विकासशील देशों के प्रशासन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका में आर्थिक उत्पादकता बहुत ऊँची है और इसका प्रशासन से सम्बन्ध है। अमरीका के आर्थिक संख्यात्मक प्रबन्धों में कमी वाले साधनों का उपयोगी तथा विवेकपूर्ण प्रयोग होता है। इससे सेवाओं और उत्पादन में बहुत वृद्धि होती है, इससे कई सामाजिक मूल्यों को ऐसा समझा जाता है, जैसे कि वे कोई वस्तु हो और बाजार में खरीदी या बेची जाती हो। भूमि, मनुष्य की मजदूरी, धन, समय, सभी बिकाऊ समझे जाते हैं और समाज बाजार को केन्द्रीय संस्थान मानकर कार्य करता है। रिग्स का कहना है कि अमरीकन समाज का बाजार के प्रति उन्मुख होने में हमारी प्रशासन व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव है। अमरीका के लोक कार्मिक प्रशासन के कई नियम, जैसे- 'समान कार्य के लिये समान वेतन' (नौकरशाही मजदूरी के लिये कीमतों को बराबर करना), किसी सरकारी कर्मचारी को उसका कार्य सन्तोषजनक ना होने पर पद से हटा देना (''पद के लिये योग्यतम व्यक्ति'' का सिद्धान्त), नौकरशाह तथा नियुक्त करने वाले अभिकरण के बीच सम्बन्धों का निश्चित होना तथा समझौते की शर्तों पर आधारित होना (समझौता करने का अधिकार) आदि अमरीका की आर्थिक व्यवस्था से प्रभावित है। इसी प्रकार अमरीका के लोक वित्तीय प्रशासन ने भी मार्केट सिद्धान्त से संकेत प्राप्त किया है। वहाँ कर(Tax) की दर राज्य द्वारा दी जाने वाली सेवाओं से सम्बन्धित है तथा निष्पादन बजटिंग प्रणाली(Performance Budget System) इसी के उदाहरण माने जाते हैं। रिग्स का मानना है कि ''अमरीका का मार्केट समाज प्रशासनिक क्षेत्र में भी वहीं भौतिक मूल्य लागू करना चाहता है, जो वह मार्केट में लागू करता है।'' रिग्स आगे चलकर फिर कहते है, ''अधिकतर अमरीका के लोक प्रशासन के सार का निर्धारण उसके मार्केट समाज की आर्थिक आवश्यकताऐं करती हैं। जो बात सामान्य तौर पर किसी भी औद्योगिक दृष्टि से विकसित समाज के लिए सत्य हो सकती है, वह यह है कि वह अपनी अर्थव्यवस्था के समर्थन के लिये उपयोगी तथा विवेकपूर्ण संस्थानों पर आधारित होता है। मार्केट तथा ब्यूरो (सरकारी विभाग) दोनों ही औद्योगिक समाज के अनिवार्य ढ़ाँचे हैं। अतः मेरा निष्कर्ष यह है कि यह इतना अधिक स्वयं मार्केट नहीं है, अपितु औद्योगीकरण है, जिसके परिणामस्वरूप एक विवेकपूर्ण(achievement oriented) लोक प्रशासन व्यवस्था की स्थापना सम्भव तथा अनिवार्य दोनों है।''

बाजारीकरण(marketization) लोक प्रशासन के अन्य पक्षों, जैसे- नियोजन, संचार लोक सम्बन्ध, प्रबन्ध, व्यवसायिक तथा स्टॉफ संगठन आदि को भी प्रभावित करता है। विद्वान प्रशासनिक ब्यूरो अर्थात् सरकारी विभाग को एक प्रकार का बाजार ही मानते हैं, जिसमें भाग लेने वाले निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने का अधिक से अधिक प्रयास करते हैं। इसके बदले में लोक प्रशासन अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। विकसित हो या विकासशील

सभी प्रकार के देशों में लोक प्रशासन लाइसेंसों आदि कुछ परिस्थितियों में वस्तुओं के मूल्यों को निर्धारित करके एकाधिकारों को रोकने, आयात-निर्यात को नियन्त्रित करने आदि तरीकों से अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करता है। आजकल अर्थव्यवस्था, प्रशासन तथा समाज के अन्तर्सम्बन्धों के क्रम में सकल राष्ट्रीय मुख की नई अवधारणा भी जन्म ले रही है। यह अवधारणा यह मान कर चलती है कि विकासशील राष्ट्र विश्व की प्रतिस्पर्द्धा के कारण अपनी सांस्कृतिक पहचान तथा आर्थिक सुख खोते जा रहे हैं। अतः राष्ट्रीय आर्थिक विकास, की प्रक्रिया में उन आध्यात्मिक मूल्यों का लोप न हो, जो मानव सभ्यता के अभिन्न तत्व है। पिछले दशकों से यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण रूप से उठ रहा है कि पश्चिमी मॉडल पर आधिारित विकास कार्यक्रम विकासशील राष्ट्रों की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। अतः इन देशों की अर्थव्यवस्था को स्थानीय कारकों एवं विशेषताओं के आधार पर पुर्नसंचित किया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध किससे है?
2. लोक प्रशासन किस प्रकार का विज्ञान है?
3. ''लोक प्रशासन पर बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है'' यह मान्यता किस उपागम से सम्बन्धित है?

9.7 सारांश

इस अध्याय के द्वारा आप ये अवश्य समझ गये होंगे कि लोक प्रशासन एक मानवीय क्रिया है, इसलिये इस पर पर्यावरण का व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का निर्धारण बाह्य परिस्थितियों द्वारा होता है। लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की यह मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक अवस्था की सम्पूर्ण जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। जो प्रशासनिक संस्थाऐं किसी एक देश में सफलतापूर्वक काम करती हैं, उन्हें दूसरे देशों में अपनाने के प्रयास किये जाते हैं, लेकिन उस प्रशासनिक व्यवस्था को दूसरे देशों में अपनाये जाने के पूर्व दोनों के पर्यावरण का सूक्ष्म अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो जाता है। परिवेश सम्बन्धी तत्व न सिर्फ समाज में प्रभावशाली परिवर्तन लाते हैं, बल्कि पर्यावरण सम्बन्धी तत्व प्रशासन और उसके कार्यक्रमों को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक "The Ecology of Public Administration" में लोक प्रशासन और पर्यावरण के मध्य परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयत्न किया था। प्रशासन और पर्यावरण एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और इस प्रक्रिया की गतिशीलता की समझ प्रशासन को समझने के लिये आवश्यक हैं। इस समझ को परिस्थितिकी दृष्टिकोण का नाम दिया गया। रिग्स ने ही अपने 'साला मॉडल' में बताया था कि लोक प्रशासन पर सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के प्रति निम्न अधिकारियों के दृष्टिकोण आदि पर समाज की संस्कृति और मूल्यों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। रिग्स ने ही ये भी कहा कि किसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, वर्ग, जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास, आदर्श आदि पर आधारित होता है। वर्तमान प्रशासन का संचालन केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं, सामाजिक न्याय के आधार पर होता है।

प्रशासन और राजनीतिक परिवेश का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता है। चूँकि लोक प्रशासन की जड़े राजनीति में निहित होती है। अतः राजनीतिक परिवेश में किसी तरह के परिवर्तन का प्रभाव प्रशासनिक संरचनाओं पर पड़ता है।

लोक प्रशासन पर आर्थिक परिवेश के प्रभाव के सम्बन्ध में भी ये सत्य है कि, किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति वहाँ के प्रशासनिक स्वरूप, संगठन और कार्यों को प्रभावित करती है। किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिये प्रशासन में सुधार आवश्यक होता है। इसलिये प्रशासनिक प्रक्रिया को आर्थिक विकास की आवश्यकता होती है।

9.8 शब्दावली

परिवेश- परिधि, घेरा, परिवर्धित- जो अच्छी तरह बढ़ा हुआ हो या बढ़ाया गया हो, सामन्जस्य- तालमेल, अनुकूलता, मेल, प्रतिरोपित- जो (फिर से) रोपा गया हो, जो पुनः लगाया गया हो, संकीर्णताऐं- अनुदारता, व्याधिग्रस्त- बुराईयों से ग्रस्त।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं, प्रशासनिक नियमों व प्रशासनिक संस्कृति से है, **2.** सामाजिक विज्ञान, **3.** परिस्थितिकी उपागम

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0, पब्लिशर्स, जयपुर- 2013

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एम0पी0शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद- 2015
2. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002, 2003
4. टी0एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च प्रकाशन, सामाजिक विज्ञान, दिल्ली- 1978

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अन्तर्गत पर्यावरण का क्या महत्व है? लोक प्रशासन और पर्यावरण के सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।
2. सामाजिक, आर्थिक पर्यावरण, प्रशासनिक प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करता है? व्याख्या कीजिये।
3. लोक प्रशासन को सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण कैसे प्रभावित करता है? विवेचना कीजिये।

इकाई-10 लोक प्रशासन पर नियंत्रण- विधायी नियंत्रण, कार्यकारी नियंत्रण, न्यायिक नियंत्रण

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 लोक प्रशासन पर विधायी नियंत्रण
    10.2.1 विधायिका और लोक प्रशासन का सम्बन्ध
    10.2.2 विधायी नियंत्रण की आवश्यकता
    10.2.3 विधायी नियंत्रण के साधन
    10.2.4 विधायी नियंत्रण की सीमाऐं
10.3 लोक प्रशासन पर कार्यकारी नियंत्रण
10.4 लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण
    10.4.1 न्यायिक नियंत्रण के तरीके
    10.4.2 क्षेत्र विस्तार
    10.4.3 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

प्रत्येक सकार के तीन अंग होते हैं- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। विधायिका का कार्य कानून का निर्माण करना, तथा कार्यपालिका का कार्य उस कानून को लागू करना होता है। आज दुनिया के अधिकतर देशों में लोकतंत्र किसी ना किसी रूप में विद्यमान है, जिसमें विधायिकाएं जनता के प्रतिनिधियों की संस्थाएं होती हैं। विधायिका तथा कार्यपालिका के सम्बन्ध के आधार पर मुख्यतः दो प्रकार की शासन प्रणालियाँ देखने को मिलती हैं- संसदात्मक तथा अध्यक्षात्मक। संसदात्मक शासन प्रणाली में कार्यपालिका, विधायिका के प्रति पूर्णरूप से उत्तर दायी होती है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में शक्ति के पृथक्करण के कारण यद्यपि कार्यपालिका, विधायिका से स्वतंत्र रूप में कार्य करती है। तथापि नियंत्रण एवं संतुलन की स्थापना द्वारा किसी न किसी रूप में विधायिका, कार्यपालिका के ऊपर नियंत्रण रखने में सफल हो जाती है। संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक दोनों ही शासन प्रणालियों में न्यायपालिका की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। न्यायपालिका का मुख्य कार्य यह देखना होता है कि विधायिका द्वारा निर्मित तथा कार्यपालिका द्वारा क्रियान्वित कानून, संविधान के अनुरूप हो।

ऐसा न होने पर न्यायपालिका उन्हें अवैध घोषित कर सकती है। इस प्रकार कार्यपालिका तथा विधायिका पर नियंत्रण स्थापित करके न्यायपालिका संविधान तथा जनता के अधिकारों की रक्षा का दायित्व निभाती है।

संसदात्मक शासन प्रणाली में तीन प्रकार की कार्यपालिका होती है- नाम मात्र, वास्तविक और स्थायी। राष्ट्र का अध्यक्ष नाम मात्र का कार्यपालक होता है। जैसे भारत में राष्ट्रपति तथा ब्रिटेन में राजा। कार्यपालिका की समस्त शक्तियाँ उसी में निहित होती है तथा उसी के नाम से प्रयोग की जाती है। लेकिन वास्तव में कार्यपालिका की शक्तियों का प्रयोग मंत्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। इसी कारण उसे वास्तविक कार्यपालिका के नाम से जाना जाता है। नाम मात्र तथा वास्तविक कार्यपालिका का प्रमुख कार्य नीतियों का निर्धारण तथा उन नीतियों के क्रियान्वयन का निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण करना होता है। वास्तविक कार्यपालिका द्वारा निर्मित नीतियों को व्यवहारिक रूप प्रदान करने का कार्य स्थायी कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध कार्यपालिका के इसी रूप में होता है, जिसमें प्रशासनिक संगठनों के समस्त लोक सेवक या जन अधिकारी सम्मिलित होते हैं। स्थायी कार्यपालिका की क्रियाएं विधायिका, नाम मात्र की कार्यपालिका, वास्तविक कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के नियंत्रण का विषय होती है। प्रस्तुत ईकाई में इस नियंत्रण के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोकतांत्रिक देशों में प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- प्रशासन पर विधायी, कार्यकारी तथा न्यायिक नियंत्रण के बारे में विस्तार में जानेंगे।
- प्रशासन पर स्थापित नियंत्रण की सीमाओं के बारे में जानेंगे।

10.2 लोक प्रशासन पर विधायी नियंत्रण

लोक प्रशासन पर विधायी नियंत्रण को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

10.2.1 विधायिका और लोक प्रशासन का सम्बन्ध

विधायिका और लोक प्रशासन के सम्बन्ध को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं-

1. जिन नीतियों के क्रियान्वयन का दायित्व लोक प्रशासन पर होता है उन नीतियों के निर्माण में विधायिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विधायिका की स्वीकृति ही कानून निर्माण का आधार है।
2. विधायिका द्वारा निर्मित नीतियों का क्रियान्वयन किस प्रकार हो रहा है, यह देखना विधायिका का उत्तर दायित्व है। इस दायित्व के निर्वहन के लिए विधायिका द्वारा लोक प्रशासकों के कार्यों का समय-समय पर मूल्याकंन किया जाता है तथा उन्हें आवश्यक निर्देश भी जारी किये जाते हैं।
3. अन्य कानूनों की तरह लोक प्रशासकों के व्यवहार, अधिकार तथा कर्तव्य से सम्बन्धित कानूनों का निर्माण भी विधायिका द्वारा किया जाता है। लोक प्रशासन पर नियंत्रण का यह एक महत्वपूर्ण साधन है। उदाहरण के लिए भारतीय संसद ने यह कानून बनाया है कि पुलिस कर्मचारी अपने संघ का निर्माण नहीं कर सकते।

4. विधायिका लोक धन की संरक्षक के रूप में बजट पर नियंत्रण रखती है। विधायिका की स्वीकृति के बाद ही लोक प्रशासन द्वारा स्वीकृत धन का उपयोग, अपने कार्यों के सम्पादन हेतु किया जा सकता है। इस प्रकार वित्त के माध्यम से विधायिका तथा लोक प्रशासन में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है।
5. कार्यों के अत्यधिक बोझ या तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता के फलस्वरूप कई बार विधायिका को विधायन शक्ति को प्रत्यायोजित करना पड़ता है। यह शक्तियां कार्यपालिका से होते हुए लोक प्रशासन तक पहुँच जाती है, जिसके द्वारा उन शक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

10.2.2 विधायी नियंत्रण की आवश्यकता

लोक प्रशासन पर विधायी नियंत्रण की आवश्यकता निम्न कारणों से पड़ती है-

1. लोकतांत्रिक देशों में सम्प्रभुता अन्तिम रूप में जनता में निवास करती है। इस कारण जनता की प्रतिनिधि संस्था के रूप में विधायिका का यह दायित्व है कि वह लोक प्रशासन को जनहित की दिशा में संचालित करे। अपने इस दायित्व का निर्वहन विधायिका दो प्रकार से कर सकती है- विधेयात्मक रूप में कानून का निर्माण करके तथा निषेधात्मक रूप में लोक प्रशासकों द्वारा शक्ति के दुरूपयोग को रोककर।
2. वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्रान्ति के फलस्वरूप लोगों के जीवन-यापन के तौर-तरीकों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा है। सामाजिक मूल्य भी काफी हद तक परिवर्तित हो चुके हैं। यह देखना विधायिका का दायित्व है कि लोक प्रशासकों का व्यवहार जनता की अपेक्षाओं के विपरीत न हो, अन्यथा जन विद्रोह की संभावना है। इस कारण विधायिका द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण आवश्यक है।
3. लोक कल्याणकारी राज्य की मान्यता के फलस्वरूप लोक प्रशासन के कार्यों में विस्तार हुआ है। इन कार्यों के सम्पादन हेतु लोक प्रशासकों को नये अधिकार भी दिये गये हैं। लोक प्रशासक अपने इन अधिकारों का दुरूपयोग न करें, इसलिए विधायी नियंत्रण की प्रभावशाली व्यवस्था की जाती है। प्रजातंत्र को वास्तविकता प्रदान करने के लिए लोक प्रशासन एक प्रभावशाली साधन है, लेकिन इसे विकृति से बचाने के लिए उस पर विधायी नियंत्रण की आवश्यकता है।
4. लोक प्रशासन को निरंकुश होने से रोकने के लिए भी इस पर नियंत्रण की आवश्यकता होती है। यह निरंकुशता कई रूपों में देखने को मिल सकती है, जैसे- भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, अनुत्तरदायित्व, लालफीताशाही इत्यादि।

10.2.3 विधायी नियंत्रण के साधन

लोक प्रशासन पर विधायिका का नियंत्रण बाह्य नियंत्रण की श्रेणी में आता है। यह प्रशासन को प्रजातंत्रात्मक बनाए रखता है, जिससे जनता के हित सुरक्षित रहते हैं। विधायिका द्वारा यह नियंत्रण प्रायः कार्यपालिका के माध्यम से रखा जाता है। इस कारण यह राजनीतिक होता है। प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए विधायिका द्वारा अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता, वे उसकी कार्यप्रणाली के आवश्यक अंग होते हैं। वे साधन निम्नलिखित हैं-

1. **नीति निर्धारण-** जनता की प्रतिनिधि संस्था के रूप में नीति निर्धारण का कार्य विधायिका द्वारा किया जाता है। विधायिका द्वारा स्थापित सीमाओं के अन्दर रहकर ही प्रशासन द्वारा नीतियों का क्रियान्वयन किया जा सकता है। इस प्रकार से स्थापित नियंत्रण की कुछ सीमाएं भी हैं। विधायन के अत्यधिक बोझ तथा अपेक्षित विशेषज्ञता के अभाव में, अधिकतर मामलों में विधायिका द्वारा कानून निर्माण की प्रक्रिया

में पहल नहीं की जाती, बल्कि कार्यपालिका द्वारा प्रस्तावित विधेयक में कुछ परिवर्तनों तथा संशोधनों के बाद उसे स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है। विधायी प्रत्यायोजन के कारण भी विधायिका का नियंत्रण-क्षेत्र संकुचित हुआ है। संसदात्मक शासन-प्रणाली में तो अधिकांश व्यवस्थापन सरकारी व्यवस्थापन ही होता है।

2. **बजट पर चर्चा-** लोकतांत्रिक देशों की यह विशेषता होती है कि उनमें बिना जनप्रतिनिधियों की स्वीकृति के प्रशासन तनिक भी धन खर्च नहीं कर सकता। जब कार्यपालिका द्वारा विधायिका के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए बजट प्रस्तुत किया जाता है, तब विधायिका के सदस्यों द्वारा बजट के हर एक मद पर विस्तृत चर्चा की जाती है। चर्चा के समय इस बात का भी निरीक्षण किया जा सकता है कि पूर्व में अनुमोदित धन का प्रयोग किस प्रकार किया गया। इस माध्यम से लोक प्रशासन के कार्यों का पुनर्विलोकन किया जाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर आलोचना भी की जाती है। विधायिका द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण का यह एक सशक्त माध्यम है।
3. **राष्ट्रपति का अभिभाषण-** संसद के अधिवेशन के प्रारम्भ में ही राष्ट्रपति द्वारा जो भाषण दिया जाता है, उसमें कई बार लोक सेवाओं के कार्यों तथा उपलब्धियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख किया जाता है। इससे विधायिका को यह अवसर प्राप्त हो जाता है कि वह राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा करते समय लोक सेवकों के कार्यों पर भी चर्चा कर सके। इस प्रकार विधायिका द्वारा लोक प्रशासन पर अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।
4. **प्रश्न काल-** संसद की कार्यवाही का पहला घण्टा प्रश्न काल के नाम से जाना जाता है। इसमें संसद सदस्यों द्वारा मंत्रियों से उनके कार्यों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाते हैं तथा सूचनाऐं मांगी जाती हैं। पूछे जाने वाले प्रश्नों की लिखित सूचना मंत्रियों को पहले से ही उपलब्ध करा दी जाती है। मंत्री वह सूचनाऐं लोक सेवकों से मांगते हैं। इस माध्यम से लोक सेवकों का उत्तर दायित्व, प्रत्यक्ष रूप से मंत्रियों के प्रति तथा अप्रत्यक्ष रूप से विधायिका के प्रति सुनिश्चित किया जाता है। प्रश्नों के उत्तर देने या न देने का अधिकार मंत्रियों के पास होता है, लेकिन जनमत के प्रतिकूल हो जाने के डर से अधिकतर प्रश्नों का उत्तर मंत्रियों द्वारा दे ही दिया जाता है। क्योंकि मंत्रियों को यह पता रहता है कि उनके मंत्रालयों से सम्बन्धित प्रश्न कभी भी संसद में पूछे जा सकते हैं, इसलिए वे प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों पर समुचित निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण रखते हैं। यह लोक प्रशासकों के उत्तर दायित्व को सुनिश्चित करने का सशक्त माध्यम है।
5. **आधे घण्टे की चर्चा-** प्रश्न काल में यदि कोई सदस्य सरकार के उत्तर से संतुष्ट नहीं होता तो वह प्रश्न काल के तुरन्त बाद अध्यक्ष से विचार-विमर्श के लिए आधे घण्टे का समय मांग सकता है और अपनी जिज्ञासा को शांत करने का प्रयास कर सकता है।
6. अल्पकालीन विचार-विमर्श तथा ध्यानाकर्षण प्रस्ताव द्वारा भी संसद सदस्य प्रशासनिक अधिकारियों के क्रियाकलापों को वाद विवाद का विषय बना सकते हैं।
7. **स्थगन प्रस्ताव-** इस प्रस्ताव के माध्यम से संसद सदस्य संसद की कार्यवाही को बीच में ही रोक कर किसी विषय पर बहस प्रारम्भ कर सकते हैं। इस माध्यम से लोक सेवकों द्वारा किये गये अधिकारों के दुरूपयोग तथा अतिक्रमण का मुद्दा भी उठाया जा सकता है। कुछ निष्कर्ष न निकल पाने की स्थिति में भी त्रुटियों के ओर ध्यान तो आकृष्ट हो ही जाता है।

8. **अविश्वास प्रस्ताव-** संसद के हाथ में यह अन्तिम अस्त्र है, जिसके माध्यम से कार्यपालिका पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। यह प्रस्ताव विपक्ष द्वारा संसद में तब लाया जाता तब लाया जाता है, जब कार्यपालिका के विरूद्ध असंतोष अपने चरम पर पहुँच जाता है। यदि यह प्रस्ताव सदन में बहुमत से पारित हो जाता है तो सरकार गिर जाती है। इस प्रकार की स्थिति न आने पाये इसलिए कार्यपालिका, विधायिका को अपने कार्यों से संतुष्ट रखने का प्रयास करती है।
9. **संसदीय समितियां-** विभिन्न समितियों के माध्यम से विधायिका द्वारा प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखा जाता है। इस प्रकार की समितियों का लक्ष्य यह देखना होता है कि प्रशासन के किसी स्तर पर अनियमितता अधिकारों का दुरूपयोग जनहित विरोधी कार्य या लोकधन का अपव्यय तो नहीं हो रहा है। इस प्रकार की कुछ समितियाँ हैं-

    - **जन लेखा समिति-** विरोधी दल का कोई सदस्य ही इस समिति का अध्यक्ष होता है। इस समिति का मुख्य कार्य नियंत्रण और महालेखा परीक्षक की वार्षिक रिपोर्ट की जाँच करना है। इसके साथ-साथ यह समिति भारत सरकार के खर्चों के लिए संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि के उपयोग को प्रदर्शित करने वाले किसी भी लेखा की जाँच कर सकती है। इस समिति ने प्रशासन पर विधायी नियंत्रण में हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
    - **आंकलन समिति-** समिति का कार्य हैं, बजट में सम्मिलित अनुमानों की जाँच करना तथा सार्वजनिक खर्चों में मितव्ययता के उपाय सुझाना। यह कार्य समिति पूरे वित्तीय वर्ष में करती रहती है। यह आवश्यक नहीं कि वह सभी अनुमानों की जाँच करे तथा संसद द्वारा रिपोर्ट के अभाव में भी अनुदानित मांग पारित की जा सकती है।
    - **सार्वजनिक उपक्रम समिति-** इस समिति का कार्य है, सार्वजनिक उपक्रम की रिपोर्टों तथा लेखों की जाँच करना तथा उनके संचालन से सम्बन्धित सुझाव देना।
    - **अधीनस्थ विधायन समिति-** इस समिति का मुख्य कार्य यह देखना है कि कार्यपालिका को संविधान द्वारा या संसद द्वारा प्रदत्त अधिकारों का (नियम, उपनियम, विनियम तथा परिनियम के निर्माण से सम्बन्धित) दुरूपयोग तो नहीं हो रहा है।
    - **आश्वासन समिति-** इस समिति का मुख्य कार्य है, संसद में मंत्रियों द्वारा समय-समय पर दिए जाने वाले आश्वासनों, वचनों एवं प्रतिज्ञाओं की जाँच कर रिपोर्ट प्रस्तुत करना।
    - **विभागीय स्थायी समितियां-** ये समितियां विभिन्न विभागों से जुड़े मामलों की जाँच करती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसदीय शासन प्रणाली में प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक कार्यपालिका तथा अप्रत्यक्ष रूप से स्थायी कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने के लिए विधायिका के पास अनेकों साधन हैं।

अध्यक्षीय शासन प्रणाली में भी प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के कुछ साधन हैं। जिसका प्रमुख उदाहरण अमेरिका है-

- कांग्रेस विभागों, आयोगों, निकायों तथा प्रशासनिक एजेन्सियों का निर्माण करती है तथा इनकी नियमित जाँच के लिए समितियों का गठन करती है।
- केन्द्रीय बजट को कांग्रेस ही स्वीकृति प्रदान करती है। लेखा और लेखा-परीक्षा की जाँच भी करती है।

- राष्ट्रपति द्वारा की गयी संधियों तथा उच्च पदों पर की गयी नियुक्तियों का कांग्रेस द्वारा अनुमोदन अनिवार्य है।
- देशद्रोह अथवा भ्रष्टाचार के आरोप लगने पर कांग्रेस राष्ट्रपति पर महाअभियोग लगा सकती है तथा आरोप साबित होने पर उसे हटा सकती है।

10.2.4 विधायी नियंत्रण की सीमाऐं

वास्तव में प्रशासन पर विधायी नियंत्रण की जो युक्तियां सुझाई गई हैं वे व्यवहारिक कम और सैद्धान्तिक अधिक हैं। विधायी नियंत्रण की सीमाओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में दर्शा सकते हैं-

1. लोककल्याणकारी राज्य की आवश्यकताओं तथा तकनीकी विकास के फलस्वरूप प्रशासन के आकार तथा जटिलता में वृद्धि हुई है, किन्तु इसके ऊपर नियंत्रण स्थापित करने के लिए न तो विधायिका के पास पर्याप्त समय है और न ही आवश्यक विशेषज्ञता। लोक सेवक अपनी शक्ति का दुरूपयोग इतनी कुशलता से करते हैं कि वह विधायिका की पकड़ में नहीं आता।
2. कार्यपालिका को संसद में बहुमत प्राप्त होता है, इसलिए विपक्ष द्वारा लाए गए प्रस्ताव प्रायः पारित नहीं हो पाते। बहुमत के कारण नीति-निर्माण में भी कार्यपालिका की इच्छा ही महत्व रखती है।
3. विधायिका द्वारा कार्यपालिका की आलोचना प्रायः सकारात्मक न होकर राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए होती है।
4. उत्तर दायित्व से बचने के लिए वास्तविक कार्यपालिका के सदस्य प्रायः अपनी गलती को लोक सेवकों के ऊपर आरोपित कर देते हैं। इससे लोकसेवा का मनोबल गिरता है।
5. सार्वजनिक लेखा समिति जैसी वित्तीय समितियां सार्वजनिक व्यय की जाँच तब करती हैं, जब व्यय हो चुका होता है। यह एक प्रकार का सब परीक्षण मात्र है, जो नियंत्रण की सीमा को संकुचित कर देता है।
6. प्रदत्त विधायन के फलस्वरूप संसद की विधायन शक्ति कम हुई है, जबकि लोक प्रशासन की शक्ति में वृद्धि हुई है।
7. लोक प्रशासन पर विधायी नियंत्रण एकपक्षीय होता है, क्योंकि लोक प्रशासकों को अपनी सफाई प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं दिया जाता।
8. प्रशासन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने के लिए राजनीतिक स्थिरता का होना अति आवश्यक है, जबकि भारत जैसे विकासशील देशों को प्रायः राजनीतिक अस्थिरता का सामना करना पड़ता है।
9. प्रशासन की आलोचना करते समय विपक्ष द्वारा सकारात्मक सुझाव भी दिये जाने चाहिए, जिन पर अमल किया जा सके। यही नियंत्रण का सम्यक अर्थ है।
10. अपनी योग्यता एवं अनुभव का दुरूपयोग करके लोक सेवक मंत्रियों को भ्रमित भी कर देते हैं, जिससे विधायिका द्वारा लोक प्रशासन पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण प्रभावहीन हो जाता है।

उपर्युक्त कमियों के बाद भी हमें यह मानना होगा कि यदि प्रशासन पर विधायिका का नियंत्रण न होता तो स्थिति और भी गम्भीर हो सकती थी।

10.3 लोक प्रशासन पर कार्यकारी नियंत्रण

प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण को हम आन्तरिक नियंत्रण की श्रेणी में रखते हैं, क्योंकि इसमें वास्तविक कार्यपालिका द्वारा स्थायी कार्यपालिका पर नियंत्रण रखा जाता है। अमेरिका में यह नियंत्रण राष्ट्रपति एवं उसके सचिवों द्वारा तथा भारत एवं ब्रिटेन में यह नियंत्रण मंत्रिमण्डल द्वारा रखा जाता है। संसदात्मक शासन प्रणाली में मंत्रिपरिषदीय उत्तर दायित्व के फलस्वरूप मंत्री अपने विभागीय अधिकारियों पर नियंत्रण रखते हैं। प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण परिपूर्ण, स्थायी, प्रेरक, दोषनिवारक तथा निदेशात्मक होता है। कार्यकारी नियंत्रण के साधन निम्नलिखित हैं -

1. **राजनीतिक निदेशन-** नीतियों को लागू करने का दायित्व कार्यपालिका का होता है। इसके लिए राजनीतिक कार्यपालिका, स्थायी कार्यपालिका को निर्देशित करती है। लेखा परीक्षण, निरीक्षण, पर्यवेक्षण तथा समन्वय के माध्यम से मंत्रिगण अपने-अपने विभाग के प्रशासनिक अधिकारियों पर नियंत्रण रखते हैं, क्योंकि अधिकारी सीधे तौर पर मंत्रियों के प्रति उत्तर दायी होते हैं, इसलिए यह लोक प्रशासन पर नियंत्रण का एक सशक्त माध्यम है। ध्यान देने वाली बात यह है कि इस प्रकार के नियंत्रण की प्रभावशीलता सम्बन्धित मंत्री के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। योग्य मंत्री अधिक प्रभावशाली नियंत्रण रख पाने की स्थिति में रहते हैं।
2. **बजट प्रणाली-** विभिन्न विभागों की आवश्यकताओं के अनुरूप बजट तैयार करके उसे संसद से पारित कराना, कार्यपालिका का एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस माध्यम से कार्यपालिका विभिन्न विभागों की गतिविधियों को नियंत्रित करती है, क्योंकि बिना वित्त की उपलब्धता के कोई कार्य किया ही नहीं जा सकता, इसलिए बजट के माध्यम से कार्यपालिका प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण रख सकती है।
3. **नियुक्ति एवं निष्कासन-** कार्यपालिका के प्रशासन पर नियंत्रण का यह सबसे सशक्त माध्यम है। भारत में उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति में मंत्रीमण्डल की निर्णायक भूमिका होती है और इनमें से कई अधिकारियों को कार्यपालिका अपनी इच्छा से निष्कासित भी कर सकती है। अमेरिका में उच्च अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट की स्वीकृति के बाद की जाती है, लेकिन उनके निष्कासन का अधिकार राष्ट्रपति को होता है।
4. **प्रदत्त विधि निर्माण-** संसद द्वारा कानूनों की रूपरेखा तैयार की जाती है तथा विवरण भरने का अधिकार कार्यपालिका को दे दिया जाता है। नियमों, उपनियमों, इत्यादि के निर्माण के माध्यम से कार्यपालिका, प्रशासन के ऊपर नियंत्रण रखती है।
5. **अध्यादेश-** संसदीय अधिवेशनों की मध्यावधि में आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी किया जाता है। यह अधिनियम की तरह ही प्रभावशाली होता है। इससे कार्यपालिका द्वारा प्रशासन की गतिविधियों को नियंत्रित किया जाता है।
6. **लोक सेवा संहिता-** लोक सेवा संहिता के निर्माण में कार्यपालिका की अहम भूमिका होती है। इसमें वे नियम होते हैं जो प्रशासकों के सार्वजनिक आचरण को नियंत्रित करते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य प्रशासकों को अनुशासित रखना तथा उन्हें जनहित की ओर प्रेरित करना होता है। भारत में ऐसे कुछ महत्वपूर्ण नियम है-
    - अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954

- केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियम, 1955
- रेलवे सेवा (आचरण) नियम, 1956

7. **एजेंसियां-** मंत्रिमण्डलीय सचिवालय तथा प्रधानमंत्री कार्यालय जैसी एजेन्सियों द्वारा भी कार्यपालिका, प्रशासन पर नियंत्रण रखा जाता है। आज-कल इन एजेन्सियों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गई है।

उपर्युक्त साधनों का प्रयोग कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण रखने के लिए किया जाता है। परन्तु इन साधनों की प्रभावशीलता काफी हद तक मंत्री एवं सचिव के सम्बन्ध पर निर्भर करती है। मंत्रियों एवं सचिवों के बीच विवाद के बिन्दु निम्नवत हैं-

1. एक-दूसरे की भूमिका में हस्तक्षेप के कारण विवाद उत्पन्न होते हैं।
2. स्थायी कार्यपालिका अर्थात लोक प्रशासकों का दृष्टिकोण, मंत्रियों की तुलना में अधिक व्यापक तथा दीर्घकालिक होता है।
3. कार्यक्रमों का निर्धारण करते समय जहाँ एक ओर प्रशासक कार्यक्रमों की तार्किकता और एकरूपता पर बल देते हैं, वहीं दूसरी ओर मंत्रीगण, कार्यक्रमों की लोकप्रियता पर बल देते हैं।
4. मंत्री एवं सचिव की सामाजिक एवं सांस्कृति पृष्ठभूमि में अन्तर होने पर भी दोनों की सोच में अन्तर देखने को मिलता है।

मंत्रियों एवं सचिवों को यह समझना चाहिये कि वे एक-दूसरे के सहकर्मी हैं तथा आपसी सहयोग के माध्यम से ही दोनों कोई सार्थक कार्य कर सकते हैं। प्रत्येक मंत्री को यह समझना चाहिये कि सचिव उसका अधीनस्थ नहीं है। वहीं हर सचिव को यह समझना चाहिये कि मंत्री उसका उच्च अधिकारी है। ऐसी भावना रखने से ही तालमेल सम्भव है। इस प्रकार कार्यकारी नियंत्रण को स्थापित करना भले ही कठिन हो, परन्तु इसका होना परमावश्यक है।

10.4 लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण बाह्य नियंत्रण की श्रेणी के अन्तर्गत आता है। लोकतांत्रिक देशों में नागरिकों के अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं की रक्षा का दायित्व न्यायपालिका के ऊपर होता है। इस दायित्व के निर्वहन के लिए न्यायपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण रखा जाता है। जिससे प्रशासन अपनी शक्तियों का दुरूपयोग न कर सके। लेकिन न्यायपालिका की सहायता कुछ विशेष परिस्थितियों में ही प्राप्त की जा सकती है। प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए न्यायपालिका के पास अनेक साधन होते हैं, जिनके प्रयोग की शक्ति उसे कानून से प्राप्त होती है।

10.4.1 न्यायिक नियंत्रण के तरीके

न्यायिक नियंत्रण के तरीके निम्नलिखित हैं-

1. **कार्यपालिका के कार्यों को असंवैधानिक घोषित करना-** विधायिका द्वारा कार्यपालिका को व्यवस्थापन की कुछ शक्तियाँ प्रत्यायोजित कर दी जाती हैं। इस प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग करते हुये कार्यपालिका द्वारा किया गया कोई भी व्यवस्थापन, व्यवस्थापिका के अवसानकाल में जारी किया गया कोई भी अध्यादेश या अन्य कोई निर्णय यदि संविधान के अनुकूल नहीं है तो न्यायपालिका द्वारा उसे अवैध घोषित करके निरस्त किया जा सकता है। प्रत्यायोजन के सन्दर्भ में न्यायपालिका को यह निर्धारित करने का भी अधिकार होता है कि प्रत्यायोजन के लिए कानूनी सत्ता थी अथवा नहीं तथा किया गया

व्यवस्थापन प्रत्यायोजित सीमा के अन्तर्गत आता है या नहीं। इस प्रकार के निर्धारण के लिए न्यायपालिका द्वारा कुछ मापदण्ड भी स्थापित किये गए हैं।

2. **सरकार विरोधी अभियोग-** भारत में केन्द्र या किसी राज्य के द्वारा अथवा उसके विरूद्ध अभियोग लगाया जा सकता है। जिन परिस्थितियों में ऐसा किया जायेगा उनका निर्धारण केन्द्र अथवा राज्य की व्यवस्थापिकाओं द्वारा किया जाएगा। ऐसे में अंतिम रूप में न्यायालय का निर्णय ही मान्य होता है।
यदि किसी भी अधिकारी द्वारा किसी नागरिक के अधिकारों का हनन हो रहा हो तो वह नागरिक न्यायालय की शरण ग्रहण कर सकता है। ऐसे में अधिकारी के विरूद्ध नागरिक को अधिकार दिलाने का दायित्व न्यायपालिका का होता है। राष्ट्रपति तथा न्यायाधीश जैसे उच्च अधिकारियों को केवल व्यवस्थापिका द्वारा महाभियोग के माध्यम से ही उनके पद से हटाया जा सकता है। भारत में अन्य सार्वजनिक अधिकारियों को अन्य नागरिकों की भांति ही कानून के अधीन रखा गया है।
3. **असाधारण उपचार-** प्रशासन द्वारा शक्ति के दुरूपयोग की स्थिति में न्यायपालिका द्वारा कुछ लेख या समादेश जारी किये जाते हैं। भारत में ऐसे पांच लेख उच्च तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा नागरिक अधिकारों के हनन को रोकने के लिए जारी किये जा सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं-

    - **बंदी प्रत्यक्षीकरण-** यह लेख उस व्यक्ति को जारी किया जाता है, जिसने किसी अन्य व्यक्ति को बंदी बना रखा हो। इसका शाब्दिक अर्थ होता है- 'सशरीर प्रस्तुत करना।' यह लेख बंदी व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए जारी किया जाता है। यदि बंदी बनाया जाना अवैधानिक पाया गया तो न्यायालय उस व्यक्ति की रिहाई का आदेश दे सकता है। नागरिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने का यह सबसे सशक्त माध्यम है।
    - **परमादेश-** यह लेख सरकारी अधिकारियों को जारी किया जाता है। इसके रूप में सरकारी अधिकारी को अपने उन कर्तव्यों का पालन करने का आदेश दिया जाता है, जिसका निर्वहन उसने न किया हो।
    - **निषेधाज्ञा-** यह लेख उच्चतर न्यायालय द्वारा निचले न्यायालय को जारी किया जाता है, जब निचला न्यायालय अपने अधिकार-क्षेत्र का अतिक्रमण करता है। यह लेख केवल न्यायिक एवं अर्द्धन्यायिक अधिकारियों को जारी किया जा सकता है।
    - **उत्प्रेषण-** यह लेख उच्चतर न्यायालय द्वारा निचले न्यायालय को जारी किया जाता है। इसके माध्यम से उच्चतर न्यायालय, निचले न्यायालय से किसी मामले की कार्यवाही के अभिलेखों की मांग करता है, जिससे उस कार्यवाही की वैधानिकता निर्धारित की जा सके तथा मामले का परिपूर्ण ढंग से निपटारा किया जा सके। यह लेख निवारक और उपचारात्मक दोनों है।
    - **अधिकार पृच्छा-** इस लेख के द्वारा न्यायालय उस दावे की वैधता के सम्बन्ध में प्रश्न करता है, जिसे कोई पक्ष किसी पद या विशेषाधिकार के प्रति करता है।

उपर्युक्त पांच लेखों के अलावा एक लेख और होता है- निषेधाज्ञा, किसी काम को करने या न करने के लिए जारी किया जाने वाला लेख।

10.4.2 क्षेत्र विस्तार

प्रशासनिक कार्यों में न्यायपालिका निम्न परिस्थितियों में ही हस्तक्षेप कर सकती है-

1. जब प्रशासक अधिकार के बिना या अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करता है (प्राधिकार की अति)।
2. जब प्रशासक कानून की गलत व्याख्या करता है (प्राधिकार की भ्रांति)।
3. जब प्रशासक तथ्यों की खोज में भूल करें।
4. जब प्रशासक प्राधिकार का प्रयोग किसी को क्षति पहुँचाने के लिए करें।
5. जब प्रशासक निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं करता।

10.4.3 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं

न्यायिक नियंत्रण की कुछ सीमाऐं निम्नलिखित हैं-

1. न्यायपालिका स्वतः तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकती, जब तक न्याय की मांग न की जाये। जनहित याचिका के चलन से इस स्थिति में परिवर्तन आया है।
2. न्याय प्रक्रिया जटिल एवं खर्चीली तथा न्यायालयों पर कार्य का अत्यधिक बोझ होने के कारण न्याय मिलने में समस्या। सुझाव-लोक अदालतों का गठन, कानूनी सहायता, आदि।
3. न्यायपालिका तथा प्रशासन के दृष्टिकोणों में अन्तर के कारण कई गैर-जरूरी विवाद।
4. संसद के विशेष अधिवेशन के माध्यम से न्यायिक समीक्षा के अधिकार को सीमित किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. विधायिका का मुख्य कार्य क्या है?
2. संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तर दायी होती है। सत्य/असत्य
3. संविधान की रक्षा का दायित्व न्यायपालिका पर होता है। सत्य/असत्य
4. निषेधाज्ञा किसी भी प्रशासनिक अधिकारी को जारी की जा सकती है। सत्य/असत्य
5. सरकार के विरूद्ध भी अभियोग लगाया जा सकता है। सत्य/असत्य

10.5 सारांश

प्रशासन को प्राप्त शक्तियों एवं अधिकारों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रशासन पर पर्याप्त नियंत्रण भी स्थापित किया जाए। लोकतांत्रिक देशों में क्योंकि शक्ति अंतिम रूप में जनता में निवास करती है, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित कर उसे अपनी शक्ति के दुरूपयोग से रोका जाए, ताकि जनता की स्वतंत्रता एवं सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके।

सरकार के तीनों अंगों- विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। इस प्रकार के नियंत्रण की प्रकृति विभिन्न शासन प्रणालियों में भिन्न प्रकार की होती है। प्रशासन पर विधायिका एवं न्यायपालिका का नियंत्रण बाह्य नियंत्रण की श्रेणी में आता है, जिसका मुख्य उद्देश्य जनता की स्वतंत्रता तथा सुरक्षा को सुनिश्चित करना होता है। प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण आंतरिक नियंत्रण की श्रेणी में आता है, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रशासन में अनुशासन तथा कार्यकुशलता को सुनिश्चित करना होता है।

प्रशासन पर स्थापित नियंत्रण कभी भी पूर्ण नहीं होता। इसकी अनेक सीमाऐं होती हैं। यही कारण है कि इतने नियंत्रण के बाद भी प्रशासक अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करने में सक्षम हो जाते हैं। नियंत्रण स्थापित करने वाले

निकायों की अपनी खुद की खामियाँ भी प्रशासन पर नियंत्रण को कमजोर बनाती हैं। सचरित्र व्यक्ति ही खुद नियंत्रण में रह सकते हैं तथा दूसरों को भी नियंत्रण में रख सकते हैं।

10.6 शब्दावली

न्यायिक पुनरीक्षण- न्यायपालिका द्वारा नीतियों की संवैधानिकता का निर्धारण,
सम्प्रभुता- सर्वोच्च शक्ति, प्रत्यायोजन- सत्ता का हस्तांतरण,
लालफीताशाही- प्रशासनिक कार्यों में अनावश्यक विलम्ब,
अधीनस्थ- पदानुक्रम में नीचे का अधिकारी।

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कानून निर्माण, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** असत्य, **5.** सत्य

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, प्रभुदत्त एवं शर्मा, हरिश्चन्द्र (1999), लोक प्रशासन: सिद्धान्त एवं व्यवहार, जयपुर: कालेज बुक डिपो।
2. लक्ष्मीकान्त, एम0 (2010), लोक प्रशासन, नई दिल्ली: टाटा मॅक्ग्राहिल।

10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी, अम्रेश्वर एवं माहेश्वरी, श्रीराम (2002), लोक प्रशासन, आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
2. फाड़िया, बी0 एल0 (2008), लोक प्रशासन, आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन।

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोकतांत्रिक देशों में प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये।
2. प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के तरीकों का विस्तार से वर्णन कीजिये।
3. प्रशासन पर कार्यकारी नियंत्रण के महत्व पर प्रकाश डालिये।
4. न्यायिक सक्रियता के सन्दर्भ में प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 11 प्रबन्ध, सहभागी प्रबन्ध और अच्छे प्रबन्ध की कसौटियाँ

इकाई की सरंचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 प्रबन्ध
    11.2.1 प्रबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा
    11.2.2 प्रबन्ध की विशेषताऐं
    11.2.3 प्रबन्ध के स्तर
    11.2.4 प्रबन्ध के क्षेत्र
    11.2.5 भारत के प्रशासनिक संगठनों में प्रबन्ध के बढते महत्व के कारण
11.3 प्रबन्ध का स्वरूप
    11.3.1 क्या प्रबन्ध एक कला है?
        11.3.1.1 प्रबन्ध की कला के रूप में कसौटी
    11.3.2 क्या प्रबन्ध एक विज्ञान है?
        11.3.2.1 प्रबन्ध का विज्ञान के रूप में कसौटी
        11.3.2.2 प्रबन्ध विज्ञान को एक शुद्ध विज्ञान ना मानने के कारण
    11.3.3 प्रबन्ध कला एवं विज्ञान दोनों रूपों में
11.4 प्रबन्ध के अन्य स्वरूप
11.5 सहभागी प्रबन्ध
    11.5.1 सहभागी प्रबन्ध की परिभाषाऐं
    11.5.2 सहभागी प्रबन्ध की विशेषताऐं
    11.5.3 सहभागी प्रबन्ध की अवधारणा की मान्यताऐं
    11.5.4 सहभागी प्रबन्ध के उद्देश्य
11.6 अच्छे प्रबन्ध की कसौटियाँ
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

प्रबन्ध एक ऐसी रणनीति है, जिसके सुव्यवस्थित क्रियान्यवयन से विकासशील होने की अवधारणा को विकसित अवधारणा में परिवर्तित किया जा सकता है। भारत में प्रबन्ध को कला एवं विज्ञान दोनों ही दृष्टिकोणो से मान्यता

दी जाती है। ऐसी मान्यता है कि प्रबन्ध प्रशासन के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक कारकों में अनुकूल समन्वय स्थापित करता है, जिससे कार्य-निष्पादन उचित परिणाम दे सकें। प्रस्तुत इकाई प्रबन्ध की इस आवधारणा को विस्तार से प्रस्तुत करेगी, साथ ही सहभागी प्रबन्ध एवं सुव्यवस्थित प्रबन्ध की विभिन्न कसौटियों को भी प्रस्तुत करने का प्रयास करेगी।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रबन्ध के अर्थ एवं परिभाषा को जान पायेंगे।
- सहभागी प्रबन्ध की विवेचना कर पायेंगे।
- प्रभावी एवं सुव्यावस्थित प्रबन्ध की विभिन्न कसौटियों को आत्मसात कर पायेंगे।

11.2 प्रबन्ध

प्रबन्ध विचारधारा का उद्-गम कब और कहाँ से हुआ? इस विषय में स्पष्ट रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है। बदलती हुई सभ्यता तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते विकास के अनुसार ही वांछित उत्पादन की प्राप्ति हेतु एक प्रबन्ध एवं परिणामोन्खी प्रबन्ध की आवश्यकता होती है, जिससे कर्मचारियों को सक्रिय योगदान हेतु प्रेरित करते हुए अधिक से अधिक परिणाम प्राप्त किये जा सके। आजकल प्रौद्योगिकी के साथ-साथ उद्योगों में मानवीय तत्वों पर भी अधिक ध्यान दिया जा रहा है। अतः प्रबन्ध सम्बन्धी अवधारणा कोई नयी अवधारणा नहीं है। प्रबन्ध विचारधारा के इतिहास को तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहला- आदिकाल, दूसरा- मध्यकाल तथा और तीसरा- आधुनिक काल।

11.2.1 प्रबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा

सामान्य तौर पर औद्योगिक प्रतिष्ठानों में उत्पादन हेतु विभिन्न क्रियाओं को सफलतापूर्वक सम्पादित कराने की प्रक्रिया को ही प्रबन्ध कहते हैं, जिसके माध्यम से प्रतिष्ठान को सुव्यवस्थित, संगठित तथा क्रमबद्ध किया जाता है। इसके द्वारा आवश्यक गतिविधियों का नियोजन, समन्यवन तथा नियन्त्रण करके उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। प्रबन्ध कामगार, पदार्थ तथा मशीनों आदि का कुशलतापूर्वक सदुपयोग करते हुए उत्पादन में अधिकता हेतु निरन्तर कार्यरत रहता है।

एक सफल प्रबन्ध हेतु कामगार, पदार्थ तथा मशीनों के उपयोग का सही नियोजन, उचित नियन्त्रण व सन्तुलित समन्वय में रखने का प्रयास करते रहना चाहिये, ताकि पदार्थ व श्रम-समय की बचत करते हुए लागत में कमी लायी जा सके। श्रमिकों की दक्षता में वृद्धि करने हेतु आवश्यक मानवीय तत्वों पर अधिक बल देना चाहिए। उन्हें औसत से अधिक उत्पादन देने पर आर्थिक लाभ पहुँचाकर और अधिक दक्षतापूर्वक कार्य करने के लिये प्रेरित करते रहना चाहिये, जिससे उनमें उद्योगों के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो। आज प्रबन्ध को अनेक अर्थों में लिया जा रहा है, जैसे-

1. हेनरी फयोल, प्रबन्ध को प्रक्रिया के रूप में मान्यता देते हैं।
2. एप्पले प्रबन्ध को मानव विकास के अर्थों से सजाते हैं।

3. रांस तथा मूरे प्रबन्ध को निर्णयन के रूप में मान्यता देते हैं।
4. टेलर प्रबन्ध को उत्पादकता बढ़ाने की क्रिया के रूप में स्थापित करते हैं।
5. कला एवं विज्ञान के रूप में किम्बाल एवं किम्बाल, पीटर ड्रकर, आदि विद्वान इसे मान्य करते है।
6. कुछ लोग प्रबन्ध को पेशे के रूप में मानकर चल रहे हैं।
7. न्यूमेन एवं समर प्रबन्ध को व्यक्तियों का विकास वाली नयी विचारधारा को मानते हैं।

इस प्रकार प्रबन्ध मूलभूत रूप से मानव से सम्बन्धित होने के कारण एक सामाजिक विज्ञान है। अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह प्रबन्ध की भी ऐसी कोई निश्चित परिभाषा देना कठिन है जो कि सर्वमान्य हो। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न प्रबन्ध विद्वानों ने प्रबन्ध की विभिन्न परिभाषाऐं स्थापित की हैं। प्रबन्ध की इन परिभाषाओं को समझने तथा विश्लेषित करने का प्रयास करें-

पीटर एफ0 ड्रकर के अनुसार, ''प्रबन्ध प्रत्येक व्यवसाय का गत्यात्मक तथा जीवन प्रदायिनी अवयव है। इसके नेतृत्व के अभाव में उत्पत्ति के साधन केवल साधन-मात्र रह जाते हैं, कभी भी उत्पादन नहीं बन पाते हैं।''

अमरीकी प्रबन्ध समिति के अनुसार "प्रबन्ध मानवीय तथा भौतिक साधनों को क्रियाशील संगठनों की इकाइयों में लगाता है, जिसका उद्देश्य व्यक्तियों को संतोष प्रदान करना तथा सेवकों में नैतिक स्तर तथा कार्य पूरा करने का उत्तर दायित्व उत्पन्न करना है।"

प्रोफेसर एडविन एम0 रोबिन्सन के अनुसार, ''कोई भी व्यवसाय स्वयं नहीं चल सकता, चाहे वह किसी स्थिति में ही क्यों न हो, उसके लिए इसे नियमित उद्दीपन की आवश्यकता पड़ती है।''

टेलर के अनुसार, प्रबन्ध के मूल सिद्धान्त समस्त मानवीय क्रियाओं पर सरल व्यक्तिगत कार्यों से लेकर महान नियमों के कार्यों तक लागू होते हैं।

हेनरी फेयोल के अनुसार, प्रबन्ध एक सार्वभौमिक क्रिया है, जो प्रत्येक संस्था में चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक, धार्मिक हो या राजनीतिक, पारिवारिक हो या व्यावसयिक, समान रूप से सम्पन्न की जाती है।

एफ0 डब्ल्यू0 टेलर के अनुसार, ''प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप क्या करना चाहते हैं? तत्पश्चात यह देखना कि वह सर्वोत्तम एवं मितव्ययितापूर्ण सम्पन्न किया जाता है।''

किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार, प्रबन्ध कार्य निष्पादन की सर्वोत्तम एवं मितव्ययितापूर्ण विधि की खोज करता है। इसके अनुसार प्रबन्ध का प्रमुख कार्य उत्पादन के साधनों का कुशलतम उपयोग करते हुए न्यूनतम लागत पर अधिकाधिक कार्य कराना है।

विलियम एफ0 ग्लूक के अनुसार, ''उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय एवं भौतिक साधनों का प्रभावी उपयोग ही प्रबन्ध है।''

प्रो0 जॉन एफ0 मीके शब्दों में, ''प्रबन्ध न्यूनतम प्रयास द्वारा अधिकतम परिणाम प्राप्त करने की कला है, जिससे नियोक्ता एवं कर्मचारी दोनों के लिए अधिकतम समृद्धि एवं खुशहाली प्राप्त की जा सके तथा जनता को सर्वश्रेष्ठ सम्भव सेवा प्रदान की जा सके।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रबन्ध एक कलात्मक एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो संस्था के निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय सामूहिक प्रयासों का नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियंत्रण के वातावरण की अपेक्षाओं के अनुरूप दक्षतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यवसाय के कुशल संचालन तथा उत्पत्ति के भौतिक एवं मानवीय साधनों के सर्वोत्तम उपयोग के लिए स्वस्थ प्रबन्ध अति आवश्यक है। यह एक सतत् प्रक्रिया है, जिसमें निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु

नियोजन, संगठन, नेतृत्व, भर्ती एवं नियंत्रण के द्वारा संस्था के मानवीय एवं भौतिक साधनों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है। वास्तव में यह प्रशासन का हृदय होता है।

11.2.2 प्रबन्ध की विशेषताऐं

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रबन्ध के सम्बन्ध में दी गई उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से इसकी निम्नलिखित विशेषताओं का निरूपण किया जा सकता है। आइये इन्हें क्रमबद्ध ढंग से समझने का प्रयास करें-

1. प्रबन्ध एक ऐसी क्रिया है, जो कि मनुष्य द्वारा सम्पन्न की जाती है। यह एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है।
2. प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है, जो आम आदमी से सम्बन्धित होती है।
3. प्रबन्ध के अन्तर्गत एक व्यक्ति विशेष को महत्व न देकर समूह को महत्व दिया जाता है। अतः प्रबन्ध एक समूहिक प्रक्रिया है ।
4. प्रबन्ध में कला तथा विज्ञान दोनों की विशेषताएँ पायी जाती हैं।
5. प्रबन्ध एक पेशा है, क्योंकि इसका भी अपना एक शास्त्र है, जिसके सिद्धान्त, नीतियाँ एवं नियम हैं। इनका ज्ञान शिक्षण एवं पूर्व प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जाता है तथा प्रबन्धक इस ज्ञान का प्रयोग अपने उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करते हैं।
6. समूह के प्रयासों से संस्था द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्देशित किया जाता है।
7. प्रबन्ध का अस्तित्व अलग होता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत स्वयं कार्य नहीं किया जाता, अपितु दूसरों से कार्य कराया जाता है।
8. प्रबन्ध की आवश्यकता सभी स्तरों पर होती है। यथा उच्चस्तरीय, मध्यस्तरीय व निम्नस्तरीय।
9. प्रबन्धकीय सिद्धान्त तथा कार्य सभी प्रकार के संगठनों में समान रूप से लागू होते हैं।
10. प्रबन्ध को सार्वभौमिक प्रक्रिया इसलिए भी कहा जाता है कि प्रबन्धकीय ज्ञान के सीखने तथा सिखाने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।
11. प्रबन्धक का स्वामी होना अनिवार्य है। पेशेवर प्रबन्ध की स्थिति में प्रबन्धक प्रायः स्वामी नहीं होते।
12. प्रबन्ध की उपस्थिति को उपक्रम के प्रयासों के परिणाम, व्यवस्था, अनुशासन व उत्पादन के रूप में अनुभव किया जा सकता है। अतः यह एक अदृश्य प्रक्रिया है।
13. 'प्रबन्ध, समन्वय प्रबन्ध का सार है' अतः प्रबन्ध को समन्वयकारी क्रिया कहा जा सकता है।
14. यह एक साधारण कला नहीं है। इसके लिए अनुभव, ज्ञान एवं चातुर्य की आवश्यकता होती है, प्रबन्ध का पृथक एवं भिन्न अस्तित्व है।
15. प्रबन्ध क्रिया को सम्पन्न करने के लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता होती है। तकनीकी दृष्टि से निपुण एवं अनुभवी व्यक्ति ही किसी संस्था की व्यवस्था का संचालन कर सकते हैं।
16. प्रबन्ध पारिस्थितिक होता है। यह आन्तरिक तथा बाहरी दोनों ही वातावरण से निरन्तर प्रभावित होता है।
17. प्रबन्ध सृजनात्मक कार्य है, जो अपेक्षित परिणामों को प्राप्त करने के लिए साधन जुटाता है।
18. प्रबन्ध केवल किसी विशिष्ट कार्य, उपक्रम अथवा देश तक सीमित न रहकर सभी उपक्रमों एवं सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। जिसके कारण यह सार्वभौमिक पद्धति है।

11.2.3 प्रबन्ध के स्तर

अभी तक के विवेचन से आप यह अच्छी तरह जान चुके हैं कि प्रबन्ध एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। प्रबन्ध वैज्ञानिकों के अनुसार इसके कई स्तर होते हैं। यथा उच्च, मध्य, निम्न तथा परिचालन स्तर।

उच्च स्तर, उच्च प्रबन्धक के अन्तर्गत बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स, मैनेजिंग डायरेक्टर्स, मुख्य कार्यपालक अधिकारी, मालिक तथा शेयर धारकों को सम्मिलित किया जाता है। उच्च प्रबन्ध हेतु निम्नलिखित कार्य को सम्मिलित किया गया है-

1. संगठन के उद्देश्यों और लक्ष्यों का आपसी सहमति से निर्धारण।
2. उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुरूप दीर्घावधि के लिये नियोजन करना।
3. स्थायी नीतियों का निर्माण कर उनके कार्यान्यवयन का अनुश्रवण करना।
4. संगठन प्रणाली का अभिकल्पन सुनिश्चित करना।
5. समस्त कार्यों के लिये उचित मात्रा की उपलब्धता सुनिश्चित करना।

मध्य स्तर, इसके अन्तर्गत बिक्री-कार्यपालक/प्रबन्धक, उत्पादन कार्यपालक, वित्त कार्यपाल, लेखा कार्यपालक, शाखा प्रबन्धक तथा शोध व विकास कार्यपालक को सम्मिलित किया जाता है। मध्य स्तरीय प्रबन्ध के सदस्यों के लिये निम्नलिखित कार्यों का निर्धारण किया गया है-

1. संगठन के स्थापित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का क्रियान्यवयन करना।
2. निम्नतर प्रबन्ध स्तर के कर्मचारियों का चयन, प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करना।
3. विभिन्न विभागों की स्थापना, कार्यों का विभक्तीकरण एवं नियंत्रण की व्यवस्था करना।
4. कार्यकारी नीतियों एवं लघु अवधि के उद्देश्यों का निर्धारण एवं क्रियान्यवयन सुनिश्चित करना।
5. संगठन को सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा नियमानुसार संचालन की व्यवस्था करना।
6. प्रमुख नीतियों में विभागों के मध्य समन्वयकारी निर्णयों को अन्तिम स्वरूप प्रदान करना।
7. संगठन के लिये समर्पित टीम भावना का निर्माण करना।
8. संगठन के विभिन्न प्रबन्धक स्तरों के मध्य समन्वय स्थापित करना।
9. कर्मचारियों के विकास के लिए प्रशिक्षण आयोजित करना।

निम्न स्तर, प्रबन्ध स्तरीय संरचना के इस भाग में अधीक्षक, मुख्य पर्यवेक्षक, फोरमैन, निरीक्षक आदि, महत्वपूर्ण कार्यकताओं को सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में यह प्रबन्ध का अति महत्वपूर्ण स्तर होता है। विद्वानों ने इस स्तर के लिये निम्नलिखित कार्यों का निर्धारण किया है-

1. कर्मचारियों के अन्तिम कार्य-निष्पादन का पर्यवेक्षण करना।
2. कार्य विधियों तथा प्रक्रियाओं के अनुसार कार्य की गुणात्मक प्रकृति सुनिश्चित कर, प्रक्रियाओं के निरीक्षक कार्य को प्रभावी ढंग से सम्पादन करना।
3. कर्मचारियों के कल्याणार्थ प्रावधानों को करवाना।
4. शीर्ष तथा मध्य स्तरीय प्रबन्ध की योजनाओं और नीतियों का क्रियान्यवयन करना।
5. कर्मचारियों की भावनाओं को शीर्ष तथा मध्य प्रबन्ध तक पहुँचा कर उनके मध्य सेतु का कार्य करना।

उपरोक्त तीनों ही स्तर के पश्चात वह स्तर आता है, जो अन्तिम रूप से कार्यों का निस्पादन कर संस्था के उद्देश्यों को लक्ष्यानुसार पूर्ण कराते हैं। इन्हें परिचालन बल या कर्मचारी समूह के नाम से सम्बोधित किया जाता है। विद्वानों के अनुसार इनके लिये निम्नलिखित प्रकार के कार्यों को आवंटित किया गया है। पहला- मशीनों और उपकरण के

सहयोग से कार्यों का सुव्यवस्थित रूप से अन्तिम निष्पादन, और दूसरा- अन्य नये कामगारों को कार्य की प्रकृति का संक्षिप्त प्रशिक्षण एवं कार्यात्मक वातावरणीय सहयोग।

प्रबन्ध के उपरोक्त स्तरों से सम्बन्धित कार्यों पर दृष्टि डालने से यह तो निश्चित ही समझ में आता है कि प्रबन्ध के कार्यों को क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, इसलिये प्रबन्ध के क्षेत्र का सीमांकन निर्धारण करना अत्यंत कठिन कार्य है, क्योंकि व्यवसाय में हर कदम पर कुशल प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ती है।

11.2.4 प्रबन्ध के क्षेत्र

भारतीय कार्यात्मक पर्यावरण के अन्तर्गत इसके निम्नलिखित क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। इसे समझने का प्रयास करें-

1. **विकास प्रबन्ध-** यह प्रबन्ध का महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत सामग्री, मशीनें, प्रतिक्रियाएं, औद्योगिक प्रक्रियाओं व उपभोक्ता की मांग तथा उत्पादन का सम्बन्ध आदि को सम्मिलित किया जाता है।
2. **कर्मचारी प्रबन्ध-** इस प्रबन्ध के अन्तर्गत श्रम शक्ति का अनुमान, कर्मचारियों का चयन, नियुक्ति, प्रशिक्षण, हस्तान्तरण तथा सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत अच्छे कर्मचारियों की पदोन्नति का ध्यान भी रखा जाता है।
3. **वित्तीय प्रबन्ध-** प्रबन्ध के इस क्षेत्र के अन्तर्गत संगठन के वित्तीय सम्बन्धी मुद्दों पर निर्णय किया जाता है। इसमें आर्थिक पूर्वानुमान, लेखापालन, लागत नियंत्रण, सांख्यिकी नियंत्रण, बजट नियंत्रण, वित्तीय योजना, आय का प्रबन्ध तथा वित्तीय समस्याओं के निर्धारण का कार्य किया जाता है।
4. **उत्पादन प्रबन्ध-** इसके अन्तर्गत संगठन के उत्पादन सम्बन्धी प्रबन्ध को सम्मिलित किया जाता है।
5. **वितरण प्रबन्ध-** इसके अन्तर्गत वस्तु विपणन, अन्वेषण एवं अनुसंधान, मूल्य निर्धारण, आन्तरिक बाजार एवं निर्यात बाजार, विपणन का जोखिम तथा उनकी रोकथाम, विक्रय संवर्द्धन की व्यवस्था आदि को सम्मिलित किया जाता है।
6. **परिवहन प्रबन्ध-** परिवहन भी प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण वर्ग है। इसके अन्तर्गत पैकिंग, गोदामों तथा आवश्यक सामग्रियों के लाने-ले जाने के लिए विभिन्न माध्यमों, यथा- सड़क, रेल, वायु, जल आदि को सम्मिलित किया जाता है।
7. **क्रय प्रबन्ध-** क्रय प्रबन्ध के अन्तर्गत संगठन हेतु आवश्यक सामग्रियों का सस्ती से सस्ती कीमत एवं उच्च गुणवत्ता पर खरीदने, इनका रख-रखाव तथा सामग्री-नियंत्रण आदि को सम्मिलित किया जाता है। इसी क्रम में सामग्रियों के सप्लायर्स से टेण्डर आमंत्रित करना, आदेश देना, अनुबन्ध करना, आदि कार्यों को भी सुव्यवस्थित रूप से किया जाता है।
8. **संस्थापन प्रबन्ध-** प्रबन्ध के इस प्रकार्य के अन्तर्गत भवन, मशीनों, उपकरणों आदि के रख-रखाव का उत्तर दायित्व निभाया जाता है। किसी संगठन में नवाचार का दायित्व भी इसी अनुभाग का होता है।
9. **कार्यालय प्रबन्ध-** यह प्रबन्ध का अन्तिम वर्ग है। इसके अन्तर्गत कार्यालय सम्बन्धी कार्यों का प्रबन्ध किया जाता है। जिसमें सन्देश वाहक उपकरण, अभिलेख व्यवस्था, कार्यालय का सुव्यस्थित संचालन, नियोजन तथा तथा नियन्त्रण आदि को सम्मिलित किया जाता है।

जैसा कि हम विवेचित कर चुके हैं कि दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की क्रिया को ही प्रबन्ध की संज्ञा दी जाती है। दूसरे सरल शब्दों में, प्रबन्ध के अन्तर्गत दूसरे व्यक्तियों से इस प्रकार कार्य कराया जाता है, जिससे उपलब्ध संसाधनों का अधिक से अधिक एवं मितव्ययी उपयोग किया जा सके। जिससे संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने में न्यूनतम लागत के सिद्धान्त का पालन किये जा सके।

प्रबन्ध, प्रत्येक संगठन का गतिशील एवं जीवनदायनी तत्व है। उसके नेतृत्व के अभाव में उपलब्ध संसाधन केवल 'साधन मात्र' ही रह जाते हैं, कभी लक्षित उत्पादन नहीं कर पाते। अतः प्रबन्ध, संगठन की वह जीवनदायिनी शक्ति है इसे वह सुव्यवस्थित करता है, संचालित करता है और नियन्त्रण में रखता है। कुछएक प्रबन्ध वैज्ञानिकों का मत है कि प्रबन्ध एक ऐसी कला है, जिसके द्वारा सुव्यवस्थित ढंग से किसी की नीतियों का निर्धारण एवं क्रियान्यवयन किया जाता है तथा इन नीतियों के अनुरूप ही मानवीय क्रियाओं को निर्देशित एवं नियन्त्रित करके पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

इस प्रकार प्रबन्ध पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिय अन्य व्यक्तियों के कार्यों का मार्ग-दर्शन, नेतृत्व एवं नियन्त्रण करता है। वस्तुतः प्रबन्ध एक कलात्मक एवं वज्ञानिक प्रक्रिया है, जो संस्था के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयासों के नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय, नियन्त्रण अभिप्रेरण एवं निर्णयन से सम्बन्ध रखता है।

11.2.5 भारत के प्रशासनिक संगठनों में प्रबन्ध के बढते महत्व के कारण

भारत में प्रशासनिक संगठनों में प्रबन्ध के बढ़ते हुए महत्व के निम्नलिखित कारणों को क्रमबद्ध किया जाता है। इन्हें समझने का प्रयास करते हैं-

1. गरीबी की समस्या का समाधान कर रोजगार सृजन हेतु।
2. पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करने के लिए, जिससे विकास कार्यों के लिये पर्याप्त पूँजी उपलब्ध कराई जा सके।
3. कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि करने के लिए, जिससे उत्पादकता में गुणात्मक वृद्धि हो सके।
4. श्रम समस्याओं के समाधान तथा मानव संसाधन विकास हेतु।
5. वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के नये आयामो से अपनी जीवन-शैली में नवाचार लाना।
6. नियोजित अर्थव्यवस्था को नियोजित कर अधिकतम 10 प्रतिशत की विकास दर की प्राप्ति।
7. अप्रयुक्त संसाधन के कुशल प्रयोग हेतु।
8. अपने सामाजिक दायित्वों को आत्मसात् कर, समाज के अन्तिम प्राणी का विकास सुनिश्चित कर उसे विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।

उपर्यक्त निर्वचन से यह स्पष्ट है कि भारत में प्रबन्ध का महत्व निरन्तर बढ़ रहा है। प्रबन्ध की रणनीतियों का सुव्यवस्थित एवं प्रभावी प्रयोग से ही भारत अपनी अधिकतम समस्याओं पर सफलता प्राप्त कर सकता हैं। आरम्भिक चरण में, प्रबन्ध केवल नियोक्ता के प्रति ही उत्तर दायी होता था, किन्तु आज यह सम्पूर्ण समाज के प्रति उत्तर दायी है।

भारत में आज भी प्रशासकीय प्रबन्धकों का भारी अभाव है। यही कारण है कि आज पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्यवयन तथा मनेरेगा जैसी योजनाओं में भी प्रबन्ध के विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आज के

युग में प्रबन्ध अपने संगठन से सम्बधित सेवाओं तथा उत्पाद के गुण तथा गुण के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करता हैं।

एक प्रबन्धक को सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाये रखने हेतु निम्नलिखित सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिये। जिससे प्रशासनिक संगठन की कार्यविधियों को सुव्यवस्थित तथा पारदर्शी बनाये रखा जा सकें-

- नीतियों को उद्देश्यों के अनुरूप निर्धारित करना।
- आवश्यकताओं एवं साधनों में सामंजस्य करते हुये वैज्ञानिक नियोजन सुनिश्चित करना।
- आम जनता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कार्य निष्पादन की विधियाँ एवं प्रक्रिया निर्धारित करना।
- कर्मचारियों में कार्य के प्रति सन्तोष, मनोबल एवं प्रतिबद्धता को बढ़ाते हुए उनके कल्याण को सुनिश्चित करना।
- मितव्ययी कार्य-प्रणाली का विकास कर अधिक से अधिक सेवाओं को जनपयोगी बनाना।

11.3 प्रबन्ध का स्वरूप

प्रबन्ध का स्वरूप की जब हम बात करते हैं तो प्रकृति से तात्पर्य यह है कि प्रबन्धन है क्या? क्या यह विज्ञान है या कला? प्रबन्ध को विज्ञान माना जाय या कला। या इसे कला या विज्ञान दोनों माना जाय। आइये इसे समझने का प्रयास करते हैं।

प्रबन्ध एक कला है अथवा विज्ञान, यह एक विवाद का विषय रहा है। किन्तु प्रबन्ध के वर्तमान स्वरूप एवं परिस्थितियों से अब यह निश्चित सा हो गया है कि प्रबन्ध एक कला एवं विज्ञान दोनों ही है। कला एवं विज्ञान के रूप में प्रबन्ध का विवेचन निम्न प्रकार है-

11.3.1 क्या प्रबन्ध एक कला है?

प्रबन्ध एक कला है अथवा नहीं, इस बात की जाँच करने के पूर्व हमें कला का आशय जान लेना चाहिए। कला किसी भी कार्य को सर्वोत्तम ढंग से करने की एक विधि है ताकि निर्धारित लक्ष्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके। थयो हैमेन के अनुसार कला कार्य करने का एक ढंग है, व्यवहार करने की विधि है। जार्ज आर0 टेरी लिखते हैं कि कला का आशय व्यक्तिगत सृजनात्मक शक्ति एवं निष्पादन कौशल से है। चेस्टर आई बर्नार्ड ने कला को व्यावहारिक ज्ञान कहा है। कला की प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित हैं-

1. कला हमें इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ज्ञान एवं चातुर्य का प्रयोग करना बताती है। यह कार्य के क्रियान्वयन पक्ष से सम्बन्ध रखती है।
2. कला व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करती है, जिसे अभ्यास, लगन, परिश्रम व अनुभव द्वारा निखारा जा सकता है।
3. कला व्यक्तिगत पूँजी होती है। यह हस्तांतरण योग्य कौशल नहीं है, क्योंकि जन्मजात योग्यता है।
4. कला में अभ्यास पक्ष महत्वपूर्ण होता है। केवल मात्र सैद्धान्तिक ज्ञान से व्यक्ति कुशल कलाकार नहीं बन सकता। सफलता के लिए निरन्तर अभ्यास आवश्यक है।
5. कला का संचय सम्भव नहीं है।

6. मानवीय उद्यमों में कला सबसे अधिक सृजनात्मक होती है। वह व्यक्ति की कल्पना शक्ति, विवके व दूरदर्शिता का परिणाम है।
7. कला का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता है, किन्तु इसे सीखा जा सकता है।
8. कला एक मानवीय गुण है।
9. कला कार्य के निष्पादन से सम्बन्धित है।
10. कला सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने का कौशल है। कला के शत-प्रतिशत सिद्धान्त नहीं होते।
11. कला परिस्थितियों को उपयोग में लाने का कौशल है।

11.3.1.1 प्रबन्ध की कला के रूप में कसौटी

कला की सभी विशेषताऐं प्रबन्ध में मिलती हैं। निम्न बातों से स्पष्ट है कि प्रबन्ध एक कला है-

1. **ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग-** प्रबन्ध संगठन की समस्याओं को हल करने के लिए अपने प्रबन्धीय ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग करता है। वह प्रबन्धीय सिद्धान्तों एवं तकनीकी को समस्या के सन्दर्भ में व्यावहारिक रूप में प्रदान करता है।
2. **व्यक्तिगत योग्यता-** संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रबन्ध के व्यक्तिगत गुण जैसे रचनात्मक चिन्तन, आत्मविश्वास, दूरदर्शिता, गतिशीलता, नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता, आशावादिता आदि अत्यन्त सहायक होते हैं।
3. **संयोगिक दृष्टिकोण-** प्रबन्ध की शैली एवं तकनीकी परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है। प्रबन्ध का दृष्टिकोण एवं विधि सदैव समस्या के अनुसार होती है। इसलिए प्रबन्ध की कोई एक क्षेत्र प्रणाली अथवा त्रुटिहीन सिद्धान्तों का निर्माण नहीं किया जा सकता है।
4. **सृजनात्मकता-** प्रबन्ध सृजानात्मक कला है, क्योंकि इसमें निरन्तर नयी तकनीकी के साथ-साथ नये सामाजिक मूल्यों, आदर्शों व संस्कृति का निर्माण भी किया जाता है। टैरी के अनुसार, प्रबन्ध सब कलाओं में सबसे अधिक सृजानात्मक है। यह कलाओं की कला है, क्योंकि यह मानवीय प्रतिभा की संगठनकर्ता एवं प्रयोगकर्ता है।
5. **हस्तांतरण सम्भव नहीं-** प्रबन्ध कला का हस्तान्तरण सम्भव नहीं है, क्योंकि यह व्यक्तिपरक होती है। प्रत्येक प्रबन्धक इसे अपने प्रयासों से विकसित करता है।
6. **अभ्यास-** प्रबन्ध कला काफी सीमा तक अभ्यास एवं अनुभव पर निर्भर करती है। पीटर ड्रकर लिखते हैं कि प्रबन्ध एक व्यवहार है। इसका सारतत्व जानना नहीं, वरन् करना है। इसका विकास व्यवहार से ही हुआ है और यह व्यवहार पर ही केन्द्रित है।
7. **अनुभव परक-** प्रबन्ध में अनुभव एवं चातुर्य का उपयोग किया जाता है।
8. **सफलता का आधार-** प्रबन्ध कला की सफलता का आधार प्रबन्धक का निजी चातुर्य, ज्ञान एवं अनुभव होता है, अतः स्पष्ट है कि प्रबन्ध एक कला है।
9. **लोचपूर्ण सिद्धान्त-** प्रबन्ध के सिद्धान्त विकसति किये जा सकते हैं, किन्तु उनके शत-प्रतिशत रूप से खरे उतरने की सम्भावना परिस्थितियों पर निर्भर करती है।
10. **निर्णयों का प्रभाव नहीं-** प्रबन्धकों द्वारा निर्णय कुछ सिद्धान्तों के आधार पर लिए जा सकते हैं, किन्तु परिवर्तनशील परिस्थितियों के कारण उन निर्णयों का प्रभाव सदैव समान नहीं होता है।

11. **कार्य लेने की कला-** प्रबन्ध वास्तव में कर्मचारियों को प्रभावित एवं अभिप्रेरित करके उनसे कार्य लेने की कला ही है।

इन सभी कारणों से प्रबन्ध को एक कला माना जा सकता है।

11.3.2 क्या प्रबन्ध एक विज्ञान है?

सर्वप्रथम हमें विज्ञान का अर्थ जान लेना आवश्यक है। विज्ञान संगठित एवं सुव्यवस्थित ज्ञान का समूह है जो तथ्यों, अवलोकनों, परीक्षणों एवं प्रयोगों पर आधारित होता है। विज्ञान सम्बन्धित घटना के कारण एवं परिणाम में सम्बन्ध बताते हुए इसकी व्याख्या करता है। विज्ञान के सार्वभौमिक नियम, निष्कर्ष, एवं मूलाधार होते हैं जो कि प्रामाणिक एवं जाँचे हुए होते हैं। विज्ञान, समस्या के अध्ययन हेतु वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करता है। वैज्ञानिक ज्ञान समूह का परीक्षण एवं हस्तातरण सम्भव होता है। प्रबन्ध को विज्ञान मानने के पिछे निम्नलिखित तर्क हैं-

1. विज्ञान, किसी भी विषय का उद्देश्यपरक अध्ययन है।
2. यह किसी विषय का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन है।
3. यह ज्ञान का वर्गीकरण है।
4. विज्ञान के सिद्धान्त शोध एवं परीक्षणों पर आधारित होते हैं।
5. विज्ञान के सिद्धान्त सार्वभौमिक होते हैं।
6. विज्ञान को सीखा एवं हस्तान्तरित किया जा सकता है।
7. विज्ञान प्रत्येक कार्य के कारण एवं परिणाम में सम्बन्ध दर्शाता है।
8. विज्ञान के द्वारा भावी परिणामों का अनुमान लगाना सम्भव है।

11.3.2.1 प्रबन्ध की विज्ञान के रूप में कसौटी

प्रबन्ध की उपर्युक्त तर्कों को ध्यान में रखकर प्रबन्ध के वैज्ञानिक स्वरूप की जाँच की जा सकती है-

1. **सुव्यवस्थित ज्ञान-** आज प्रबन्ध का ज्ञान सुव्यवस्थित एवं संगठित है, जिसका विधिवत् अध्ययन किया जा सकता है। प्रबन्ध का विकास क्रमबद्ध है। यह विभिन्न शाखाओं- उत्पादन प्रबन्ध, वित्त प्रबन्ध, विपणन प्रबन्ध, सेविवर्गीय प्रबन्ध, कार्यालय प्रबन्ध आदि में विभाजित है। प्रबन्ध पूर्णतः विशिष्टीकरण एवं अनुसंधान पर आधारित है।
2. **सिद्धान्तों का प्रतिपादन-** विभिन्न प्रयोगों व अवलोकनों के पश्चात विद्वानों ने प्रबन्ध सिद्धान्तों, विधियों व तकनीकों का प्रतिपादन किया है। इस दिशा में फेयोल के प्रशासनिक सिद्धान्त, टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त व इल्टन मेयो के हॉथोर्न प्रयोग, उर्विक के संगठन के सिद्धान्त सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित हैं।
3. **कारण एवं परिणाम सम्बन्ध-** वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था प्रणाली विचारधारा पर आधारित है, जो प्रत्येक परिस्थिति के कारण एवं परिणाम पर बल देती है। अपने विभिन्न निर्णयों-अभिप्रेरण, संतुष्टि, नियंत्रण, मनोबल सर्वेक्षण, कार्य निष्पादन, लागत-लाभ विश्लेषण आदि में प्रबन्धक कारण एवं परिणाम के सम्बन्ध को ध्यान में रखकर कार्य करता है।
4. **सार्वभौमिकता-** प्रबन्ध के सिद्धान्त देशों व सभी संगठनों में समान रूप से लागू होते हैं। प्रबन्धकीय ज्ञान की समस्त कार्य-समूहों व मानवीय समाज में आवश्यकता होती है। यह संगठित जीवन का सार्वभौमिक तत्व है।

5. **औपचारिक शिक्षण-** आज विश्व के सभी देशों में प्रबन्ध-शास्त्र की औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रबन्धकीय प्रशिक्षण प्राप्त करके अनेक व्यक्ति पेशेवर प्रबन्धक के रूप में कार्य कर रहे हैं। प्रबन्ध अब एक अर्जित प्रतिभा का विषय है।
6. **वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग-** आधुनिक प्रबन्धक की कार्य विधियां अन्तर्ज्ञान या परम्पराओं पर आधारित न होकर पूर्णतः प्रयोगों, परीक्षणों एवं अवलोकन पर आधारित है। प्रबन्धक अपने निर्णयों में तर्क, विश्लेषण एवं कई वैज्ञानिक विधियों जैसे क्रियात्मक अनुसंधान, अर्थमिति, सांख्यिकीय सूत्रों आदि का प्रयोग करता है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर प्रबन्ध को विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है।
7. **उद्देश्यपूर्ण या विषयपरक अध्ययन-** प्रबन्ध निश्चित उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। प्रबन्धकों के अधिकांश निर्णय भी सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं।
8. **निरन्तर प्रयोग-** प्रबन्ध के क्षेत्र में लगातार शोध, प्रयोग एवं परीक्षण हो रहे हैं।
9. **पूर्वानुमान सम्भव-** प्रबन्ध विज्ञान के द्वारा सीमित क्षेत्रों में परिणामों का पूर्वानुमान करना भी सम्भव है।

11.3.2.2 प्रबन्ध विज्ञान को एक शुद्ध विज्ञान नहीं मानने के कारण

1. प्रबन्ध विज्ञान मानव से सम्बन्धित है। मानवीय व्यवहार एवं स्वभाव प्रत्येक परिस्थिति में भिन्न होता है। अतः व्यक्ति की परिवर्तनशीन मनोदशा के कारण प्रबन्धकीय शैली भी एक समान नहीं होती।
2. प्रबन्ध के सिद्धान्त लोचपूर्ण होते हैं। वे स्थिर एवं निरपेक्ष नहीं होते। उनके क्रियान्वयन में पर्याप्त विवके एवं विश्लेषण की आवश्यकता होती है। हेनरी फेयोल ने लिखा है कि प्रबन्ध के सिद्धान्त लचीले होते हैं। ये प्रबन्ध के लिए मार्गदर्शक तत्व मात्र होते हैं।
3. प्रबन्धशास्त्र में प्रयोग एवं परीक्षणों के आधार पर प्राप्त परिणामों की पुनर्रावृत्ति सम्भव नहीं है। मानवीय व्यवहार पर नियंत्रण न होने के कारण प्रत्येक प्रयोग के परिणाम भिन्न-भिन्न होंगे, प्रयोगशाला के निष्कर्षों की भांति एक जैसे नहीं।
4. प्रबन्ध विज्ञान प्रत्येक घटना के कारण एवं परिणाम के सम्बन्ध की पूर्णतया व्याख्या नहीं करता। अतः इसमें निश्चित एवं सही भविष्यवाणियां करना अत्यन्त कठिन होता है।
5. प्रबन्धकीय निर्णयों एवं पद्धति पर प्रत्येक राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, प्रबन्ध विज्ञान में सार्वभौमिकता का तत्व विद्यमान होने के बावजूद भी प्रबन्ध संस्कृति-बद्ध एवं परिस्थितिजन्य होता है। प्रत्येक प्रबन्धकीय शैली एवं तकनीक सांयोगिक होती है।
6. प्राकृतिक विज्ञानों की भांति प्रबन्धकीय कार्य का यथार्थ माप एवं परिशुद्ध मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। अदृश्य शक्ति होने के कारण प्रबन्ध की सफलता का कोई निश्चित मापन नहीं किया जा सकता, किन्तु उसके प्रयासों के परिणाम देखे जा सकते हैं।
7. प्रबन्धक को सदैव गतिशील परिवेश में कार्य करना होता है। उसके दृष्टिकोण एवं चिन्तन को व्यावसायिक गतिशीलता प्रभावित करती है।
8. प्रबन्ध का अध्ययन आत्मपरक है, वस्तुपरक नहीं। प्राकृतिक विज्ञानों की विषय-वस्तु निर्जीव होने के कारण मानवीय भावनाओं से अछूती रहती है, जबकि प्रबन्ध कार्य पर मानवीय उद्वेगों, उत्तेजनाओं, भावनाओं, आवेशों, अभिलाषा, क्रोध, प्रेम आदि का गहरा प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रबन्ध एक प्राकृतिक एवं विशुद्ध विज्ञान नहीं है, वरन् इसे एक सामाजिक एवं व्यावहारिक विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। प्रबन्ध सर्जन अथवा मनोचिकित्सक के लिए व्यावहारिक ज्ञान, मानवीय कौशल एवं सूझ-बूझ का होना अत्यन्त आवश्यक होता है, मात्र पुस्तकीय ज्ञान से रोग का निदान करना सम्भव नहीं होता। इसी प्रकार एक सफल प्रबन्धक के लिए सैद्धान्तिक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता, उसमें व्यावहारिक समझ, सृजानात्मक कौशल एवं व्यक्तिगत निपुणता का भी होना आवश्यक है। उसे सदैव व्यावहारिक यथार्थताओं को ध्यान में रखकर कार्य करना होता है। अतः प्रबन्ध को एक व्यावहारिक विज्ञान की श्रेणी में रखा जाता है।

11.3.3 प्रबन्ध, कला एवं विज्ञान दोनों रूपों में

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रबन्ध में कला और विज्ञान दोनों के लक्षण विद्यमान हैं। स्टेनले टीली के अनुसार वर्तमान में प्रबन्ध 10 प्रतिशत विज्ञान एवं 90 प्रतिशत कला है तथा आधुनिक युग में विज्ञान दिन-प्रतिदिन विकास कर रहा है। प्रबन्ध अगली पीढ़ी तक निश्चित रूप से 80 प्रतिशत विज्ञान एवं 20 प्रतिशत कला हो जाएगा। टेलर ने प्रबन्ध को 75 प्रतिशत विश्लेषण (विज्ञान) एवं 25 प्रतिशत सामान्य ज्ञान (कला) माना है। वस्तुतः प्रबन्ध कला एवं विज्ञान का सम्मिश्रण है, अनुपात तो परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। जार्ज टैरी ने कहा है कि एक प्रबन्धक वैज्ञानिक एवं कलाकार दोनों है। किसी विशेष परिस्थिति में प्रबन्ध विज्ञान प्रबन्धीय कला की मात्रा को कम कर सकता है, किन्तु यह कला की आवश्यकता को समाप्त नहीं कर सकता। प्रबन्ध में कला सदैव विद्यमान रहती है। कई बार प्रबन्धक को समस्याओं के सामाधान में विज्ञान नहीं, अपितु प्रबन्धकीय कला- सृजनात्मक, अनुमान, विश्वास, ज्ञान के चातुर्यपूर्ण प्रयोग आदि की आवश्यकता होती है।

यहाँ यह जान लेना महत्वपूर्ण है कि कला एवं विज्ञान अलग-अलग नहीं हैं, वरन् दोनों अन्योन्याश्रित एवं एक दूसरे के पूरक हैं। विज्ञान में वृद्धि होने से कला भी विकसित होती है, राबर्ट एन0 हिलकर्ट ने कहा है कि प्रबन्ध क्षेत्र में कला एवं विज्ञान दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कून्टज एवं ओ0 डोनेल लिखते हैं कि बिना विज्ञान के चिकित्सक केवल ओझा बनकर ही रह जाता है किन्तु वैज्ञानिक ज्ञान से वह कुशल सर्जन बन जाता है। इसी प्रकार बिना सिद्धान्तों के कार्य करने वाले प्रबन्धक को भाग्य, अन्तर्ज्ञान व भूतकालीन कार्यों पर निर्भर रहना होता है। किन्तु संगठित ज्ञान से वह प्रबन्धकीय समस्या का व्यावहारिक एवं सुदृढ़ हल खोज सकता है। प्रबन्धक को ज्ञान का कौशलपूर्ण उपयोग करना जानना चाहिए।

अक्सर यह कहा जाता है कि ज्ञान शक्ति है। किन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है, क्योंकि कुशल उपयोग के बिना ज्ञान का कोई मूल्य नहीं होता। अतः यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि व्यावहारिक ज्ञान ही शक्ति है। स्पष्ट है कि प्रबन्ध कला एवं विज्ञान दोनों का सम्मिश्रण है। रीस, मिन्ट्जबर्ग आदि ने ठीक ही कहा है कि प्रबन्ध कला एवं विज्ञान का व्यावहारिक संयोजन है, जो निरन्तर किसी के रचनात्मक संसाधनों को नई पहेलियों के साथ हल करने की चुनौती देता रहता है।

11.4 प्रबन्ध के अन्य स्वरूप

प्रबन्ध को कला या विज्ञान या दोनों मानने वालों को इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि प्रबन्ध के कला या विज्ञान के अतिरिक्त अन्य स्वरूप भी हैं। प्रबन्ध के अन्य स्वरूपों का भी अध्ययन करते हैं।

1. **सामाजिक विज्ञान-** प्रबन्ध एक प्राकृतिक विज्ञान नहीं वरन् सामाजिक विज्ञान है, क्योंकि इसका सम्बन्ध मानवीय एवं सामाजिक घटनाओं से है। यह मानव व समाज के लक्ष्यों, आवश्यकताओं, दशाओं व मूल्यों से जुड़ा है।
2. **व्यवहारवादी विज्ञान-** प्रबन्ध एक व्यवहारात्मक विज्ञान है, क्योंकि यह मानवीय व्यवहार, वृत्तियों, आचरण, धारणाओं, भावनाओं एवं उनकी कार्यशैली से सम्बन्ध रखता है। यह कार्य व्यवहार प्रेरणा, संतुष्टि, असंतुष्टि, तनाव, नैराश्य, मनोबल आदि घटकों का प्रबन्ध करता है।
3. **अनिश्चित विज्ञान-** प्रबन्ध मानव व्यवहार से सम्बन्ध रखता है जो निरन्तर गतिशील एवं परिवर्तनशील है तथा जिसके बारे में कोई पूर्वानुमान करना सम्भव नहीं होता। अतः इसके परिणाम, भविष्यवाणी व प्रभाव निश्चित नहीं होते। कूंज एवं डोनेल के शब्दों में प्रबन्ध सम्भवतः सामाजिक विज्ञानों में सबसे अधिक अनिश्चित विज्ञान है। शायद इसी कारण टैरी ने प्रबन्ध को आभासी विज्ञान का दर्जा दिया है।
4. **व्यवहारिक विज्ञान-** प्रबन्ध की अपनी मौलिक अवधारणाऐं एवं सिद्धान्त अभी तक पूर्णरूप से विकसित नहीं हो पाए हैं। प्रबन्ध ने अपने सिद्धान्त एवं तकनीकें दूसरे विषयों से ग्रहण किए हैं। प्रबन्ध में मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विषयों के ज्ञान का प्रयोग किया जा रहा है। यही कारण है कि इसे अन्तर्विषयक विज्ञान भी कहा जाता है।
5. **विकासशील विज्ञान-** इसका विकास पिछले 50 वर्षों में ही हुआ है। यही कारण है कि प्रबन्ध की शब्दावली, अध्ययन पद्धति एवं सिद्धान्तों में निश्चितता नहीं पायी गयी। प्रबन्ध की विचारधाराओं एवं अर्थ के बारे में भी प्रबन्धशास्त्री एकमत नहीं हैं। प्रबन्ध अभी पूर्ण रूप से विज्ञान का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सका है। इसके क्षेत्र में अभी निरन्तर अध्ययन एवं प्रयोग किये जा रहे हैं। यह अभी पूर्णरूप से विकसित विज्ञान नहीं है।
6. **सरल विज्ञान-** अर्नेस्ट डेल ने प्रबन्ध को एक सरल या मुलायम विज्ञान माना है जिसमें कोई कठोर नियम नहीं होते। इसके सिद्धान्त परिस्थिति एवं समय के अनुसार बदले या समायोजित किये जा सकते हैं। इसकी मान्यताऐं व दृष्टि लोचशील होती है। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने प्रबन्ध को परिस्थितिगत विज्ञान भी कहा है।
7. **आदर्श विज्ञान-** यह सामाजिक उत्तर दायित्वों उच्च नैतिक स्तर, न्यायोचित लाभ, सामाजिक हितों, मधुर श्रम सम्बन्धों व सांस्कृतिक मूल्यों पर अधिक बल देता है।
8. **शुद्ध विज्ञान नहीं-** प्रबन्ध एक विज्ञान है, किन्तु इसे भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित आदि प्राकृतिक विज्ञानों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। प्रबन्ध शुद्ध अथवा वास्तविक विज्ञान नहीं है, क्योंकि यह मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित है। प्रबन्ध की विषय सामग्री मनुष्य है, जिसके व्यवहार एवं स्वभाव के बारे में ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन होता है। फिर प्रबन्धक को निरन्तर बदलते हुए मूल्यों, नये सामाजिक परिवेश एवं परिवर्तित दशाओं में कार्य करना होता है। अतः उसकी प्रबन्धकीय शैली एवं पद्धति स्थिर नहीं वरन् परिस्थितिजन्य होती है। अतः प्रबन्ध एक सामाजिक एवं व्यावहारिक विज्ञान है। पीटर ड्रकर ने लिखा है कि प्रबन्ध कभी शुद्ध विज्ञान नहीं हो सकता।

11.5 प्रबन्ध सहभागी

सहभागी प्रबन्ध के अन्तर्गत एक प्रशासक, कर्मचारियों को कार्यालय की कार्यविधियों में सुधार के लिए व्यावहारिक और रचनात्मक सुझाव देने को प्रोत्साहित करता है। यदि उनके सुझाव मान लिये जाते हैं, तो उन्हें नकद या किसी न किसी रूप में पुरस्कार दिये जाते हैं। उनके सुझाव सामान्यतः समय बचाने, अपव्यय कम करने, गुणवत्ता सुधारने या कार्यविधियों को सरल बनाने के सम्बन्ध में हो सकते हैं।

सहभागी प्रबन्ध के प्रेरणात्मक प्रभाव होते हैं, क्योंकि इससे कर्मचारियों में इस संतुष्टि की भावना उत्पन्न होती हैं, कि उन्होंने कार्यालय की प्रगति के लिए कुछ उपयोगी योगदान किया। इससे कर्मचारियों को प्रबन्ध के साथ विचार-विमर्श करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। ये समितियाँ कर्मचारियों को विशेष कार्य करते समय आनी वाली व्यावहारिक समस्याओं और शिकायतों के सम्बन्ध में खुलकर बताने का अवसर प्रदान करती हैं। ये उन्हें इन समस्याओं को कार्यालय पर्यवेक्षक तक पहुँचाने का अवसर भी प्रदान करती हैं। कार्य करने की विधि आदि में सुधार के लिए सुझाव देने के लिये तत्पर कर्मचारियों की जानकारी और अनुभव से प्रशासन को लाभ हो सकता है। इसे प्रभावी बनाने के लिए इसकी योजना सावधानी पूर्वक बनानी चाहिए। संगठन प्रणाली को कार्यान्वित करने के लिए प्रायः निम्नलिखित कार्यविधि सुझाई जाती है-

1. कर्मचारियों को छपे हुए सुझाव फार्म उपलब्ध कराये जाते हैं, जिन्हें सुझाव-पेटिका में डालने के लिये कहा जाता है। ये सुझाव-पेटिका किसी ऐसे स्थान पर रखनी चाहिये, जहाँ इस पर सबकी नजर पड़े।
2. उच्च प्रबन्ध को चाहिए कि वे कर्मचारियों द्वारा दिये गये सभी सुझावों की समय-समय पर जाँच करे।
3. प्रत्येक सुझाव पर तुरन्त विचार कर स्वीकार या अस्वीकार करने के कारण भी बताये जाने चाहिए। इससे कर्मचारियों को जाँच की विधि की निष्पक्षता और प्रबन्ध की ईमानदारी के बारे में आश्वत कराया जा सकता है और उन्हें इस सम्बन्ध में अच्छी तरह से अवगत कराया जा सकता है।
   इनाम उचित होना चाहिए, ताकि कर्मचारी प्रबन्ध में प्रतिभागिता करने के लिए प्रेरित हों।
4. अन्त में, प्रबन्ध को पुरस्कृत और स्वीकार किये गये सुझावों को कार्यान्वित करने के लिये तत्पर रहना चाहिए। उसे इस बात का प्रचार भी करना चाहिये कि इन सुझावों से संगठन को किस प्रकार लाभ पहुँचा है? इससे अन्य कर्मचारी भी अभिप्रेरित होंगे और कार्यप्रणाली में सुधार के बारे में सोचेंगे और नये-नये परामर्श देंगे।

11.5.1 सहभागी प्रबन्ध की परिभाषाऐं

सहभागी प्रबन्ध आधुनिक प्रबन्ध की नवीनतम पद्धति है, जिसके अन्तर्गत समस्त कार्यरत कर्मचारियों के साथ नियोजित व्यूह की रचना की जाती है। समय-समय पर प्रत्येक कार्यों का मूल्यांकन भी किया जाता हैं। कुछ प्रमुख विद्वानों ने सहभागी प्रबन्ध को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है। इनका विश्लेषण कर समझने का प्रयास करें-

एफ0 ड्रकर के अनुसार ''सहभागी प्रबन्ध एक प्रक्रिया है, जिसमें प्रबन्धक एवं सम्पूर्ण संगठन के कर्मचारी अपनी कार्यकुशलता के अनुसार मिल-बैठकर प्रत्येक विभाग तथा व्यक्तिगत प्रबन्धक के स्तर पर कार्यों के अनुसार नीति निर्धारण करते हैं।''

जार्ज एस0 ऑडियोर्न के अनुसार, ''सहभागी प्रबन्ध एक प्रक्रिया है, जिसमें संगठन के वरिष्ठ एवं अधीनस्थ सामूहिक रूप से संगठन के सामान्य उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के उत्तर दायित्व को उससे

अपेक्षित परिणामों के सन्दर्भ में परिभाषित करते हैं एवं संगठन के संचालन तथा उसके प्रत्येक सदस्य के योगदान का मूल्यांकन करने में इन्हीं मापदण्डों का उपयोग किया जाता है।''

किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार, ''सहभागी प्रबन्ध एक प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत प्रबन्धक और अधीनस्थ मिलकर ऐसी क्रियाओं, लक्ष्यों, स्थितियों एवं उद्देश्यों के सम्बन्ध में सहमत हो जाते है, जिनका उपयोग अधीनस्थों के निष्पादन एवं उनके मूल्यांकन के आधार रूप में उपयोग किया जायेगा।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सहभागी प्रबन्ध के अन्तर्गत सर्वप्रथम वरिष्ठ एवं अधीनस्थ मिलकर सामूहिक रूप से एक निश्चित अवधि के लिये संगठन के उद्देश्य तथा नीति निर्धारित करते हैं और इसके बाद प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर के लिये कार्य निर्धारण और निष्पादन के सम्बन्ध में निर्णय लिये जाते हैं।

11.5.2 सहभागी प्रबन्ध की विशेषताऐं

प्रबन्ध शास्त्र के महानतम विद्वान हेनरी फेयोल के अनुसार सहभागी प्रबन्ध की निम्नलिखित विशेषताऐं निरूपित की जा सकती हैं-

1. **वांछित उद्देश्यों का निर्धारण-** सहभागी प्रबन्ध के द्वारा प्रबन्धक एवं कर्मचारी मिलकर संगठन के लिये सर्वमान्य उद्देश्य निर्धारित करते हैं और उनको विस्तृत रूप में परिभाषित करने का कार्य करते हैं।
2. **समूह भावना-** सहभागी प्रबन्ध अधीनस्थों के संगठन को सभी निर्णयों में प्रतिभागिता का अधिकार प्रदान करता है, जिससे अधिकारियों द्वारा किसी भी निर्णय को अकेले ही नहीं किया जाता है, अपितु अधीनस्थों को भी में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार प्रबन्धक एवं अधीनस्थ दोनों मिलकर समूह भावना से कार्य करते हैं, इसीलिये कोई भी निर्णय दोनों को स्वीकार्य होता है।
3. **निश्चित अवधि-** प्रबन्ध की इस विधि के अन्तर्गत कार्यों का निर्धारण एक निश्चित अवधि के लिये हो सकता है। यह अवधि पाँच वर्ष तक की हो सकती है और इसके बाद मासिक योजनाऐं बनायी जा सकती है।
4. **निष्पादन स्तर का निर्धारण-** इसमें प्रत्येक विभाग के कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों के स्तर इस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं, जिससे कि वे उपक्रम के मूल उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हों।
5. **अधिकारों का भारार्पण-** इस विधि के अन्तर्गत अधिकारीगण अपने अधीनस्थों की एक सीमा तक अधिकारों का भारार्पण कर देते हैं।
6. **संगठनात्मक ढाँचा-** इसके अन्तर्गत उपक्रम का संगठनात्मक ढ़ाँचा इस प्रकार से तैयार किया जाता है कि प्रत्येक प्रबन्धक एवं कर्मचारी सामूहिक तौर पर अपने निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। इसके अतिरिक्त ये समय एवं परिस्थितियों के अनुसार अपने निर्णयों में परिवर्तन या संशोधन करने के लिए भी पूणर्तः स्वतन्त्र होते हैं, जिससे कि कार्य-विधियों में सुधार करके उपक्रम की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि कर सके।
7. **प्रशिक्षण-** प्रबन्ध, समस्त कर्मचारियों के लिये प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था करता है, जिससे वो परिवर्तन परिस्थितियों में अपने निर्णयों को अद्यतन बनाते रहें।

8. **अभिप्रेरणा-** यह विधि प्रबन्धकों एवं अधीनस्थों को मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनों प्रकार की अभिप्रेरणाऐं प्रदान करने में सहायक होती हैं, जिससे सही समय पर सही ढंग से निर्णय लिया जा सके और अधीनस्थ इन निर्णयों का सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए प्रेरित है।
9. **निष्पादन का मूल्यांकन-** इसमें समस्त कार्यों के निष्पादन का मूल्यांकन पूर्व-निर्धारित निर्णयों पर के आधार पर, समूह के प्रतिनिधियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।
10. **उपलब्धियों का प्रचार-** संगठन के विभागाध्यक्षों और कर्मचारियों द्वारा जो उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं, उनकी जानकारी सम्पूर्ण संगठन तथा अन्य इकाइयों को भी दी जाती हैं। इससे उन अधिकारियों एवं अधीनस्थों में गौरव को भावना जागृत होती है, जिन्होंने टीम भावना के साथ कार्य किया हो और अन्य अधिकारियों एवं अधीनस्थों को भविष्य में अपने कार्यों के सम्बन्ध में निर्णय लेने में सुविधा रहती है।

11.5.3 सहभागी प्रबन्ध की अवधारणा की मान्यताऐं

उपरोक्त विश्लेषण के उपरान्त हमारे लिये यह जानना भी अति आवश्यक है कि सहभागी प्रबन्ध की अवधारणा किन मान्यताओं पर टिकी है। प्रो0 फेयोल के अनुसार निम्नलिखित को सहभागी प्रबन्ध की अवधारणाओं के रूप में मान्यता दी जा सकती है-

1. संगठन के समस्त कर्मचारियों को निर्णय में सहभागिता प्रदाना की जानी चाहिए।
2. सहभागी निर्णय प्रगतिशील एवं गतिशील होने चाहिये।
3. सहभागी निर्णय लिखित होने चाहिये तथा संगठन के सभी अधिकारियों एवं अधीनस्थों की आस्था एवं विश्वास इसमें होना चाहिए।
4. संगठन की समस्त क्रियाऐं सहभागी निर्णयों को प्राप्त करने की दिशा में ही एकीकृत कर समन्वित होनी चाहिए।
5. सहभागी निर्णयों को प्राप्त करने के लिये सुखद वातावरण प्रदान करना चाहिये।
6. सहभागी निर्णयों की प्राप्ति हेतु उन विभागीय उद्देश्यों को समाप्त कर देना चाहिए जिनसे मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने में बांधा आ रही हो।
7. उच्च प्रबन्ध को अपने अधिकांश निर्णय सहभागी निर्णयों के माध्यम से प्राप्त करने चाहिये।
8. संगठन का अस्तित्व बना रहे और उसका निरन्तर विकास होता रहे, इस धारणा के साथ सहभागी प्रबन्ध के सभी सदस्यों को किसी भी प्रकार का निर्णय लेना चाहिए।

11.5.4 सहभागी प्रबन्ध के उद्देश्य

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर सहभागी प्रबन्ध के निम्नलिखित उद्देश्यों को क्रमबद्ध किया जा सकता है-

1. सर्वमान्यता से संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित कर तद्-नुसार कार्य निष्पादन का अन्तिम परिणाम प्राप्त करना।
2. प्रत्येक व्यक्ति को संगठन के आधारभूत निर्णयों के साथ सम्बन्ध करना।
3. अधीनस्थों की क्षमता एवं विकास में वृद्धि कर उत्पादकता बढ़ाना।
4. अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य सुदृढ़ एवं प्रभावी सम्प्रेषण की व्यवस्था स्थापित करना।
5. कार्यों के निष्पादन की माप कर कार्यों का मूल्यांकन करना।
6. अधीनस्थों को अधिक कार्य करने के लिये अभिप्रेरित करना।

7. संगठन में कार्यरत सभी व्यक्तियों को उपलब्धियों की जानकारी प्रदान करना।
8. अधिकारियों एवं अधीनस्थों की पदोन्नति के लिये पर्याप्त अवसरों का सृजन करना।
9. नियोजन एवं नियन्त्रण को अधिक प्रभावी बनाना।

एक कुशल प्रशासन को संगठन के निम्नलिखित क्षेत्रों के सम्बन्ध में सहभागी प्रबन्ध को क्रियान्वित करना चाहिए। जिससे उसे श्रेष्ठ परदर्शी तथा प्रभावी व्यवस्था स्थापित करने में किसी भी प्रकार की बांधा उत्पन्न न हो। इन क्षेत्रों को कुछ इस प्रकार से क्रमबद्ध किया जा सकता है- संगठन का स्वभाव, कार्य की मात्रा एवं गुणवत्ता, कार्यात्मक विधि में सुधार, निर्णयों में सुधार, नवीन-प्रक्रिया, परिचालन की कुशलता, कार्य-क्षेत्र का विस्तार, निष्पादन मात्रा में सुधार, प्रबन्ध में सुधार, प्रबन्धकीय विकास, सामाजिक उत्तर दायित्वों के सम्बन्ध में, कर्मचारियों की सन्तुष्टि में वृद्धि और कर्मचारियों का विकास।

इस प्रकार सहभागी प्रबन्ध द्वारा उच्च तथा निम्न सभी स्तर के समस्त कर्मचारियों में लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये एक वातावरण बन जाता है तथा प्रबन्धकीय निष्पादन में सुधार होता है, क्योंकि उपक्रम की समस्त क्रियाऐं एक साथ मिलकर करने का प्रयास होता है। संगठन के सभी सदस्य अपने उद्देश्यों का निर्धारण अधिकारियों के साथ मिलकर करते हैं। जिससे संगठन में टीम भावना विकसित होती है जिसका लाभ एवं उसके सभी सदस्यों को मिलता है।

प्रायः प्रशासनिक संगठन में इस विधि को अपनाने से संगठन प्रबन्धकों की क्रियाऐं, लाभदायक क्रियाओं की ओर केन्द्रित होती हैं। जिससे सुव्यवस्थित निर्णयन में कर्मचारियों के भागीदारी होने से सभी कर्मचारी स्वःअभिप्रेरणा से प्रेरित होकर कार्य करते हैं, यह उत्पादकता बढाने में सहायक होती है। उचित अभिप्रेरणा के फलस्वरूप प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों का मनोबल सदैव ऊँचा रहता है। वे अपने दायित्वों का निर्वाह अपनी जिम्मेदारी समझकर करते हैं, जिससे सभी कर्मचारियों में कुशलता, निष्पादन से कार्य सन्तुष्टि की भावना तथा कार्य के प्रति सुरक्षा का विकास होता है। अर्थात कर्मचारियों में नैराश्य की भावना विकसित नहीं हो पाती।

सहभागी प्रबन्ध वास्तव में अधिकारियों एवं अधीनस्थों को अधिकारों का भार्रापण होने की दिशा में भी होता है। जिससे संगठन अधिक प्रभावी बन जाता है, जो निश्चय ही प्रत्येक कर्मचारी में उत्तर दायित्व की भावना का विकास करता है, जिसके कारण वह अधिक लगन एवं निष्ठा के साथ अपने उत्तर दायित्व को निभाता है। इससे निर्णयन में अधीनस्थों की सहभागिता में वृद्धि होती है और निर्णय अधिक प्रभावी बन जाते हैं। प्रभावी प्रबन्धकीय विकास के क्रम में भी सहभागी प्रबन्ध मील का पत्थर सिद्ध हुई है, इससे संगठन की प्रबन्धकीय योग्यता का स्तर ऊँचा हो जाता है। श्रेष्ठ संचार-व्यवस्था जिससे संचार व्यवस्था श्रेष्ठतर बनाती है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होती है। हम सभी जानते हैं समन्वय प्रबन्ध का सार है। सहभागी प्रबन्ध विधि के अन्तर्गत उपक्रम की समस्त क्रियाओं में समन्वय निर्बाध गति से सन्तुलित रहता है। जिससे संगठन पर स्वीकृत एवं प्रभावपूर्ण नियन्त्रण बना रहता है और संगठन की क्रियाऐं सहभागी निर्णयानुसार ही सम्पन्न होती रहती है।

11.6 अच्छे प्रबन्ध की कसौटियाँ

अभी तक आप प्रबन्ध की अवधारणा का विभिन्न दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में जान गये होंगे। यह अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक यह निर्णय न कर लिया जाय कि एक अच्छा या सुव्यवस्थित प्रबन्ध किसे कहा जाये? वास्तव में यह एक अत्यन्त गूढ़ प्रश्न है जिसके उत्तर में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। यह एक प्रशासक के

गुणों पर भी निर्भर करता है और प्रबन्ध की विभिन्न कसौटियों पर भी। समिष्टिवादी दृष्टिकोण के अनुसार हम अच्छे प्रबन्ध की निम्नलिखित कसौटियों को क्रमबद्ध कर विश्लेषित कर सकते हैं। इसे समझने का प्रयास करें-

1. **प्रशासन एवं प्रबन्ध का सामान्य ज्ञान-** एक सफल प्रबन्ध को अपने से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्र का सामान्य ज्ञान होना चाहिए, जिससे कि वह अपने से सम्बन्धित संगठन भी समस्या के सम्बन्ध में निर्णय लेने से पूर्व उस समस्या का सामान्य रूप से विश्लेषण कर सके और उसके द्वारा लिये गये निर्णय समस्या की आवश्यकता के अनुरूप ही हो।
2. **प्रभावी नेतृत्व-** एक सफल प्रबन्धक में एक प्रभावी नेता का चारित्र भी होना चाहिये। वास्तव में प्रबन्धक अपने उपक्रम का नेता होता है, जो अपने संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अपने प्रबन्धकीय ज्ञान एवं विवेक के प्रयोग के द्वारा संगठन में लगे हुये कर्मचारियों का नेतृत्व करता है।
3. **शीघ्र निर्णयन-** एक सफल प्रबन्ध में समय एवं परिस्थितियों के अनुसार शीघ्र निर्णय लेने की प्रक्रिया सुनिश्चत होनी चाहिये, अन्यथा अपने उत्तर दायित्वों को सफलतापूर्वक निर्वाह नहीं कर सकेगा और न ही प्रगति की ओर ले जाने में सफल सिद्ध होगा। प्रबन्धक द्वारा किसी भी समस्या के सम्बन्ध में निर्णय लेने से पूर्व उससे प्राप्त होने वाले परिणामों की सही कल्पना करना ही उसकी दूरदर्शिता का परिचायक है।
4. **समन्वयन-** एक सफल प्रबन्ध उपक्रम में उपलब्ध सभी भौतिक एवं मानवीय साधनों में समन्वय करने की क्षमता रखता है। इसके सम्बन्ध में कहा भी जाता है कि समन्वय प्रबन्ध का सार है। प्रबन्ध में इसका अभाव है तो संगठन के उत्पत्ति के विभिन्न साधन दिशा-विहीन हो जायेंगे और संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने की आशा धूमिल पड़ सकती है।
5. **दृढ़ता-** एक प्रबन्ध को अपने निर्णयों के प्रति दृढ़ रहना चाहिये। इससे संस्था में अच्छे अनुशासन की स्थापना होती है। लेकिन इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रबन्ध द्वारा किसी भी निर्णय लिये जाने से पूर्व सम्बन्धित प्रत्येक पहलू पर बारीकी से विचार कर लिया जाना चाहिये।
6. **निष्पक्षता-** एक प्रबन्ध को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति निष्पक्ष होना चाहिये। इससे कर्मचारियों में उसके प्रति विश्वास एवं आस्था उत्पन्न हो जाती है और वे उसे आदर की दृष्टि से देखने लगते हैं। वे संगठन में पूर्ण निष्ठा से कार्य करते हैं, जिससे अन्ततः प्रबन्धक को ही सफलता मिलती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. किस विद्वान द्वारा प्रबन्ध को उत्पादक बढ़ाने में सहायक माना गया है?
2. प्रबन्ध परिचालक के कितने स्तर होते हैं?
3. निम्न स्तर के कर्मचारियों को किस स्तर के कर्मचारियों द्वारा प्रशिक्षित किया जाता है?
4. सहभागी प्रबन्ध के अन्तर्गत एक कर्मचारी क्या करता है?
5. सहभागी प्रबन्ध के सन्दर्भ में किसने कहा कि इसके अन्तर्गत प्रबन्धक और अधीनस्थ मिलकर क्रियाओं, लक्ष्यों, स्थितियों एवं उद्देश्यों के सम्बन्ध में सहमत हो जाते हैं।
6. निम्न में से किसे सहभागी प्रबन्ध की विशेषता नहीं कहा जा सकता है?

11.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रबन्ध' एक बहु आयामी विधा है, जिसमें प्रशासनिक व क्रियात्मक दोनों स्वरूप हैं। प्रतियोगात्मक व्यवसाय की उन्नति के लिए प्रबन्ध आवश्यक है। प्रशासन का

संगठनात्मक स्वरूप भी श्रेष्ठ प्रबन्ध की ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विश्व के किसी भी देश के आर्थिक व सामाजिक विकास में प्रबन्ध एक निर्णायक भूमिका निभाना तत्व है। विकासशील राष्ट्र अविकसित नहीं हैं, वरन कुप्रबन्धित है। अतः विकास की चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रबन्ध का श्रेष्ठतम उपयोग करना होगा।

प्रबन्ध और प्रशासन में अन्तर उसके प्रयोग के आधार पर किया जा सकता है। वाणिज्यिक संगठनों में प्रबन्ध शब्द का प्रयोग प्रचलित है तथा सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में संलग्न सरकारी उद्यमों में प्रशासन शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेकिन व्यवहार में दोनों का पर्यायवाची अर्थों में प्रयोग किया जाता है। प्रबन्ध की परिभाषा को चार विभिन्न विचारधाराओं में बाँटा जा सकता है। प्रक्रिया विचारधारा, प्रबन्धक के कार्यों का विश्लेषण करता है और विभिन्न कार्यों में प्रबंधकीय गतिविधियों को वर्गीकृत करता है। जैसे नियोजन, संगठन, नियुक्तियाँ (कर्मचारी चयन) नेतृत्व तथा नियंत्रण। मानवीय विचारधारा संगठन के मानवीय पहलुओं पर बल देते हुए मनुष्य के प्रबन्ध पर अधिक महत्व देता है। तीसरी विचारधारा प्रबन्ध में निर्णय लेने की कला को अधिक महत्व देती है। इस विचारधारा के अनुसार उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना प्रबन्ध का उद्देश्य है। प्रणाली एवं आकस्मिकता विचारधारा संगठन को बाहरी वातावरण के अनुकूल ढालने पर बल देती है। प्रबन्ध की विभिन्न परिभाषाओं तथा संकल्पनाओं के आधार पर ही प्रबन्ध की प्रकृति के तत्व निर्धारित किये गये हैं।

समाज तथा संगठन के सभी वर्गों के प्रति प्रबन्ध के उत्तर दायित्व को उसका सामाजिक दायित्व कहते हैं। व्यावसायिक संगठन चूँकि समाज द्वारा निर्मित है, इसलिए उन्हें समाज की मांग को पूरा करना चाहिए। सामाजिक दायित्व को निभाना संगठन के दीर्घावधि हितों का संरक्षण करता है। प्रबन्धक केवल अपने स्वामी का आर्थिक हित ही न देखें वरन् अन्य वर्गों जैसे कि कर्मचारियों, उपभोक्ता, सरकार तथा पूर्ण समाज के हितों की भी रक्षा करें। तभी प्रबन्ध की संकल्पना वास्तविक धरातल पर सिद्ध हो सकेगी।

11.8 शब्दावली

प्रशासन- प्रबन्ध द्वारा निष्पादित नीतियों एवं उद्देश्यों के सम्पूर्ण निर्धारण का बौद्धिक कार्य।

प्रबन्ध की कला- प्रबन्ध के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को व्यवहार में लाना।

संकल्पनात्मक कुशलता- संगठन की समस्त गतिविधियों व हितों को समझने तथा संयोजित करने में प्रबन्धक की योग्यता।

नियंत्रण- पूर्वनिर्धारित मानकों से परिणाम की तुलना करना तथा प्राप्त विचलन को सुधारना।

पूर्वानुमान- भावी घटनाओं का पूर्वज्ञान करना।

प्रबन्ध- मानव समूह की गतिविधियों के निर्देशन तथा अन्य संसाधनों के उपयोग से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्रक्रिया।

संगठन- अपेक्षित गतिविधियों को पहचानने तथा वर्गीकृत करने, व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करने और उन्हें अधिकार देने की प्रक्रिया।

नियोजन- भावी कार्यनीति निर्धारित करना।

पेशा- एक विशिष्टि प्रकार का कार्य करने के लिए ज्ञान की सुनिश्चित शाखा के सिद्धान्तों तथा किसी मान्य संस्था द्वारा निर्धारित आचार संहिता के निर्देशों का व्यवहार।

नियुक्तियाँ (कर्मचारी चयन)- संगठन के प्रारूप में विभिन्न पदों का सृजन व उनके लिये उपयुक्त व्यक्तियों का चयन।

प्रबन्ध का विज्ञान- ज्ञान की एक सुनिश्चित शाखा के सिद्धान्तों, संकल्पनाओं और तकनीक का प्रबन्धकीय कार्यों में प्रयोग।

सामाजिक दायित्व- उद्यम एवं प्रबन्ध से सम्बन्धित वर्गों की अपेक्षाऐं।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. टेलर, **2.** तीन, **3.** मध्य, **4.** व्यावहारिक और रचनात्मक सुझाव, **5.** किम्बाल एवं किम्बाल, **6.** नियोजन

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 सी0 वी0 गुप्ता,व्यापारिक संगठन और प्रबन्ध, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली-1996,
2. मामोरिया एवं मामोरिया, व्यापारिक योजना और नीति, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई-1996,
3. हारोल्ड कून्टज एवं हेनीज विचरिच, इशनशियल्स ऑफ मैनेजमेंन्ट, मैग्राहिल इन्टरनेशनल, नई दिल्ली-2000,

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशान्त के0 घोष, कार्यालय प्रबन्धन, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, 2000,
2. डॉ0 जे0 के0 जैन, प्रबन्ध के सिद्धान्त, प्रतीक पब्लिकेशन, इलाहाबाद-2002,
3. डॉ0 एल0 एम0 प्रसाद, प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली- 2005,

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों की कार्यप्रणाली और महत्व की चर्चा कीजिये।
2. प्रबन्ध की शास्त्रीय और आधुनिक विचारधाराओं को समझाइये।
3. क्या एक प्रशासक को प्रबन्धक कहा जा सकता है? कारण सहित स्पष्ट करिये।
4. वर्तमान प्रशासकीय व्यवस्थाओं में सहभागी प्रबन्ध को क्यों अधिक महत्व दिया जाता है?

इकाई- 12 नेतृत्व, नीति निर्धारण तथा निर्णयन

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 नेतृत्व की अवधारणा
    12.2.1 प्राचीन अवधारणा
    12.2.2 विशेषक अवधारणा
    12.2.3 समूह अवधारणा
    12.2.4 परिस्थितिकी अवधारणा
    12.2.5 नवीन अवधारणा
12.3 नेतृत्व की परिभाषा
12.4 नेतृत्व की विशेषताऐं
12.5 नेतृत्व की आवश्यकता
12.6 नेतृत्व के गुण
12.7 नेतृत्व की शैलियां
    12.7.1 एकतंत्रीय शैली
    12.7.2 सहभागिता नेतृत्व
    12.7.3 हस्तक्षेप रहित नेतृत्व
12.8 नीति निर्धारण
    12.8.1 नीति की परिभाषा
    12.8.2 नीति के स्वरूप या प्रकार
    12.8.3 नीति की विशेषताऐं
12.9 निर्णयन
    12.9.1 निर्णयन की परिभाषा
    12.9.2 निर्णयन की विशेषताऐं
    12.9.3 निर्णयन की प्रकृति
    12.9.4 निर्णयन के प्रकार
    12.9.5 निर्णयन के चरण
12.10 सारांश
12.11 शब्दावली
12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.13 सदर्न्भ ग्रन्थ सूची
12.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

किसी भी प्रशासनिक संगठन की सफलता उसके अन्तिम कार्य निष्पादन पर पूर्ण रूप से निर्भर करती है। अन्तिम निष्पादन प्रभावी एवं सुव्यवस्थित हो, इस हेतु एक प्रशासनिक संगठन को कुशल नेतृत्व, प्रभावी नीति एवं समयबद्ध निर्णयन की आवश्यकता होती है। राज्य की लोक कल्याणकारी अवधारणा के निरूपण के पश्चात् उपरोक्त तीनों ही अवधारणाओं का विस्तृत अध्ययन लोक प्रशासन के छात्रों के लिये महत्वपूर्ण हो गया है। प्रस्तुत इकाई में हम इन तीनों ही अवधारणाओं को प्रभावी एवं क्रमबद्ध ढंग से विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नेतृत्व की अवधारणा को विस्तार से समझ पायेंगे।
- नीति निर्धारण सम्बन्धी अवधारणा को समझ पायेंगे।
- निर्णयन के विभिन्न दृष्टिकोणों को आत्मसात कर पायेंगे।

12.2 नेतृत्व की अवधारणा

लोक सेवा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य किसी समूह, संगठन या संस्था के समूचे कार्य को वांछित उद्देश्यों की ओर संचालित और निर्देशित करने के लिए नेतृत्व प्रदान करना है। सरकारी तंत्र के अन्तर्गत संगठनों के फैलाव, दिनों-दिन बढ़ती संख्या के कारण नेतृत्व और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। नेतृत्व का तात्पर्य प्रबन्धकों के उस व्यावहारिक गुण से है, जिसके द्वारा वे अपने अधीनस्थों को प्रभावित करके उनके विश्वास को जीतने का प्रयास करते हैं, उनका स्वाभिमान जागृत करते हैं, उनका सहयोग प्राप्त करते हैं तथा अपने अधीनस्थ समुदाय को संगठित करके पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के प्रति उनका मार्ग-दर्शन करते हैं। सामान्य अर्थ में नेतृत्व से अभिप्राय किसी व्यक्ति विशेष के उस चातुर्य या कौशल से है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों को अपना अनुयायी बना लेता है तथा उनसे अपनी इच्छा के अनुरूप सहर्ष कार्य भी सम्पन्न कराने में सफल हो जाता है।

भारत में अधिकांश सामाजिक तथा प्रशासनिक संगठनों में कुशल नेतृत्व की समस्या निरन्तर विद्यमान रही है। यही कारण है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से श्रेष्ठतम नीतियों एवं कार्यक्रम निरूपित करने के उपरान्त भी हमारे प्रशासनिक संगठन क्रियान्वयन के स्तर पर प्रायः असफलत सिद्ध हुए हैं, क्योंकि प्रभावी नेतृत्व का अभाव रहा है। राज्य की लोक कल्याणकारी अवधारणा के प्रचार-प्रसार के बाद तो नेतृत्व की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। यदि आज किसी संगठन को प्रभावी एवं सफल बनाना है, तो कुशल एवं योग्य नेतृत्व की आवश्यकता अनिवार्य है। नेतृत्व की अनिवार्यता के सम्बन्ध में सैक्लर हडसन ने ठीक ही कहा है, नेतागिरी की समस्याओं का असाधारण महत्व आकार, जटिलता, विशेषीकरण संगठनात्मक तकनीकी विकास तत्वों की वृद्धि के साथ बढ़ गया है। विद्वानों के अनुसार नेतृत्व की निम्नलिखित अवधारणाओं का विश्लेषण छात्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगा। इसे क्रमशः समझने का प्रयास करें-

12.2.1 प्राचीन अवधारणा

नेतृत्व की प्राचीन धारणा के अनुसार नेता अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व द्वारा अपने अनुयायियों से अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने में समर्थ होता है। वह अन्य लोगों पर स्वचालित विधि के द्वारा अधिकार रखता है।

12.2.2 विशेषक अवधारणा

नेतृत्व की इस अवधारणा के अनुसार प्राय नेतृत्व सम्बन्धी अध्ययन नेताओं के गुणों पर ही केन्द्रित रहे। किन्तु एक प्रश्न सदैव से ही अनुउत्तरित रहा है कि कौन से स्थायी गुण व्यक्ति को नेता बनाते हैं? विद्वानों के अनुसार, नेताओं के पास कुछ जन्मजात विशेष अनुवांशिक गुण, चारित्रिक विशेषताऐं और कुछ प्राकृतिक योग्यताऐं होती हैं, जिनके कारण वे नेता बन पाते हैं। अतः एक सफल नेता के प्रमुख विशेषक हैं- प्रतिभा, सामजिक परिपक्वता, आन्तरिक अभिप्रेरणा उपलब्धि की तीव्र इच्छा और मानव सम्पर्क की प्रवृति। इस अवधारणा का मूल है कि नेता जन्म लेते हैं, बनाये नहीं जाते हैं। प्रायः इस सिद्धान्त की सर्वस्वीकृति है। किन्तु निम्नलिखित कारणों से इसकी आलोचना भी होती है-

1. नेता के गुणों के सम्बन्ध में अलग-अलग विद्धानों ने अलग-अलग सूची दी है जो न तो पूर्ण है और न ही अधिकृत मानी जा सकती है। गुणों के चयन का कोई वैज्ञानिक आधार भी आज तक तैयार नहीं किया जा सका है।
2. इस अवधारणा में सफल नेतृत्व के गुणों की मात्रा के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।
3. परिस्थिति सम्बन्धी कारकों की पूर्ण उपेक्षा की गई है।
4. यह मानना भ्रामक है कि नेता जन्मजात होते हैं। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक समाज में प्रायः देखा गया है कि कुछ लोग शिक्षा के माध्यम से भी नेता के गुण आर्जित कर सफल नेता बन जाते है।
5. इस अवधारणा से नेता का आचरण स्पष्ट होता है, किन्तु विभिन्न आधारों पर इसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता है।
6. इस अवधारणा से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि एक नेता में पद के अनुरूप कौन-कौन से गुणों का सम्मिश्रण होना चाहिए।

उपरोक्त बिन्दुओं के निर्वचन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि इस अवधारणा की अनेक आलोचनाऐं हुई हैं, फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि एक सफल नेता में कुछ विशेष गुण अवश्य ही विद्यमान होते हैं जो उसे समूह से अलग कर सैकड़ों-लाखों लोगों के नेतृत्व का अधिकार प्रदान करते हैं।

12.2.3 समूह अवधारणा

इस अवधारणा को मनोवैज्ञानिक की अवधारणा के रूप में पहचाना जाता है। यह अवधारणा इस बात पर जोर देती है कि एक नेता अपने अनुयायिओं को लाभ पहुँचाता है। अनुयायी उन नेताओं पर निर्भर करते हैं, जो उनकी जरूरतों को पूरा कर पाते हैं। वे अपना समर्थन और सहयोग नेताओं को उस समय तक देते रहते हैं, जब तक कि यह नेता प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें लाभ प्रदान करते रहते हैं।

12.2.4 पारिस्थितिक अवधारणा

इस अवधारणा के समर्थकों के अनुसार अब तक समस्त अवधारणाओं की अपर्याप्त पारिस्थितिजन्य कारकों की खोज शुरू की जो नेतृत्व की भूमिकाओं, कुशलताओं और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस अवधारणा के अनुसार नेतृत्व परिस्थितिजन्य हैं और इसी से प्रभावित भी होता है। उपरोक्त विचार का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि नेतृत्व एक ऐसी कला है जिसे परिस्थितियों के अनुरूप उपयोग में लाया जाता है। नेता द्वारा परिवर्तनों को क्रियान्वित करने के लिए अपने अनुयायियों को विश्वास में लेना होता है। नेतृत्व की विभिन्न तकनीकों,

विधियों तथा शैलियों को सदैव समान रूप में लागू करके परिस्थितियों के अनुरूप लागू किया जाता है। इसीलिए नेतृत्व को परिस्थित्यात्मकता से सम्बद्ध किया जाता है।

इस प्रकार नेतृत्व उन दशाओं पर आधारित होता है, जिनमें नेता कार्य करता है। नेतृत्व की समस्त शैलियाँ परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं। परिस्थितियों एवं नेतृत्व शैली के परस्पर सामजस्य से ही नेतृत्व प्रभावशाली होता है। इतिहास में बहुत से उदाहरण मिलते हैं, जिसमें मनुष्य या व्यक्ति परिस्थितिवश नेता बन जाता है और सफल भी रहता है। इस प्रकार एक व्यक्ति को नेता बनाने में परिस्थितिजन्य कारकों की प्रभावी भूमिका होती है। नेतृत्व से सम्बन्धित परिस्थितिजन्य कारकों का वर्गीकरण कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है, इसे समझने का प्रयास करें-

1. सांस्कृति तत्व, जैसे- सामाजिक मूल्य, विश्वास, परम्परा आदि।
2. वैयाक्तिक दृष्टिकोण, जैसे- आयु, शिक्षा, अभिरूचि, प्रेरणायें आदि।
3. कार्य में अन्तर, जैसे- भूमिका, प्रशिक्षण, योग्यता आदि।
4. संगठनात्मक अन्तर, जैसे- स्वामित्व, आकार, उद्देश्य, प्रेरणा आदि।

12.2.5 नवीन अवधारणा

नेतृत्व की इस अवधारणा के अनुसार नेता अपने अनुयायियों को अपने साथ नेतृत्व में सहभागिता लेने का प्रशिक्षण देकर वांछित उद्देश्यों को पूर्ति के लिए कार्य करा सकता है। इसके लिए वह सबके अनुभवों को एककृति और समन्वित करता है। इस प्रकार पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के लिए ये सभी को मान्य होते हैं।

12.3 नेतृत्व की परिभाषा

उपरोक्त अवधारणाओं के पश्चात् नेतृत्व की कुछ प्रमुख परिभाषाओं का अध्ययन करें-

- बरनाई के अनुसार- नेतृत्व किसी व्यक्ति का वह व्यावहारिक गुण है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों को प्रभावित व संगठित करके अभीष्ट कार्य कराने में सफल हो जाता है।
- कीथ डेविस के अनुसार- दूसरे व्यक्तियों को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उत्सुक व उनकी सहर्ष सहमति की स्वीकृति प्राप्त करने की योग्यता को नेतृत्व कहते हैं।
- जॉर्ज आर0 टैरी के अनुसार- नेतृत्व वह क्रिया है, जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति उद्देश्यों के लिए व्यक्तियों को स्वेच्छा से कार्य करने हेतु उन्हें प्रभावित करता है।
- लिविंगस्टोन के शब्दों में- नेतृत्व अन्य लोगों में किसी सामान्य उद्देश्य का अनुकरण करने की इच्छा को जागृत करने की योग्यता है।
- कूंट्स एवं ओ0 डोनेल के अनुसार- किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संदेशवाहक के माध्यम से व्यक्तियों को प्रभावित करने की योग्यता नेतृत्व कहलाती है।
- आर्डवे टीड के अनुसार- नेतृत्व गुणों का वह संयोजन है, जिनके होने से ही नेता, अनुयायियों से कुछ करवाने के योग्य होता है, क्योंकि नेता के प्रभाव से ही अनुयायी कुछ करने को तत्पर होते हैं।
- सेक्टर हडसर के अनुसार- किसी उद्यम के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समान प्रयत्न द्वारा व्यक्तियों को प्रेरित तथा प्रभावित करने के रूप में नेतृत्व को परिभाषित किया है।

- चेस्टर बनोर्ड के अनुसार- नेतृत्व व्यक्तियों के व्यवहार को उद्यमता की ओर निर्देशित करता है, जिसके द्वारा वे किसी संगठित प्रयत्न में संलग्न लोगों की क्रियाओं का मार्गदर्शन करते हैं।

12.4 नेतृत्व की विशेषताऐं

नेतृत्व की उपरोक्त परिभाषाओं विश्लेषण के आधार पर, नेतृत्व की निम्नलिखित विशेषताओं का निरूपण किया जा सकता है। इन विशेषताओं को क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें-

1. नेतृत्व सामूहिक रूप से व्याक्तियों को प्रभावित करने की एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया है।
2. नेतृत्व एक प्रकार का चातुर्य या कौशल है, जिसके द्वारा अन्य व्यक्तियों को अपना अनुयायी बना लेना एवं उनसे अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य सम्पन्न कराने की उनकी सहर्ष सहमति प्राप्त कर लेना सम्भव होता है।
3. व्यक्तियों को एक समूह में बाँधना तथा उन्हें निर्धारित लक्ष्यों की ओर सहर्ष बढ़ने के लिए प्रेरित करना एवं जिस मानवीय गुण के द्वारा सम्भव बनाना होता है, नेतृत्व कहलाता है।
4. नेतृत्व में अनुयायियों का होना प्रमुखतः आवश्यक है, क्योंकि नेतृत्व अनुयायियों या समर्थकों या अधनीनस्थों का ही किया जाता है। बिना समूह के नेता की कल्पना पूर्ण नहीं होती है।
5. नेतृत्व किसी सामान्य लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संगठित लोगों का किया जाता है। बिना लक्ष्य या उद्देश्य न तो कोई संगठन बनता है और न ही उसमें नेतृत्व हो सकता है।
6. नेतृत्व में अनुयायियों के आचरण एवं व्यवहार को प्रस्तावित किया जाता है। इसके माध्यम से अनुयायियों पर नेता का एक प्रभाव पड़ता है। नेता का व्यवहार एवं आचरण अपने आप में एक आदर्श होता है।
7. यह एक सुव्यवस्थित रूप से गतिशील प्रक्रिया है, अर्थात् संगठन में नेतृत्व सदैव विद्यमान रहता है।
8. नेतृत्व के लिए परिस्थितियों को महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि परिस्थितियां ही आवश्यकताओं, हितों, दबावों तथा परिवर्तनों को जन्म देती हैं तथा परिस्थितियों में ही नेतृत्व का परीक्षण होता है।
9. नेतृत्व समान्य उद्देश्य की प्राप्ति या हित पूर्ति के लिए नेता की प्रेरणा तथा समूह के प्रयत्नों का सामूहिक या एकीकृत परिणाम है।
10. प्रशासनिक संगठनों में पदसोपानात्मक दृष्टि से उच्चतम प्रबन्धक ही नेता की भूमिका निभाता है। तथापि यह भी सत्य है कि सभी उच्चतम प्रबन्धक नेता नहीं कहला सकते हैं। बल्कि नेतृत्व से सम्बन्धित आवश्यक योग्यताओं तथा नेतृत्व का आत्मबोध का होना आवश्यक है, क्योंकि संगठन में अधीनस्थों की स्वीकृति तथा सहयोग भी नेतृत्व का आवश्यक भाग है।

नेतृत्व की उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नेतृत्व प्रबन्ध का आन्तरिक भाग है, जो कि प्रबन्धकीय कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रबन्धकीय सफलता का रहस्य कुशल नेतृत्व में ही समाहित है। कोई भी प्रशासनिक संगठन कितना ही अधिक सम्पूर्ण क्यों न हो नेतृत्व को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है।

12.5 नेतृत्व की आवश्यकता

आज की निरन्तर परिवर्तित होती परिस्थितियों में प्रशासनिक संगठनों में नेतृत्व का काफी महत्व है। किसी भी प्रशासनिक संगठन की सफलता या असफलता नेतृत्व की प्रकृति पर निर्भर करती है। इस प्रकार निम्नलिखित कारणों से एक प्रशासनिक संगठन को नेतृत्व की आवश्यकता होती है-

1. कर्मचारियों में सन्तोष विश्वास एवं सुरक्षा की भावना का विकास एवं स्थायित्व प्रदान करने हेतु।
2. कर्मचारियों को उनके कार्य के प्रति मानोबल प्रदान करने एवं प्रोत्साहित करने हेतु।
3. संगठन एवं जनता के प्रति कर्तव्यपरायणता की भावना उत्पन्न करने के लिए।
4. कर्मचारियों में समूह-भावना उत्पन्न करने हेतु।
5. कर्मचारियों में कार्य करने के लिए आन्तरिक दृष्टि उत्पन्न करने हेतु।
6. संगठन के पूर्ण निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्न एवं सफलता प्राप्त करने हेतु।
7. कर्मचारियों में कार्य के प्रति लगाव में वृद्धि हेतु।
8. संगठन की नीतियों के सफल क्रियान्वयन एवं निस्पादन हेतु।
9. सामूहिक गतिविधियों के लिए कर्मचारियों में रूचि उत्पन्न करने के लिए।
10. अपेक्षित कार्य निस्पादन प्राप्त करने तथा अनुशासन बनाये रखने हेतु।

प्रशासनिक संगठन के शीर्ष पर नेता में स्वाभाविक रूप से कतिपय ऐसे विशिष्ट गुण होने चाहिए, जो सहयोगी सदस्यों को प्रभावित कर सकें। वास्तव में नेतृत्व में ''प्रभाव'' शब्द बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रभाव के द्वारा ही अनुयायियों को संगठन के लक्ष्य की ओर प्रेरित किया जा सकता है।

12.6 नेतृत्व के गुण

किसी भी नेता में कुछ विशेष गुण आवश्यक होते हैं। लेकिन गुणों को अभ्यास से पैदा नहीं किया जा सकता, क्योंकि कुछ गुण अन्य की तुलना में अधिक जन्मजात होते हैं। आइये कुछ विशिष्ट और सहजता से पहचाने जाने वाले नेतृत्व सम्बन्धी गुणों को सूचिबद्ध करने का प्रयास करें। ध्यान रहे ये गुण परिवर्तशील है। समय काल, परिस्थिति के अनुसार नेता गुणों में थोड़ा बहुत परिवर्तन करता है, यह एक वास्तविकता है। इन गुणों को समझने का प्रयास करें-

1. निष्ठा, 2. भावनात्मक स्थायित्व एवं मानव भावनाओं की समझ, 3. व्यक्तिगत उत्प्रेरणा एवं सुव्यवस्थित संचार प्रबन्ध, 4. शिक्षा देने की योग्यता- सामाजिक दृष्टि के साथ, 5. विधिक दक्षता एवं अन्य बाहरी पर्यायवरणीय कारकों की समझ, 6. शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा, 7. उद्देश्य एवं निर्देशन की की समझ, 8. उत्साह, मैत्रीभाव एवं स्नेह का भाव, 9. तकनीकी दृष्टि से निपुणता के साथ-साथ बौद्धिक चतुर्थ और 10. चारित्रिक बल एवं कुशल निर्णयन क्षमता।

उपरोक्त गुणों के आलोक में यह कहा जाता है कि नेता को एक आदर्श व्यक्ति जैसे गुणों से युक्त होना चाहिए। यद्यपि सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति का मिलना प्रायः असम्भव होता है। इस प्रकार कोई व्यक्ति समस्त उत्कृष्ट गुणों का अपने अन्दर विकास नहीं कर सकता है। तथापि नेता को आम आदमी या संगठन के अधीनस्थ व्यक्तियों की तुलना में अधिक परिपक्व, परिश्रमी, साहसी तथा मानवीय होना चाहिए। हालांकि इनमें से बहुत से विशेषक मनोवैज्ञानिक शब्दवली के अन्तर्गत आते हैं, लेकिन ये सारे के सारे गुण नेतृत्व की हर परिस्थिति में अनिवार्यतः प्रकट नहीं होते और न प्रत्येक नेता इनके अन्तर्गत आते हैं।

श्रेष्ठ नेतृत्व के द्वारा ही उपक्रम के समस्त अधीनस्थों में प्रबल शक्ति, उत्साह एवं क्रियाशीलता का प्रादुर्भाव किया जा सकता है। साथ ही चमत्कारिक परिणाम प्राप्त करने हेतु आशातीत सफलता प्राप्त हो सकती है। अतः सफल नेतृत्व ही है, जो कि व्यक्तियों के कार्य करने के स्तर को उच्चतर बना देता है तथा उनके व्यक्तित्व को उनकी सीमाओं और क्षमताओं से अधिक प्रभावशाली बनाने में सहयोग प्रदान करता है।

इस प्रकार एक नेता द्वारा नेतृत्व के लिये चयनित शैली उसकी क्षमता को बहुत अधिक प्रभावित करती है। नेतृत्व की शैली संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा देती है। अनुचित शैलियाँ कर्मचारियों में अंसतोष और विरोध की भावना पैदा करती हैं। नेतृत्व की तीन शैलियाँ मानी गई हैं। प्रायः नेतृत्व कर स्थितियों को नजर में रखते हुए विभिन्न अवसरों पर विभिन्न शैलियों को अपनाते हैं।

12.7 नेतृत्व शौलियाँ

नेतृत्व की शैलियों का अध्ययन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं-

12.7.1 एकतंत्रीय शैली

यद्यपि एकतंत्रीय नेतृत्व प्राचीन काल में प्रचलित होने के कारण काफी पुरानी व अविकसित तकनीक है, किन्तु कई परिस्थितियों में यह आज भी क्रियान्वित हो सकती है। इसमें नीति सम्बन्धी और निर्णयात्मक अधिकार पूर्णतः नेता के हाथों में केन्द्रित रहते हैं। नेता ही अपनी मर्जी के अनुसार नीतियों को तय करता है और उनमें परिवर्तन करता है तथा सभी निर्णय स्वयं ही लेता है, फिर चाहे वो सही हो या गलत। इसमें एकतरफा संचार होता है ।

इस प्रकार के नेता अपने मातहतों से बिना सलाह-मशवरा किये नीतियों को स्वीकारने की अपेक्षा करते हैं। ऐसे नेताओं को इस शैली के फलस्वरूप उनके व्यवहार का पूर्वानुमान करना अत्यन्त कठिन होता है। इस प्रकार ये नेता एकाकी रहते हैं और समूह से अलग-थलग बने रहते हैं।

सभी अधीनस्थों को कार्य की विभिन्न गतिविधियों व तकनीकों का प्रत्येक चरण भली-भाँति वह स्वयं समझाता है। ये स्वयं को श्रेष्ठ और अपने मातहतों की हीन, अनुभवरहित और अयोग्य समझते हैं। इस प्रकार के नेतृत्व का सबसे बड़ा लाभ शीघ्र निर्णय ले पाने का होता है। लेकिन यह शैली कर्मचारियों के लिए कष्टकर होती है और उनके अंसतोष का कारण बनती है। इस प्रक्रिया में कर्मचारी संस्थागत लक्ष्यों के प्रति उदासीन हो जाते हैं, क्योंकि किसी कर्मचारी का कार्य प्रशंसा के लायक है अथवा आलोचना के लायक है, इस बात का निर्णय भी समूह द्वारा न होकर नेता द्वारा स्वयं ही लिया जाता है। नेता अधीनस्थों को केवल निर्देश देता है और स्वयं कार्य में सक्रिय भाग नहीं लेता।

वस्तुतः इस शैली का भाव नकारात्मक होता है, क्योंकि इसमें कर्मचारियों को अन्धकार में रखा जाता है। वे अपने को स्वयं असुरक्षित अनुभव करते हैं तथा नेता की भावनाओं को समझे बिना उससे भयभीत रहते हैं। नेता स्वयं इस बात का भी निर्णय लेता है कि अमुक कार्य किस व्यक्ति के द्वारा कराया जाए और उस व्यक्ति को सहयोगी भी दिया जाए या नहीं। नेतृत्व की यह शैली केवल उन्हीं व्यक्तियों पर लागू होता है जो कि कार्य से जी चुराते हैं, किन्तु अपनी नौकरी की पूर्ण सुरक्षा चाहते हैं तथा किसी भी कार्य में स्वयं पहल नहीं करते।

इस प्रकार एकतंत्रीय शैली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि जो कर्मचारी व्यक्ति जो दण्डित होने के भय से ही कार्य करते हैं, वे दण्डित होने के भय से अनुशासित रहते हैं और समर्पित भाव से कार्य करते हैं। जिससे उद्देश्यों को प्राप्ति सरलता से हो पाती है।

12.7.2 सहभागिता नेतृत्व

नेतृत्व की इस शैली को लोकतांत्रिक शैली भी कहते हैं। इस शैली के अन्तर्गत संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नेता अपने कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करते हैं तथा उनके विचारों व सुझावों को आमंत्रित करके, उनसे नीतियाँ तैयार करने में सहयोग प्राप्त करते हैं। इस प्रकार नेतृत्व की इस प्रणाली में कार्य करने वाला नेता अपने अधीनस्थों

की सहभागिता एवं परामर्श को बढ़ाता है, जिससे उनमें एक सशक्त समूह-भावना का संचार होता हैं। वर्तमान में नेतृत्व की यह शैली अधिक प्रचालित है। इस प्रणाली में सामूहिक-चर्चा करके नीतियों का निर्धारण किया जाता है।

संगठन में पारदर्शिता को अपनाया जाता है। किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व मुखिया अपने अधीनस्थों से उचित सलाह लेता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना अभीष्ट कार्य एवं अपना सहयोगी साथी चुनने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र होता है। इस पद्धति में नेतृत्व अपनी प्रशंसा से अपनी कार्य प्रणाली में परिवर्तन करता है। वह स्वयं अधिक कार्य न करते हुए भी समूह के सदस्य रूप में स्वयं को प्रस्तुत करने की ही चेष्टा करता है। वह मानकर चलता है कि मातहतों में निर्णय लेने की क्षमता है, जिससे वो उन्हें विकेन्द्रीकृत अधिकार प्रदान करता है। कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है और उनमें अपने कार्य के प्रति संतुष्टि पैदा होती है। इस शैली की निम्नलिखित विशेषताओं को सूचिबद्ध किया जा सकता है-

- सहभागी शैली में नेतृत्व अपने कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है।
- नेतृत्व, कर्मचारियों की शिकायतों को यथासम्भव न्यूनतम करने का प्रयास करता है।
- नेतृत्व उच्च प्रबन्ध तथा कर्मचारियों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है।
- अधीनस्थों को काम करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा कार्य के प्रति उनका रूख सुधारता है।

उपरोक्त निर्वचन के आलोक में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सहभागिता शैली से मनोबल एवं संतुष्टि बढ़ती है, किन्तु इस प्रकार के नेतृत्व में निर्णय में विलम्ब होता है तथा गुणवत्ता का भी एक प्रश्न होता है। यदि अधीनस्थ कर्मचारी सहभगी नेतृत्व का दुरूपयोग न करें एवं कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वहन सूझ-बूझ के साथ करते रहें तो निःसन्देह सहभागिता नेतृत्व किसी भी प्रशासनिक संगठन को सफलता के द्वार तक पहुँचा कर जनता के प्रति जवाबदेही को सफल सिद्ध कर सकती हैं।

12.7.3 हस्तक्षेप रहित नेतृत्व

नेतृत्व की इस शैली में नेता कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। निर्णय लेने में नेता की सहभागिता बहुत कम होती है। अधीनस्थ स्वयं की प्रेरणा से ही निर्णय करते हैं। इस प्रकार के नेतृत्व को प्रेरणा प्रदान करने के लिए संस्था किसी नेता पर निर्भर नहीं रहती। कर्मचारी ही स्वयं को प्रेरित करते हैं। उन्हें अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त रहती है और निर्णय लेने में नेता की सहभागिता कम से कम होती है। संस्था की कार्यप्रणाली में घटना क्रम को नियमित करने के प्रयास नहीं किये जाते। नेता सिर्फ संस्था में एक सदस्य की भूमिका निभाता है। नेतृत्व की यह शैली कर्मचारियों को अधिक स्वतंत्रता प्रदान करती है।

प्रायः विद्वानों की मान्यता है कि नेतृत्व की यह शैली प्रयोग करने में कठिन है। इसमें नेता एक सूचना केन्द्र की भाँति कार्य करता है, किन्तु उसका नियन्त्रण कार्य एकदम नगण्य होता है। इसमें नेता को कार्य सम्पन्न कराने के लिए अपने अधीनस्थों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। कार्य करने की भावना और दायित्वों के प्रति उनकी संवेदनशीलता ही नेता को कार्य सम्पन्न कराने में सहायक होती है।

वस्तुतः स्वतन्त्र बागडोर सम्भालने वाला नेता अपने कामगारों के समूह का मार्ग-दर्शन नहीं करता, बल्कि उन्हें कार्य करने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र रखता है। इस प्रकार कार्य पूर्ण करने का दायित्व पूर्णरूपेण अधीनस्थों पर ही रहता है, जो स्वयं ही लक्ष्य निर्धारित करते हैं और स्वयं ही अपनी समस्याओं का निराकरण करते हैं। मुखिया तो केवल सम्पर्क रखता है। वह न तो नेता के रूप में अपना योगदान करता है और न ही वह अपने अधिकार व शाक्ति

का ही प्रयोग करता है, वह केवल एक सम्पर्क सूत्र की भाँति कार्य करता है। इस प्रकार की नेतृत्व शैली की उपयोगिता तभी सिद्ध होती है, जबकि अधीनस्थ कर्मचारी कुशल प्रशिक्षित व प्रतिभाशाली हों।

12.8 नीति निर्धारण

नीतियाँ एक प्रकार का विस्तृत विवरण होती हैं, जो कि प्रशासनिक संगठन के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये संगठन के निर्णयों के लिये मार्गदर्शन करने का कार्य करती हैं। यह स्पष्ट करती हैं कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में संगठन के सदस्य किस प्रकार व्यवहार करेंगे तथा निर्णय लेगें। दूसरे शब्दों में एक कुशल प्रशासक सदैव अपने संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित करता है।

12.8.1 नीति निर्धारण की परिभाषा

प्रशासन की सभी क्रियाऐं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही निर्देषित होती हैं। संगठन की क्रियाऐं कुछ निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर निर्देशित की जाती हैं, जिन्हें नीतियों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार नीतियों को उन सिद्धान्तों के रूप में समझा जा सकता है, जो संगठन की क्रियाओं को करती हैं। इस सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं को समझने का प्रयास करें-

- डेल ग्रोडर के अनुसार- नीति, विचार एवं क्रिया का एक पूर्व-निर्धारित मार्ग है, जिसे स्वीकृत लक्ष्यों एवं उद्दश्यों की ओर मार्ग-दर्शक की भाँति सुस्थापित किया जाता है।
- एडविन बी0 फिलिप्पो के अनुसार- नीति एक मानवकृत नियम या कार्यवाही का पूर्व-निर्धारित मार्ग है, जिसकी स्थापना संगठन के उद्देश्यों की ओर कार्य निष्पादन के मार्गदर्शन हेतु की जाती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि नीतियाँ पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने का मार्ग निर्धारित करती हैं। नीतियाँ उन क्षेत्रों एवं सीमाओं को परिभाषित करती हैं, जिनके अन्तर्गत निर्णय लिये जाते हैं, ये प्रबन्ध की क्रियाओं का निर्धारण करती हैं। नीतियों के आधार पर नेतृत्व अपने अधीनस्थों को अधिकारों का भारार्पण कर और उनकी क्रियाओं पर नियन्त्रण रखते हैं।

आज की जटिल सामाजिक संरचना में, एक प्रशासानिक संगठन को निम्नलिखित कारणों से सुव्यवस्थित नीतियों की आवश्यकता होती है- संगठन के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को सुव्यवस्थित ढंग से प्राप्त करने हेतु, संगठन की क्रियाओं पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करने हेतु, निर्णयों के लिये ठोस एवं वास्तविक आधारों के निर्धारण हेतु, निर्णयों में एकरूपता एवं मितव्ययिता प्राप्त करने हेतु, उच्च प्रबन्धक एवं कर्मचारियों के मध्य स्वस्थ सम्बन्धों की स्थापना करने हेतु, कर्मचारियों का मनोबल एवं कार्य स्थल संतुष्टि बढ़ाने हेतु, विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया सरल बनाते हेतु और अनावश्यक कार्य एवं समूह दबाव से मुक्ति पाने हेतु।

12.8.2 नीति के स्वरूप या प्रकार

प्रायः प्रशासनिक संगठनों में नीतियां सरकारी नियमों को ध्यान में रखकर निर्मित की जाती है। इसमें कुछ नीतियां संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये जनहित के लिये बनायी जाती हैं और कुछ नीतियाँ कर्मचारियों की प्रार्थना पर कर्मचारी के कल्याण हेतु बनायी जाती हैं। प्रायः नीतियों के निम्नलिखित रूपों को क्रमबद्ध किया जाता है-

1. **परियोजना नीति-** परियोजना नीति में किसी कार्य विशेष के लिये नीति-निर्माण होता है। जैसे ही कार्य सम्पन्न होता है, इनका समापन हो जाता है। यह प्रायः नवीन कार्यों के लिये बनायी जाती हैं तथा इस पर बहुत अधिक विनियोग की आवश्यकता होती है।
2. **संचालन नीति-** इस प्रकार की नीति का सम्बन्ध संस्था की वास्तविक एवं दैनिक क्रियाओं से होता है। ये मुख्य योजनाओं के आधार पर कर्मचारी प्रबन्ध द्वारा बनायी जाती है। संस्था की पूर्ण सफलता इन्हीं नीतियों पर निर्भर करती है।
3. **प्रशासकीय नीति-** प्रशासकीय नीतियों से आशय ऐसे नीतियों से है, जो उच्च प्रबन्ध द्वारा दीर्घकालीन उद्देश्यों के निर्धारण के लिए किया जाता है। वास्तव में प्रशासनिक नीति संस्था के उद्देश्यों, प्रशासकीय दृष्टिकोण एवं आर्थिक मजबूती का दर्पण होता है। ये सर्वाधिक महत्वपूर्ण, व्यापक एवं दीर्घकालीन नीति होती है।
4. **दीर्घकालीन नीति-** इस प्रकार की नीति लम्बे समय के लिए बनायी जाती है। इससे संस्था के दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। यह प्रायः पाँच से दस वर्षों के लिये होती हैं।
5. **मध्यकालीन नीति-** मध्यकालीन नीति एक वर्ष से पाँच वर्ष के लिए बनायी जाती है। इससे दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।
6. **अल्पकालीन नीति-** अल्पकालीन नीति का आशय छोटी अवधि की योजनाओं से होता है। ये योजनाऐं सामान्यतः मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक बनाई जाती हैं। इनका उद्देश्य तत्कालीन समस्याओं की पूर्ति करना होता है।
7. **विस्तृत नीति-** संस्था की सभी समस्याओं के लिए बनाई गयी नीति को विस्तृत नीति कहते हैं। इसमें संस्था की सभी समस्याओं पर ध्यान दिया जाता है। इसमें सभी विभागों के उद्देश्यों एवं समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण भी किया जाता है।
8. **विभागीय नीति-** विभागीय नियोजन संस्था के अलग-अलग विभागों के लिए किया जाता है- जैसे- क्रय, विक्रय, कर्मचारी, उत्पादन आदि के लिए किया गया नियोजन। इससे विशिष्ट या क्रियात्मक नियोजन भी कहते हैं। यह विस्तृत योजना उद्देश्यों के अनुसार तैयार की जाता है।
9. **उच्च स्तरीय नीति-** इस प्रकार की नीति में प्रशासन द्वारा बनाई गयी योजनाऐं शामिल होती हैं। इनमें पूरी संस्था के लिये नीतियों, उद्देश्यों एवं बाजार का स्पष्ट उल्लेख होता है।
10. **मध्य स्तरीय नीति-** इस प्रकार की नीति विभागीय प्रबन्धकों द्वारा बनायी जाती है। इन नीतियों का उद्देश्य विभागीय उद्देश्यों को पूर्ण करना होता है।
11. **निम्न स्तरीय नीतियाँ-** पर्यवेक्षकों/निरीक्षकों द्वारा बनाई गयी नीतियों को निम्नस्तरीय या अल्पकालीन नीतियाँ कहते हैं। ये नीतियाँ वास्तव में कार्यकारी योजनायें होती हैं।
12. **स्थायी नीति-** स्थायी नीतियों का तात्पर्य उन नीतियों से होता है, जिनका बार-बार प्रयोग अर्थात दोहराव किया जाता है।
13. **अस्थाई नीति-** इस प्रकार की नीतियाँ किन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों को धयान में रख कर बनायी जाती हैं।

12.8.3 नीति की विशेषताऐं

एक अच्छी नीति की विषेशताऐं क्या हो? इस सम्बन्ध में प्रायः विद्वानों, विश्लेषकों एवं प्रशासकों में मतभेद दृष्टिगत होते हैं। इन मतभेदों को कम से कम करने हेतु निम्नलिखित विशेषताओं का चयन किया जा सकता है। इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें-

1. नीति स्पष्ट, सरल तथा सुगम्य होनी चाहिये।
2. नीति संस्था के उद्देश्यों के अनुरूप होनी चाहिये।
3. व्यावहारिक रूप से विभागों की सहमति होनी चाहिये।
4. नीति लोचदार, परिवर्तनीय एवं समयानुकूल होनी चाहिये।
5. सम्भावित पर्यावरणीय कारकों के अनुरूप एवं पर्याप्त होनी चाहिये।
6. तथ्यों एवं आधारों के विश्लेषण पर आधारित होनी चाहिये।
7. सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा विस्तृत कार्यविधि होनी चाहिये।
8. आर्थिक रूप से सरकारी नियमों तथा जनहित के अनुकूल होनी चाहिये।
9. वर्तमान एवं भावी निर्णयों से सामजस्य होने के अनुरूप होनी चाहिये, तथा
10. सम्पूर्ण कार्य-क्षेत्र के तत्वों की सीमाओं को स्पष्ट करने योग्य होनी चाहिये।

ज्ञातव्य हो कि नीति की उपरोक्त विशेषताओं के साथ-साथ निश्चित रूप से समायान्तर पर नीति के अच्छे और बुरे प्रभावों का मूल्यांकन किया जाना चाहिये जिससे महत्तम लाभ हेतु नकारात्मक प्रभावों को दूर करने के लिये समायनुसार आवश्यक संशोधन; जिससे नीति की उपयोगिता- संगठन, जनता एवं कर्मचारियों के हितों को पूर्णता प्रदान कर सके। अध्ययन को पूर्णतः प्रदान करते हुए नीतियों के दो प्रमुख स्वरूप, यथा-दीर्घकालीन और अल्पकालीन के मध्य अन्तरों को विश्लेषण करने का प्रयास करें-

दीर्घकालीन नीतियाँ	**अल्पकालीन नीतियां**
कार्यकाल लम्बी अवधि का होता है।	नीतियों का कार्यकाल कम अवधि का होता है।
नीतियों में लक्ष्यों की प्रकृति बड़ी होती है।	इन नीतियों में अपेक्षाकृत छोटे लक्ष्य लिए जाते हैं।
इन नीतियों के क्रियान्यवयन में लागत अधिक आती है	इन नीतियों को क्रियान्वित करने में लागत कम आती है।
दीर्घकालीन नीतियों की रणनीति का क्षेत्र व्यापक होता है।	अल्पकालीन नीतियों की रणनीति का क्षेत्र सीमित होता है।

सुव्यवस्थित नीतियों के निर्माण से प्रशासन को शीघ्र निर्णय लेने में सुविधा होती है। एक बार संगठन के उद्देश्य निर्धारित हो जाने के पश्चात योजना का निर्माण किया जाता है। इससे समय और प्रयत्नों की बचत होती है तथा कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है। उच्च प्रबन्ध, नीति के आधार पर अपने अधीनस्थों के मामलों के सम्बन्ध में अपने अधिकारों का भारार्पण करते हैं। इस प्रकार सुव्यवस्थित नीति के आधार पर अधीनस्थ अपने कर्तव्यों का निष्पादन प्रभावपूर्ण ढंग से कुशलतापूर्वक करते हैं।

नीतियों की सहायता से कर्मचारियों की क्रियाओं पर नियन्त्रण रखा जाता है, क्योंकि नीतियों में संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये कर्मचारियों की क्रियाऐं निर्देशित होती हैं। इन्हीं नीतियों की सहायता से प्रशासन संगठन की विभिन्न विभागीय क्रियाओं में समन्वय स्थापित करता है, जिससे संगठन की विविध क्रियाओं में समरूपता आ

जाती है। वस्तुतः सुव्यवस्थित, संसगठित एवं सुप्रबन्धित नीतियों से श्रम और प्रबन्ध के सम्बन्ध मधुर रहते हैं, जिससे स्वस्थ एवं दीर्घकालीन सम्बन्धों की स्थापना होती है। जिसका प्रत्यक्ष लाभ जनता को कार्य निष्पादन एवं परदर्शिता के रूप के प्राप्त होता है।

12.9 निर्णयन

प्रत्येक प्रशासनिक संगठन में कार्य दिवसों के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक निरन्तर किसी न किसी प्रकार के निर्णय लेने पड़ते हैं। साधारणतः निर्णयन से तात्पर्य किसी कार्य के लिए क्या करें, कैसे करें, क्या न करें के बीच अन्तिम निर्णय लेने से होता है। चूँकि संगठन में निर्णय लेना प्रशासन का कार्य है, इसलिये प्रशासनिक क्रिया को निर्णय लेने की प्रक्रिया भी कहा जाता है। किसी भी समस्या का समाधान करने के लिये प्रशासक के सम्मुख विभिन्न विकल्प होते हैं।

इन विभिन्न विकल्पों में पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सर्वोत्तम विकल्प का चयन करना ही निर्णयन के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार प्रशासनिक संगठन में निर्णयन रक्त प्रवाहित के समान है। प्रशासक द्वारा सम्पादित कोई भी कार्य निर्णयन पर ही आधारित होते हैं। वस्तुतः निर्णयन की प्रक्रिया में प्रबन्धक द्वारा क्रमशः समस्या की पहचान, विश्लेषण, विकल्पों का चयन और अंततः सर्वोत्तम विकल्प का मूल्यांकन करना होता है।

12.9.1 निर्णयन की परिभाषा

निर्णयन को विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिककोण से परिभाषित किया है, किन्तु दृष्टिकोणों में विविधिता के बाद भी प्रक्रिया एक ही है। निर्णयन की विभिन्न परिभाषाओं को आत्मसात करने का पर्यास करें-

- पीटर एफ0 ड्कर के अनुसार, ''प्रशासन की प्रत्येक क्रिया निर्णय पर आधारित होती है।''
- जार्ज आर0 टैरी के अनुसार, ''निर्णय लेना किसी कसौटी पर आधारित दो या दो से अधिक सम्भावित विकल्पों में से किसी एक का चयन है।''
- अर्नेस्ट डेल के अनुसार, ''प्रशासकीय निर्णय वे निर्णय होते हैं, जो सदैव सही प्रशासकीय क्रियाओं जैसे- नियोजन, संगठन कर्मचारियों की भर्ती, निर्देशन, नियंत्रण, नवप्रवर्तन और प्रतिनिधित्व में से किसी एक के दौरान लिए जाते हैं।
- कुण्टज एवं 'ओ' डोनेल के अनुसार, ''निर्णयन एक क्रिया को करने के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का वास्तविक चयन है। यह नियोजन की आत्मा है।''
- डी0 ई0 मैकफरलैड के अनुसार, ''निर्णय लेना चुनने की एक क्रिया है, जिसके द्वारा प्रशासक एक दी हुई परिस्थितिक में क्या किया जाना चाहिये? इस सम्बन्ध में निष्कर्ष पर पहुँचता है। निर्णय किसी व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका चयन अनेक सम्भव विकल्पों में से किया जाता है।''
- आर0 एस0 डावर के अनुसार, ''निर्णय लेना एक ऐसा चयन है कि जो कि दो या दो से अधिक सम्भावित विकल्पों में से किसी एक व्यवहार के विकल्प पर आधारित होता है। तय करने से आशय काट देना अथवा व्यावहारिक रूप में किसी निष्कर्ष पर आना है।''
- जी0 एल0 एस0 शेकल के अनुसार, ''निर्णय लेना रचनात्मक मानसिक क्रिया का वह केन्द्र-बिन्दु होता है, जहाँ ज्ञान, विचार, भावना तथा कल्पना कार्यपूर्ति के लिये संयुक्त किए जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि निर्णयन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें प्रशासक वर्ग विभिन्न वैकल्पिक विधियों में से सर्वश्रेष्ठ विधि का चयन करता है। अंततः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्णयन प्रशासनिक सफलता के लिए अति आवश्यक प्रक्रिया है।

12.9.2 निर्णयन की विशेषताऐं

निर्णयन की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को सूचिबद्ध कर समझने का प्रयास करें-

1. तर्क पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात ही निर्णयन प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है।
2. निर्णयन, अनेक विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प चयन की प्रक्रिया है।
3. निर्णयन एक प्रशासकीय प्रक्रिया है इसलिए इसमें प्रशासक का पूर्ण ज्ञान, विवेक व अनुमान आदि का सम्मिश्रण होना चाहिए।
4. निर्णयन प्रक्रिया सुव्यवस्थित प्रारम्भ का प्रथम सोपन नियोजन से प्रारम्भ होती है।
5. निर्णयन की प्रकृति धनात्मक व ऋणात्मक दोनों ही प्रकार की हो सकती है।
6. निर्णयन कला और विज्ञान दोनों है। अतः यह साधन है, साध्य नहीं।
7. निर्णयन का मूल्यांकन किया जा सकता है।
8. निर्णयन में समय काल और परिस्थितियों का विषेश महत्व होता है।

उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि निर्णय प्रक्रिया के अन्तर्गत पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अनेक विकल्पों में से किसी एक विकल्प को चुनने का कार्य किया जाता है।

12.9.3 निर्णयन की प्रकृति

वस्तुतः निर्णय प्रायः किसी नीति, नियम, आदेश, निर्देश या नियंत्रण के रूप में होता है। निर्णयन की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्हें बिन्दुवार विश्लेषित कर आत्मसात् करने का प्रयास करें-

1. **एक गत्यात्मक प्रक्रिया-** प्रत्येक प्रशासकीय घटना किसी न किसी रूप में निर्णयन को प्रभावित करती है। यदि पूर्व में कोई समस्या उदय होती है, तो वर्तमान में उस समस्या के समाधान के लिये वैकल्पिक विधियों पर विचार कर सर्वोत्तम विधि का चयन किया जाता है तथा आगे आने वाले समय में उस सर्वोत्तम विधि की सहायता से निर्णय लाया जाता है। इसलिये कहा जा सकता है कि निर्णयन एक नितान्त गत्यातमक प्रक्रिया है।
2. **एक आधार रूप-** निणर्य लेने के पश्चात निर्णयकर्ता को आधार प्राप्त हो जाता है और उसे अपने निर्णय के आधारों के अनुसार ही समस्त नियोजन कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं तथा समस्त प्रशासनिक क्रियाऐं भी इन्हीं निर्णय रूपी आधारों के अनुरूप ही सम्पन्न की जाती है।
3. **मूल्यांकन एवं पुर्नमूल्यांकन-** निर्णयन की प्रक्रिया में लिये गये निर्णयों का मूल्यांकन एवं पुर्नमूल्यांकन करना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि निर्णय के परिणाम का मूल्यांकन करके अपेक्षित परिणामों से उसकी तुलना की जाती है और निर्णयों की साथर्कता का पता लगा कर पुर्नमूल्यांकन किया जा सकता है।

4. **नये उप-निर्णयों की उत्पति-** अनेक निर्णय इस प्रकार के होते हैं, जिनके कारण कभी-कभी अनेक उप-निर्णय लेने पड़ते हैं। अथवा पहले लिये गये निर्णयों की कमियों को दूर करने के लिये नये उप-निर्णय लेने पड़ते हैं। वस्तुतः यह प्रशासक की योग्यता पर निर्भर होता है।
5. **तर्कसंगत प्रक्रिया-** निर्णयन की प्रक्रिया एक तर्कसंगत प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत निर्णयकर्ता को तर्कपूर्ण विधि से विभिन्न उपलब्ध विकल्पों में से सर्वोतम विकल्प का अन्तिम चयन करना होता है। चूँकि यह पूरी प्रक्रिया पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु सम्पादित होती है। अतः यह तर्क संगत प्रक्रिया होती है।

12.9.4 निर्णयन के स्वरूप

निर्णयन प्रशासक की एक सुव्यवस्थित, संगठित तथा क्रमबद्ध प्रक्रिया है। निर्णयन प्रकृति का सम्पन्न विश्लेषण यह इंगित करता है कि एक कुशल प्रशासक समय, काल, परिस्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार के निर्णय लेता है। लोक प्रशासक के विभिन्न विद्वानों ने निर्णय के प्रकारों का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

1. **आवश्यक निर्णय-** प्रशासन की दैनिक क्रियाओं के सम्बन्ध में लिये गये निर्णयों को आवश्यक निर्णय के वर्ग में रखा जाता है। आवश्यक निर्णयों के अन्तर्गत वित्त, सेवीवर्गीय आदि से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में लिये गये निर्णयों को सम्मिलित किया जाता है। इस वर्ग के निर्णय प्रायः उच्च प्रशासकों के द्वारा लिये जाते हैं। संगठन की सफलता से प्रत्यक्ष तौर इस प्रकार के निर्णय सम्बद्ध होते हैं।
2. **अल्पअवधि के निर्णय-** इस प्रकार के निर्णयों को क्रियाशील निर्णयों के रूप में भी जाना जाता है। इस प्रकार के निर्णयों के लिये अपेक्षाकृत कम योग्यता तथा तर्कशाक्ति की आवश्यकता होती है, क्योंकि ऐसे निर्णय संगठन की सामान्य प्रकृति के सम्बन्ध में बार-बार लिये जाते हैं तथा कभी-कभी इनमें अतिशीघ्र परिवर्तन भी करने पड़ते है।
3. **अन्तर-विभागीय निर्णय-** ऐसे निर्णय जो विभिन्न विभागों से सम्बन्धित होते हैं, उन्हें अन्तर-विभागीय निर्णयों के रूप मान्यता दी जाती है। ऐसे निर्णय सभी विभागों के विभागाध्यक्षों के द्वारा सर्वसम्मति से लिये जाते हैं। इस प्रकार के निर्णयों की सहायता से ही प्रशासन की समस्त क्रियायें पूर्व-नियोजित ढंग से पूर्ण की जाती हैं।
4. **एकल विभागीय निर्णय-** ऐसे निर्णय जो विभागीय प्रभारियों के द्वारा अपने विभागों के कार्य निष्पादन में सुधार लाने के सम्बन्ध में लिये जाते हैं, उन्हें एकल विभागीय निर्णय कहते हैं।
5. **व्यक्तिगत निर्णय-** संगठन के किसी पदाधिकारी द्वारा अपने कार्य दायित्व के सम्बन्ध में लिये गये निर्णय व्यक्तिगत निर्णय के रूप में जाने जाते हैं। इस प्रकार के निर्णय संस्था के ऊपर, विभाग के ऊपर तथा आम जनों के लिये बाध्यकारी नहीं होते हैं।

प्रायः प्रशासनिक संगठन में निर्णय लेना प्रशासक का मुख्य कार्य होता है। यदि प्रशासक के कार्यों में से निर्णय लेने का कार्य विरक्त कर दिया जाये, तो निश्चय ही प्रशासन की प्रक्रिया निर्जीव हो जायेगी। वास्तव में जो व्यक्ति निर्णय लेता है वही व्यक्ति उत्तर दायी प्रशासक कहलाता है।

वर्तमान प्रशासनिक परिवेश में प्रशासन को प्रत्येक में निर्णय लेने पड़ते हैं। वास्तव में देखा जाये तो प्रशासक का प्रमुख कार्य प्रशासकीय कार्यों के सम्बन्ध में निणर्य लेना ही है। विभिन्न विद्वानों के अनुसार विभिन्न निर्णयों के आधार पर ही प्रशासकीय कार्यों का ढाँचा निर्मित होता है।

वास्तव में जो प्रशासक सुव्यवस्थित, तर्कसंगत व्यवस्थापूर्ण निर्णय लेने में सफल होता है। उसकी योग्यता का गुणगान सर्वत्र होता है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि यह समझ लिया जाये कि निर्णय लेना एक सर्व स्वीकार्य प्रक्रिया है।

12.9.5 निर्णयन के चरण

विद्वानों द्वारा प्रक्रिया के पाँच चरणों को बताया है। इन्हें समझने का प्रयास करें-

1. **समस्या का निर्धारण-** निर्णयन प्रक्रिया का प्रथम चरण, समस्या का निर्धारण किये बिना उसका उचित समाधान सम्भव नहीं है। निर्णयन की प्रक्रिया का प्रारम्भ किसी समस्या या अवसर के प्रत्यक्ष ज्ञान तथा उसके सम्बन्ध में निर्णय लेने की आवश्यकता से होता है।
2. **समस्या का विश्लेषण-** प्रशासक द्वारा जब समस्या की पहचान कर ली जाती है तथा उसके स्वरूप को आत्मसात् कर लिया जाता है, तब समस्या के विश्लेषण का चरण प्रारम्भ होता है। इस चरण में प्रशासक को उन उद्देश्यों का निर्धारिण करना होता है, जिन्हें वह समस्या के समाधान द्वारा प्राप्त करने की इच्छा रखता है।
3. **विकल्पों की स्थापना-** निर्णयन के तृतीय चरण में प्रशासक उन विकल्पों की खोज करता है, जो कि समस्या के समाधान महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
4. **विकल्पों का मूल्यांकन-** विकल्पों का महत्व इस बात में निहित है कि उनसे किस सीमा तक वांछित समस्या का हल प्राप्त हो सकता है। इस चरण में निर्णयकर्ता विकल्पों के प्रभावों का पूर्वानुमान लगाता है और उसके परिणामों का मूल्यांकन करने का प्रयास करता है।
5. **अन्तिम विकल्प का चयन-** प्रशासकों को निर्णय लेते समय यह देखना पड़ता है कि संगठनात्मक परिस्थितियों तथा सीमाओं की दृष्टि से कौन सा विकल्प सर्वोत्तम तथा अन्तिम होगा, जो विकल्प निर्धारित समस्या का सुव्यवस्थित हल प्रदान कर सके। कम जोखिमपूर्ण हो, मितव्ययी हो, समयानुकूल हो, व्यावहारिक हो, वही विकल्प ही अन्तिम होता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. किस विद्वान के अनुसार, नेतृत्व व्यक्ति का वह व्यावहारिक गुण है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों को प्रभावित व संगठित करके अभष्टि कार्य कराने में सफल हो जाता है।
   क. कीथ डेविस ख. बरनाई ग. टैरी घ. टेलर
2. नेतृत्व की कितनी शैलियों हैं?
   क. चार ख. पाँच ग. तीन घ. दो
3. नेतृत्व की किस शैली का भाव नकारात्मक होता है?
   क. प्रबन्धकीय ख. सहभागिता ग. हस्तक्षेप रहित घ. एक तंत्रीय
4. नेतृत्व, प्रबन्ध का कौन सा भाग है?
   क. बाध्य ख. आन्तरिक ग. मध्य घ. उच्चस्तरीय
5. किस विद्वान के अनुसार नीतियाँ एक पूर्व निर्धारित मार्ग होती हैं?
   क. डेल ग्रोडर ख. फिलिप्पो ग. टेलर घ. मेयो
6. जिन नीतियों में लक्ष्यों की प्रकृति बड़ी होती है, वे किस प्रकार की नीति होती है?

क. दीर्घ कालीन ख. लघुकालीन ग. मध्य कालीन घ. समसामजिक

7. जिन नीतियों के क्रियान्वयन में लागत कम आती है तथा जिनका क्षेत्र सीमित होता है, वे किस प्रकार की नीतियाँ होती हैं?

क. दीर्घ कालीन ख. लघुकालीन ग. मध्यकालीन घ. समसामयिक

12.10 सारांश

लोक सेवा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य किसी समूह, संगठन या संस्था के समूचे कार्य को वांछित उद्देश्यों की ओर संचालित और निर्देशित करने के लिए नेतृत्व प्रदान करना है। सरकारी तंत्र के अन्तर्गत संगठनों के फैलाव, दिनों दिन बढ़ती संख्या के कारण नेतृत्व और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। नेतृत्व का तात्पर्य प्रबन्धकों के उस व्यावहारिक गुण से है, जिसके द्वारा वे अपने अधीनस्थों को प्रभावित करके उनके विश्वास को जीतने का प्रयास करते हैं। उनका स्वाभिमान जाग्रत करते हैं, उनका सहयोग प्राप्त करते हैं तथा अपने अधीनस्थ समुदाय को संगठित करके पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के प्रति उनका मार्ग-दर्शन करते हैं।

नीतियाँ एक प्रकार का विस्तृत विवरण होती हैं, जो कि प्रशासनिक संगठन के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये संगठन के निर्णयों के लिये मार्गदर्शन करने का कार्य करती हैं। यह स्पष्ट करती हैं कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में संगठन के सदस्य किस प्रकार व्यवहार करेंगे तथा निर्णय लेंगे।

प्रत्येक प्रशासनिक संगठन में कार्य दिवसों के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक निरन्तर किसी न किसी प्रकार के निर्णय लेने पड़ते हैं। साधारणतः निर्णयन से तात्पर्य किसी कार्य के लिए क्या करें, कैसे करें, क्या न करें के बीच अन्तिम निर्णय लेने से होता है। चूँकि संगठन में निर्णय लेना प्रशासन का कार्य है, इसलिये प्रशासनिक क्रिया को निर्णय लेने की प्रक्रिया भी कहा जाता है। किसी भी समस्या का समाधान करने के लिये प्रशासक के सम्मुख विभिन्न विकल्प होते हैं।

12.11 शब्दावली

अधिकार- आदेश देने की शक्ति तथा यह निश्चित कर लेना कि इन आदेशों का पालन किया जा रहा है।

प्रशासन- नियमों तथा कानूनों के अन्तर्गत प्रकार्यों को सुनिश्चित करने वाली संस्था।

प्रबंध की सार्वभौमिकता- प्रबन्ध विज्ञान के मूल अथवा प्रमुख तत्व, सिद्धान्त, अवधारणाऐं सभी प्रकार की परिस्थितियों में सभी स्थानों पर लागू होती हैं, व्यवहार में उनका प्रयोग सांस्कृतिक अन्तरों, सम्भावनाओं अथवा परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है।

नेतृत्व- समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों को प्रभावित करने की प्रक्रिया की कला।

निर्णयन- किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन या किसी कार्य के निष्पादन के लिए विवेकपूर्ण चयन।

नियंत्रण- अधीनस्थों के कार्यों का मापन तथा सुधार, जिससे यह आश्वस्त हो सके कि कार्य नियोजन के अनुसार किया गया है।

संकल्पनात्मक कुशलता- संगठन की समस्त गतिविधियों व हितों को समझने तथा संयोजित करने में प्रबन्धक की योग्यता।

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, **2.** ग, **3.** घ, **4.** ख, **5.** क, **6.** क, **7.** ख

12.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हारोल्ड कून्टज एवं हेनीज विचरिच, इशनशियल्स ऑफ मैनेजमेंन्ट, मैग्राहिल इन्टरनेशनल, नई दिल्ली- 2000,
2. प्रशान्त के0 घोष, कार्यालय प्रबन्धन, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, 2000,
3. डॉ0 जे0 के0 जैन, प्रबन्ध के सिद्धान्त, प्रतीक पब्लिकेशन, इलाहाबाद-2002,
4. डॉ0 एल0 एम0 प्रसाद, प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली- 2005,

12.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Barnsard Chester I. Organisation and Mangenent: Harvard Unversity Cambridge 1948,
2. Hicks, Herbert G and Gullett, C. Ray, Organisations: Theory and Behaviour: McGraw Hill Book Company: New York, 1975.
3. Luthans, Fred, Mangement in the Public Service: McGraw Hill Book Company Inc: New York, 1954.
4. Nigo, Felix A and Nigro Lloyd G. Modem Public Administration: Happer and Row Publishers: New York, 1973.
5. Pfiffner, John M.m and Shereood Frank P. Administrative Organisation: Prentice Hall of India Private Ltd. New Delhi, 1968.

12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किसी व्यक्ति में नेतृत्व के गुण जन्मजात होते हैं या फिर इन्हें अर्जित किया जा सकता है? अपना पक्ष प्रस्तुत करें।
2. नेतृत्व सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं को समझाइये।
3. नेतृत्व की विभिन्न क्रियात्मक शैलियों का वर्णन करते हुए, उनके गुण तथा दोषों को क्रमबद्ध करें।
4. नीतियों को वर्गीकृत करते हुए लघुकालीन नीति तथा दीर्घकालीन नीतियों को समझाइये।
5. प्रशासकीय संगठनों के लिये निर्णयों के महत्व का समझाते हुए इसकी सुव्यवस्थित प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को समझाइये।

इकाई- 13 नियोजन, नीति आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 नियोजन
    13.2.1 नियोजन के उद्देश्य
    13.2.2 भारत में नियोजन की आवश्यकता
    13.2.3 नियोजन के प्रकार
    13.2.4 नियोजन की प्रक्रिया
13.3 नीति आयोग
    13.3.1 नीति आयोग की संरचना या गठन
    13.3.2 नीति आयोग के उद्देश्य
    13.3.3 नीति आयोग के कार्य
    13.3.4 नीति आयोग और योजना आयोग में अंतर
13.4 राष्ट्रीय विकास परिषद
    13.4.1 राष्ट्रीय विकास परिषद उद्देश्य
    13.4.2 राष्ट्रीय विकास परिषद की रचना
    13.4.3 राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्य
    13.4.4 मूल्याकंन
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

नियोजन वह प्रक्रिया है जो दूरदर्शिता, विचार-विमर्श तथा उपलब्ध संसाधनों के व्यवस्थित उपयोग पर आधारित है तथा राष्ट्रीय उत्पादन, रोजगार एवं लोगों के सामाजिक कल्याण की पूर्व तैयारी करता है। स्वाधीनता के बाद भारत में आर्थिक विकास के लिये आर्थिक नियोजन की अवधारणा को स्वीकार किया गया। भारत में नियोजन प्रक्रिया में योजना आयोग की केन्द्रीय भूमिका है। योजना आयोग सामान्य रूप से आरम्भ हुआ था परन्तु कुछ ही समय में उसने एक विशाल संगठन का रूप धारण कर लिया।

योजना आयोग में केन्द्र सरकार के सीधे हस्तक्षेप के कारण इसे कई बार आलोचनाओं का सामना भी करना पड़ा है। योजना आयोग ने संविधान की अन्य व्यवस्थाओं जैसे- वित्त आयोग, संघवाद तथा प्रजातंत्र को काफी हद तक प्रभावित किया गया।

नियोजन प्रक्रिया को अधिक लोकतांत्रिक तथा पारदर्शी बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन किया गया। इसके माध्यम से नियोजन प्रक्रिया में राज्यों की भूमिका को बढ़ाने का प्रयास किया गया। नियोजन के इन सभी पहलुओं के बारे में इस इकाई में हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नियोजन के अर्थ एवं उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए विभिन्न प्रकार के नियोजनों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- भारत में नियोजन की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए इस प्रक्रिया में केन्द्रीय भूमिका निभाने वाले योजना आयोग के संगठन तथा कार्यों के सम्बन्ध का विस्तार पूर्वक जान पायेंगे।
- राष्ट्रीय विकास परिषद की रचना एवं कार्यों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- भारत में नियोजन प्रक्रिया के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

13.2 नियोजन

नियोजन का अर्थ है 'पूर्व दृष्टि' अर्थात आगे क्या-क्या कार्य किये जाने हैं (फेयोल)। नियोजन साधनों के संगठन की एक विधि है, जिसके माध्यम से साधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग निश्चित सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। डी0 आर0 गाडगिल के अनुसार ''आर्थिक विकास के लिये नियोजन से यह तात्पर्य है कि नियोजन प्राधिकारी द्वारा आर्थिक गतिविधियों की वाह्य निर्देशन अथवा नियमन करना जो कि अधिकतर मामलों में सरकार या राष्ट्र के रूप में चिन्हित किये जाते हैं।''

योजना आयोग ने अपने प्रपत्र में दर्शाया था, कि नियोजन सम्पूर्ण नीति-निर्माण करने के लिए स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्यों की व्यवस्था है। यह परिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए रणनीति के निर्माण के रूप में भी देखी जा सकती है। नियोजन निश्चित ही साधन एवं साध्य के एक सफल संयोजन का प्रयास है।

13.2.1 नियोजन के उद्देश्य

नियोजन के मुख्यतः तीन के उद्देश्य होते हैं-

1. **आर्थिक उद्देश्य-** नियोजन का आर्थिक उद्देश्य अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, नियोजन में राष्ट्रीय आय का समान वितरण तथा अविकसित क्षेत्रों का विकास है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों को जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करके असमानता को दूर करना तथा जीवन स्तर को उच्च करने के लिये उत्पादन के समस्त क्षेत्रों- कृषि, उद्योग, खनिज आदि में बढ़ोत्तरी करना है।

   इसके अतिरिक्त नियोजन के उद्देश्यों में सम्मिलित है- आर्थिक विकास को बढ़ावा देना, सामाजिक न्याय, पूर्ण रोजगार की प्राप्ति, गरीबी निवारण एवं रोजगार अवसरों का सृजन, आत्म निर्भरता की प्राप्ति, निवेश एवं पूँजी निर्माण को बढ़ावा, आम वितरण एवं क्षेत्रीय विषमता दूर करना, मानव संसाधन तथा वैश्वीकरण के दौर में गरीबों को सुरक्षा प्रदान करना, तीव्र आर्थिक विकास के साथ समावेशी विकास की संकल्पना।
2. **सामाजिक उद्देश्य-** नियोजन का सामाजिक उद्देश्य एक विकसित एवं समता मूलक वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करना है।

3. **राजनीतिक उद्देश्य-** नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य देश में राजनीतिक स्थिरता बनाये रखना है जो कि एक सशक्त अर्थव्यवस्था तथा विकसित समाज द्वारा सम्भव है।

13.2.2 भारत में नियोजन की आवश्यकता

आर्थिक नियोजन आधुनिक काल की नवीन प्रवृत्ति है जोकि मुख्यतः समाजवादी विचारधारा द्वारा पोषित राष्ट्रों की पहचान रही है। 19वीं शताब्दी में पूँजीवाद, व्यक्तिवाद व व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा उन्मुक्त व्यापार नीति का बोलबाला रहा। पर रूसी क्रान्ति, विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी, दो भीषण महायुद्धों, तकनीकी प्रगति, नवजात सामाजिक-आर्थिक समस्याओं, आदि के कारण राष्ट्रों एवं अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक नियोजन के अर्थ को समझा और नियोजित अर्थव्यवस्था अपनाने पर जोर दिया।

भारत में कई कारणों से आर्थिक नियोजन की आवश्यकता महसूस की गई। निर्धनता, विभाजन से उत्पन्न असन्तुलन तथा अन्य समस्याऐं, बेरोजगारी, औद्योगीकरण की आवश्यकता, सामाजिक एवं आर्थिक विषमताऐं इत्यादि।

भारत काफी पिछड़ा और आर्थिक रूप से कमजोर राष्ट्र था तथा नियोजित विकास ही एकमात्र आशा की किरण थी जो कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के साथ ताल-मेल बैठाकर गाँवों तक विकास एवं आत्मविश्वास को पहुँचा सकने में समर्थ थी।

13.2.3 नियोजन के प्रकार

नियोजन के अनेक प्रकार हैं-

1. **परिप्रेक्ष्यात्मक नियोजन-** परिप्रेक्ष्यात्मक नियोजन से हमारा तात्पर्य एक दीर्घकालिक नियोजन से होता है। उदाहरण के लिए 15, 20 या 25 वर्ष तक के लिए नियोजन, पर इसका यह अर्थ नहीं होता है कि पूरे काल के लिये एक ही नियोजन हो। अभिविन्यास(Orientation) के आधार पर नियोजन या तो निर्देशात्मक या फिर आदेशात्मक होते हैं। समाजवादी देशों में नियोजन आदेशात्मक होता है, जिसमें कि प्राधिकारी यह निर्णय लेता है कि किस क्षेत्र में कितनी राशि का निवेश किया जायेगा तथा उत्पादों का मूल्य, मात्रा एवं प्रकार क्या होना चाहिए? इस प्रकार के नियोजन में उपभोक्ता की सम्प्रभुता न्यून होती है और वस्तुओं का सीमित वितरण किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ निर्देशात्मक नियोजन की प्रकृति लचीली होती है। निर्देशात्मक नियोजन मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषता है। जहाँ निजी और सार्वजनिक क्षेत्र एक साथ अस्तित्व में होते हैं, वहाँ राज्य निजी क्षेत्र को हर एक प्रकार की सुविधाऐं उपलब्ध कराता है। परन्तु आदेशित नहीं करता, वरन् उन क्षेत्रों को इंगित करता है, जहाँ यह नियोजन को लागू करने में मदद कर सकता है। निर्देशात्मक नियोजन स्वतंत्रता एवं नियोजन की बीच पूर्ण समझौता प्रस्तुत करता है जो कि मुक्त बाजार एवं नियोजित अर्थव्यवस्थाओं के गुणों को अंगीकार कर लेती है और अवगुणों का सफलतापूर्वक परिवर्जन कर देती है। यह सर्वप्रथम 1947 से 1950 के बीच फ्रान्स में लागू किया गया था।
2. **केन्द्रीकृत अथवा विकेन्द्रीकृत-** योजनाओं के कार्यान्वयन के आधार पर नियोजन केन्द्रीकृत अथवा विकेन्द्रीकृत होता है। केन्द्रीकृत नियोजन के अन्तर्गत देश के सम्पूर्ण नियोजन की प्रक्रिया एक केन्द्रीय प्राधिकरण के अन्तर्गत होती है। इस प्रकार का नियोजन प्रारम्भ में समाजवादी देशों, मुख्य रूप से सोवियत रूस द्वारा प्रयोग में लाया जाता था, जब वे आदेशात्मक या व्यापक नियोजन लागू कर रहे होते थे। वहीं दूसरी ओर विकेन्द्रीकृत नियोजन जैसे कि जिला, ब्लाक, गांव के स्तर पर योजना के क्रियान्वयन

से सम्बन्धित होता है। जब किसी अर्थव्यवस्था का नियोजन विशेष क्षेत्र या भाग तक सीमित रहता है तो इसे क्षेत्रीय नियोजन कहते हैं। क्षेत्रीय नियोजन को हम आंशिक नियोजन भी कहते हैं। राष्ट्रीय नियोजन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को एक समष्टि मानकर नियोजन करता है, जिसका संचालन देश में किसी केन्द्रीय निकाय द्वारा होता है। राष्ट्रीय नियोजन को हम विस्तृत नियोजन कहते है।

3. **संरचनात्मक नियोजन-** संरचनात्मक नियोजन आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक ढ़ाँचे में वांछित परिवर्तन को महत्व प्रदान करता है। यह तुलनात्मक रूप से दीर्घकालिक नियोजन है और सामान्य तथा विकासशील एवं समाजवादी देश इनका अनुकरण करते हैं।
4. **क्रियात्मक नियोजन-** क्रियात्मक नियोजन वह नियोजन है, जो समय विशेष पर प्रचलित तथा अस्तित्ववान सामाजिक-आर्थिक ढ़ाँचे को बनाये रखने तथा उसको मजबूती देने को अपना लक्ष्य मानता है। सामान्यतया इसका सम्बन्ध विकसित देशों से है।

   योजना के प्रकार के अन्तर्गत कुछ अन्य प्रकार भी हैं। जैसे- लचीला और गैर-लचीला नियोजन, भौतिक तथा वित्तीय नियोजन इत्यादि।

भौतिक नियोजन का सम्बन्ध मानव शक्ति, मशीनों एवं कच्चे माल के अनुकूलतम वितरण एवं राशनिंग से है, जो देश के उत्पादन में वृद्धि करके विकास प्रक्रिया को गति प्रदान कर सकती है। वित्तीय नियोजन का सम्बन्ध मुद्रा के रूप में संसाधनों की व्यवस्था एवं वितरण से है जो विकास प्रक्रिया हेतु वांछित है।

लचीली नियोजन प्रणाली वास्तव में प्रावैगिक नियोजन प्रणाली है, जिसमें कार्य-विधि को प्रावैगिक आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार संशोधित एवं परिमार्जित किया जाता है। गैर-लचीला नियोजन एक स्थिर नियोजन प्रणाली है, जिसमें पूर्व निर्धारित लक्ष्यों एवं कार्यविधि में परिवर्तन नहीं होता, चाहे स्थितियां अनुकूल हों या प्रतिकूल।

13.2.4 नियोजन प्रक्रिया

नियोजन प्रक्रिया काफी जटिल एवं समय लेने वाली होती है। जिसे पांच भागों में बांटा जा सकता है-

1. **प्रथम चरण-** यह योजना अवधि के प्रारम्भ से लगभग तीन वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो जाता है। इस चरण में योजना आयोग द्वारा अर्थव्यवस्था की जानकारी प्राप्त करने के लिये कई सर्वेक्षण, अध्ययन एवं परीक्षण सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं एवं विभिन्न मंत्रालयों व उनकी आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाया जाता है। इसके आधार पर एक खाका तैयार किया जाता है, जो मंत्रीपरिषद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसके बाद इसे राष्ट्रीय विकास परिषद को भेजा जाता है।
2. **द्वितीय चरण-** इस चरण में योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद से प्राप्त दिशा-निर्देशों के आधार पर योजना का संशोधन और उसे विस्तृत स्वरूप प्रदान करते हुये प्रारूप तैयार करता है।
3. **तृतीय चरण-** इस चरण में योजना को राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के बाद प्रारूप को सार्वजनिक विचार-विमर्श हेतु आगे कर दिया जाता है तथा इसके अन्त में इस प्रारूप पर परामर्शदात्री समिति तथा पूरी संसद द्वारा विचार किया जाता है।
4. **चतुर्थ चरण-** इस चरण में योजना आयोग केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और राज्य सरकारों से उनकी योजनाओं के बारे में विस्तृत विचार-विमर्श करता है। साथ ही निजी क्षेत्र के प्रमुख उद्योगों के प्रतिनिधियों के साथ भी विचार-विमर्श किया जाता है। इसके बाद योजना की विशेषताऐं, मुद्दे,

प्राथमिकताऐं आदि रेखांकित करते हुये योजना आयोग एक प्रपत्र तैयार करता है, जो पहले राष्ट्रीय विकास परिषद तथा बाद में संसद के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

5. **पंचम चरण-** इस प्रपत्र के आधार पर योजना आयोग द्वारा योजना का अंतिम प्रतिवेदन तैयार किया जाता है, जिसे केन्द्रीय मंत्रालय एवं राज्य सरकारों को उनके विचार जानने हेतु भेजा जाता है। बाद में राष्ट्रीय विकास परिषद से इसका अनुमोदन कराकर संसद द्वारा स्वीकृति प्राप्त की जाती है।

इसके पश्चात सुगम कार्यान्वयन तथा संसाधनों के आवंटन हेतु इसे वार्षिक आयोजनाओं में विभक्त किया जाता है। योजना का कार्यान्वयन केन्द्रीय मंत्रालयों एवं राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है।

13.3 नीति आयोग (NITI Aayog)

स्वाधीनता के बाद हमारे देश ने तत्कालीन सोवियत संघ के समाजवादी शासन की संरचना को अपनाया, जिसमें योजनाऐं बनाकर काम किया जाता था। पंचवर्षीय तथा एकवर्षीय योजनाएँ काफी लंबे समय तक देश में चलती रहीं। योजना आयोग ने नियोजन इकाई के रूप दशकों तक योजनाएँ बनाने के काम को अंजाम दिया। लेकिन केन्द्र में सत्ता परिवर्तन होने के बाद 1 जनवरी 2015 को योजना आयोग के स्थान पर केन्द्रीय मंत्रिमंडल के एक संकल्प पर नीति आयोग का गठन किया गया। इसमें सहकारी संघवाद की भावना को केंद्र में रखते हुए अधिकतम शासन, न्यूनतम सरकार के दृष्टिकोण की परिकल्पना को स्थान दिया गया।

नीति आयोग, योजना आयोग के स्थान पर गठित एक नई संस्था है। बीतते वर्षों के साथ सरकार का संस्थागत ढांचा विकसित और परिपक्व हुआ है। इससे कार्यक्षेत्र में विशेषज्ञता विकसित हुई है,जिसने संस्थाओं को सौंपे गए कार्यों की विशिष्टता बढ़ाई है। नियोजन की प्रक्रिया के सन्दर्भ में शासन की प्रकिया को शासन की कार्यनीति से अलग करने साथ ही साथ उसे ऊर्जावान बनाने की जरुरत है। शासन संरचना के सन्दर्भ मे हमारे देश की जरूरतें बदली हैं। ऐसे में एक ऐसे संस्थान की स्थापना की आवश्यकता है जो सरकार के दिशात्मक और नीति-निर्धारक (थिंक टैंक) के रूप में कार्य करे। प्रस्तावित संस्थान प्रत्येकक स्तर पर नीति निर्धारण के प्रमुख तत्वों के बारे में महत्वेपूर्ण और तकनीकी सलाह देगा। इसमें आर्थिक मोर्चे पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आयात के मामले, देश के भीतर और अन्य देशों में उपलब्ध सर्वोत्तम प्रक्रियाओं के प्रसारए नये नीतिगत विचारों को अपनाने और विषय आधारित विशिष्ट सहायता शामिल है। यह संस्थान लगातार बदल रहे एकीकृत विश्व के अनुरूप कार्य करने में सक्षम होगा, भारत जिसका एक भाग है।

संस्थान के तहत व्यवस्था में केन्द्र से राज्यों की तरफ चलने वाले एक पक्षीय नीतिगत क्रम को एक महत्वपूर्ण विकासवादी परिवर्तन के रूप में राज्यों की वास्तविक और सतत् भागीदारी से बदल दिया जाएगा। त्वरित गति से कार्य करने के लिए और सरकार को नीति दृष्टिकोण उपलब्ध कराने के साथ.साथ प्रासंगिक विषयों के सन्दर्भ में संस्थान के पास आवश्यक संसाधन, ज्ञान, कौशल और क्षमता होगी।

सबसे महत्वपूर्ण यह है कि विश्व के सकारात्मक प्रभावों को अपनाते हुए संस्थान को इस नीति का पालन करना होगा कि भारत के परिप्रेक्ष्य में एक ही मॉडल प्रत्यारोपित नहीं किया जा सकता है। विकास के लिए हमें अपनी नीति स्वंय निर्धारित करनी होगी। देश में और देश के लिए क्या हितकारी है, संस्थान को इस पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जो विकास के लिए भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित होगा। इन आशाओं को जीवंत बनाने के लिए संस्थान है- नीति आयोग (भारत परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय संस्थान, National Institutions for

Transforming India)। इसे राज्य सरकारों, संसद सदस्यों, विषय विशेषज्ञ और संबंधित संस्थानों सहित तमाम हित धारकों के बीच गहन विचार-विमर्श के बाद प्रस्तावित किया गया। आयोग एक बहू-सदस्यीय संस्था है। योजना आयोग 64 वर्ष तक अस्तित्व में रहा, लेकिन देश की आर्थिक, सामाजिक, आवश्यकताओं को देखते हुए योजना आयोग में भी सुधार या बदलाव की आवश्यरकता महसूस होने लगी। पूर्ववर्ती योजना आयोग में 30 अप्रैल, 2014 को अपने आखिरी संबोधन में तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पूछा था ''कहीं हम अब भी उन्हीं साधनों और तौर-तरीकों का तो इस्तेमाल नहीं कर रहे जो बहुत पहले के लिए निर्धारित किए गए थे, क्या हमने आयोग में अधिक पारम्परिक क्रियाकलापों की पुनर्संरचना किए बगैर, नये कार्य तथा स्तर जोड़ लिए हैं'' इसलिए जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 15 अगस्त, 2014 को अपने पहले स्वतंत्रता दिवस संबोधन में कहा कि वे योजना आयोग की जगह नई संस्था बनाना चाहते हैं तो वे साझा भावना को ही अभिव्यक्ति दे रहे थे। तदुपरान्त 1 जनवरी, 2015 को उन्होंने भारत परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय संस्था अथवा नीति आयोग के सृजन की घोषणा की। योजना आयोग की ही तरह प्रधानमंत्री ही नीति आयोग के अध्यक्ष हैं।

13.3.1 नीति आयोग की संरचना या गठन

नीति आयोग की संरचना योजना आयोग का ही प्रतिरूप है योजना आयोग की तरह ही भारत के प्रधानमंत्री नीति आयोग के पदेन अध्यक्ष हैं। नीति आयोग के पहले उपाध्यक्ष अरविंद पनगढ़िया थे। आयोग की संरचना में एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष के साथ-साथ पूर्णकालिक, पदेन और विशेष आमंत्रित सदस्यों के अतिरिक्त एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। नीति आयोग की संरचना में-

1. अध्यक्ष, भारत के प्रधानमंत्री।
2. गवर्निंग काउंसिल में राज्यों के मुख्यमंत्री और केन्द्रशासित प्रदेशों (जिन केन्द्रशासित प्रदेशों में विधानसभा है, वहाँ के मुख्यमंत्री) के उपराज्यपाल शामिल होंगे।
3. विशिष्ट मुद्दों और ऐसे आकस्मिक मामले, जिनका संबंध एक से अधिक राज्य या क्षेत्र से हो, को देखने के लिए क्षेत्रीय परिषद गठित की जायेंगी। ये परिषदें विशिष्ट कार्यकाल के लिए बनाई जायेंगी। भारत के प्रधानमंत्री के निर्देश पर क्षेत्रीय परिषदों की बैठक होगी और इनमें संबंधित क्षेत्र के राज्यों के मुख्यमंत्री और केन्द्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल शामिल होंगे (इनकी अध्यक्षता नीति आयोग के उपाध्यक्ष करेंगे)।
4. संबंधित कार्यक्षेत्र की जानकारी रखने वाले विशेषज्ञ और कार्यरत लोग, विशेष आमंत्रित के रूप में प्रधानमंत्री द्वारा नामित किए जाएंगे।

पूर्णकालिक संगठनात्मक ढ़ाँचे में (प्रधानमंत्री अध्यक्ष होने के अलावा) निम्न होंगे।

- उपाध्यक्ष- प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त।
- सदस्य- पूर्णकालिक
- अंशकालिक सदस्य- अग्रणी विश्वविद्यालय शोध संस्थानों और संबंधित संस्थानों से अधिकतम दो पदेन सदस्य, अंशकालिक सदस्य बारी के आधार पर होंगे।
- पदेन सदस्य- केन्द्रीय मंत्रिपरिषद से अधिकतम चार सदस्य प्रधानमंत्री द्वारा नामित होंगे। यदि बारी के आधार को प्राथमिकता दी जाती है तो यह नियुक्ति विशिष्ट कार्यकाल के लिए होंगी।

- मुख्य कार्यकारी अधिकारी- भारत सरकार के सचिव स्तर के अधिकारी को निश्चित कार्यकाल के लिए प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किया जाएगा।

13.3.2 नीति आयोग के उद्देश्य

1. नीति आयोग के उद्देश्यों को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं-
2. राज्यों की सक्रिय भागीदारी के साथ राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं, क्षेत्रों और रणनीतियों का एक साझा दृष्टिकोण विकसित करना।
3. सशक्त राज्य ही सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं, इसको स्वीकार करते हुए राज्यों के साथ सतत् आधार पर संरचनात्मक सहयोग की पहल और तंत्रों के माध्यम से सहयोगपूर्ण संघवाद को बढ़ावा देना।
4. ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजनाएं तैयार करने के लिए तंत्र विकसित करना और इन सभी को उत्तरोत्तर रूप से सरकार के उच्चतर स्तर तक पहुँचाना।
5. जो क्षेत्र विशेष रूप से आयोग को निर्दिष्ट किए गए हैं उनकी आर्थिक रणनीति और नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों को सम्मिलित करने को सुनिश्चित करना।
6. हमारे समाज के उन वर्गों पर विशेष रूप से ध्यान देना जिन तक आर्थिक प्रगति से उचित प्रकार से लाभान्वित ना हो पाने का जोखिम हो।
7. रणनीतिक और दीर्घावधि के लिए नीति तथा कार्यक्रम का ढांचा तैयार करना और पहल करना तथा उनकी प्रगति और क्षमता को मॉनीटर करना। अनुवीक्षण और प्रतिक्रिया के आधार पर नवीन सुधार में उपयोग किए जाएंगे, जिसके अंतर्गत मध्यावधि संशोधन भी हैं।
8. महत्वपूर्ण पणधारियों तथा समान विचारधारा वाले राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय थिंक टैंक और साथ ही साथ शैक्षिक और नीति अनुसंधान संस्थाओं के बीच परामर्श और भागीदारी को प्रोत्साहन देना।
9. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों, वृतिकों तथा अन्य भागीदारों के सहयोगात्मक समुदाय के माध्यम से ज्ञान, नवाचार एवं उद्यमशीलता सहायक प्रणाली बनाना।
10. विकास के एजेंडे के कार्यान्वयन में तेजी लाने के क्रम में अंतर-क्षेत्रीय और अंतर-विभागीय मुद्दों के समाधान के लिए एक मंच प्रदान करना।
11. अत्याधुनिक संसाधन केन्द्र बनाना जो सुशासन तथा सतत् और न्यायसंगत विकास की सर्वश्रेष्ठ कार्यप्रणाली पर अनुसंधान करने के साथ-साथ हितधारियों (Stake holder) तक पहुँचाने में भी मदद करे।
12. आवश्यक संसाधनों की पहचान करने सहित कार्यक्रमों और उपायों के कार्यान्वयन का सक्रिय मूल्यांकन और सक्रिय अनुवीक्षण करना, ताकि सेवाएं प्रदान करने में सफलता की संभावनाओं को प्रबल बनाया जा सके।
13. कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन और क्षमता निर्माण पर जोर।
14. राष्ट्रीय विकास का एजेंडा और उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्य आवश्यक गतिविधियों का उत्तर दायित्व लेना।

13.3.3 नीति आयोग के कार्य

आईये नीति आयोग के कार्यों को निचे दिये गये बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. राष्ट्रीय उद्देश्यों की रोशनी में राज्यों की सक्रिय भागीदारी के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं के क्षेत्रों और रणनीतियों की एक साझा दृष्टि विकसित करना।
2. निरंतर आधार पर राज्यों के साथ संरचित समर्थन पहल (Structured support initiative) और तंत्र के माध्यम से सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना, यह स्वीकार करना कि मजबूत राज्य एक मजबूत राष्ट्र बनाते हैं।
3. गाँव स्तर पर विश्वसनीय योजनाएँ बनाने के लिए तंत्र विकसित करना और सरकार के उच्च स्तरों पर इन्हें उत्तरोत्तर विकसित करना।
4. यह सुनिश्चित करने के लिए कि उन क्षेत्रों पर जो विशेष रूप से इसके लिए सन्दर्भित हैं कि आर्थिक रणनीति और नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों को शामिल किया गया है।
5. समाज के उन वर्गों पर विशेष ध्यान देना जो आर्थिक प्रगति से से लाभान्वित नहीं होने के जोखिम में हो सकते हैं।
6. रणनीतिक और दीर्घकालिक नीति, कार्यक्रम ढ़ाँचे और पहलों को डिजाइन करने के लिए उनकी प्रगति और उनकी प्रभावकारिता की निगरानी करें। निगरानी और प्रतिक्रिया के माध्यम से सीखे गये पाठों का उपयोग नवीन सुधार करने के लिए किया जाएगा, जिसमें आवश्यक मध्य.पाठ्यक्रम सुधार भी शामिल हैं।
7. प्रमुख हित धारकों और राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समान विचारधारा वाले थिंक टैंकों के साथ-साथ शैक्षिक और नीति अनुसंधान संस्थानों के बीच भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए।
8. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों, चिकित्सकों और अन्य भागीदारों के एक सहयोगी समुदाय के माध्यम से एक ज्ञान,नवाचार और उद्यमशीलता सहायता प्रणाली बनाने के लिए।
9. विकास एजेंडा के कार्यान्वयन में तेजी लाने के लिए अंतर-क्षेत्रीय और अंतर-विभागीय मुद्दों के समाधान के लिए एक मंच प्रदान करना।
10. अत्याधुनिक संसाधन केंद्र को बनाए रखने के लिए सुशासन, सतत् और न्यायसंगत विकास में सर्वोत्तम प्रथाओं के साथ-साथ हितधारकों को उनके प्रसार में मदद करने के लिए अनुसंधान का एक भंडार हो।
11. आवश्यक संसाधनों की पहचान सहित कार्यक्रमों और पहलों के कार्यान्वयन की सक्रिय रूप से निगरानी और मूल्यांकन करना, ताकि सफलता की संभावना और वितरण की गुंजाइश को मजबूत किया जा सके।
12. कार्यक्रमों और पहलों के कार्यान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन और क्षमता निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना।
13. राष्ट्रीय विकास एजेंडे के क्रियान्वयन को आगे बढ़ाने के लिए और उपरोक्त उल्लिखित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अन्य गतिविधियाँ करना आवश्यक हो सकता है।

13.3.4 नीति आयोग और योजना आयोग में प्रमुख अंतर

नीति आयोग	योजना आयोग
नीति आयोग एक सलाहकार थिंक टैंक के रूप में	योजना आयोग ने एक संवैधानिक निकाय के रूप में

कार्य करता है।	कार्य किया था, जबकि इसे संवैधानिक स्थिति प्राप्त नहीं थी।
नीति आयोग सदस्यों की व्यापक विशेषज्ञता पर बल देता है।	जब कि योजना आयोग सदस्यों की विशेषज्ञता पर निर्भर था।
नीति आयोग सहकारी संघवाद की भावना पर कार्य करता है, क्योंकि यह राज्यों की समान भागीदारी सुनिश्चित करता है।	योजना आयोग की वार्षिक योजना बैठकों में राज्यों की भागीदारी बहुत कम रहती थी।
प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त सचिवों को CEO के रूप में जाना जाता है।	योजना आयोग में सचिवों को सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से नियुक्त किया जाता था।
नीति आयोग जमीनी स्तर से उपर की ओर कार्य करने पर विश्वास करता है।	जबकि योजना आयोग उपर से निचे की ओर कार्य करता था।
नीति आयोग को नीतियाँ लागू करने का अधिकार नहीं है।	योजना आयोग राज्यों के लिये नीतियाँ बनाता था और स्वीकृत परियोजनाओं के लिये धन आवंटित करता था।
नीति आयोग को धन आवंटित करने की शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। वो शक्ति वित्त मंत्री में निहित है।	जबकि योजना आयोग को मंत्रालयों और राज्य सरकारों को धन आवंटित करने की शक्तियाँ प्राप्त थीं।

योजना आयोग की तुलना में नीति आयोग को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिये इसे बजटीय प्रावधानों में स्वतंत्रता होनी चाहिये और यह योजना तथा गैर-योजना के रूप में नहीं, बल्कि राजस्व और पूँजीगत व्यय की स्वतंत्रता के रूप में होनी चाहिये। इस पूँजीगत व्यय की वृद्धि से अर्थव्यवस्था में सभी स्तरों पर बुनियादी ढ़ाँचे का घाटा दूर हो सकता है।

13.4 राष्ट्रीय विकास परिषद

केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन तथा समायोजन की आवश्यकता को देखते हुये, राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना 6 अगस्त 1952 को की गयी। यह एक संविधानोत्तर निकाय है, जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है और इस परिषद को 'सर्वोपरि कैबिनेट' भी कहते हैं। राष्ट्रीय योजना प्रक्रिया में जिला, राज्य, क्षेत्रीय स्तर के मध्य जोड़ की कड़ी प्रदान करने वाला उपयुक्त निकाय राष्ट्रीय विकास परिषद है। राष्ट्रीय विकास परिषद योजना आयोग से एक उच्च निकाय है, वस्तुतः यह एक नीति-निर्मात्री निकाय है। के0 संथानम का कथन है कि 'राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थिति सम्पूर्ण भारतीय संघ के उच्च मंत्रिमण्डल के समकक्ष है।' अर्थात उसने एक ऐसे मंत्रिमण्डल का रूप धारण कर लिया है जो भारत सरकार और साथ ही सभी राज्यों की सरकारों के लिये कार्य कर रही है।

राष्ट्रीय स्तर पर योजना बनाने का प्रयत्न करते समय सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह उत्पन्न होती है कि भारतीय संघ में समाविष्ट स्वायत्त राज्यों की नीतियों तथा कार्यक्रमों में समन्वय कैसे स्थापित किया जाए। इसके लिए राष्ट्रीय विकास परिषद को एक सशक्त निकाय के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी। डॉ0 सी0 पी0 भाम्बरी ने

कहा है कि 'योजना सम्बन्धी मामलों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य समायोजन की स्थापना के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापित की गयी।'

13.4.1 राष्ट्रीय विकास परिषद उद्देश्य

योजना के समर्थन में राष्ट्र के साधनों तथा प्रयत्नों का उपयोग करना और उन्हें शक्तिशाली बनाना, सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सामान्य आर्थिक नीतियों को उन्नत करना तथा योजना आयोग की सिफारिश पर देश के सभी भागों का संतुलित तथा त्वरित विकास निश्चित करना। इसके तीन प्रमुख उद्देश्य हैं-

1. योजना की सहायता के लिये राष्ट्र के स्रोतों तथा परिश्रम को सुदृढ़ करना तथा उनको गतिशील करना।
2. सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में समरूप आर्थिक नीतियों को अपनाने को प्रोत्साहित करना।
3. देश के सभी भागों के तीव्र तथा संतुलित विकास के लिए प्रयास करना।

13.4.2 राष्ट्रीय विकास परिषद रचना

राष्ट्रीय विकास परिषद में प्रधानमंत्री, योजना आयोग के सभी सदस्य, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, संघ शासित क्षेत्रों के प्रतिनिधि तथा भारत सरकार के प्रमुख विभागों के कुछ मंत्री सम्मिलित होते हैं।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सन् 1967 में अपने एक अध्ययन दल को राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्य की समीक्षा करने और भविष्य में इसे अधिक शक्तिशाली बनाने के उपायों के सम्बन्ध में सुझाव देने को कहा था। इस अध्ययन दल द्वारा प्रेषित सुझावों को प्रशासनिक सुधार आयोग एवं भारत सरकार द्वारा कुछ संशोधनों के पश्चात स्वीकार कर लिया गया और इसकी सदस्यता को अधिक विस्तृत और व्यापक बनाया गया।

योजना आयोग का सचिव, राष्ट्रीय विकास परिषद का सचिव होता है। परिषद की बैठकें वर्ष में साधारणतः दो बार होती है। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है। इसकी कार्यविधि योजना आयोग के सचिवालय द्वारा तैयार की जाती है। उसमें राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषय सम्मिलित रहते हैं, जिन पर राज्यों के विचारों को ज्ञात करना अति आवश्यक होता है। इसकी बैठकों में प्रत्येक विषय पर खुलकर चर्चा होती है और निर्णय प्रायः सर्वसम्मति से ही होता है।

13.4.3 राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्य

राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रमुख कार्य निम्न है-

1. राष्ट्रीय योजना के निर्धारित लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सुझाव देना।
2. योजना आयोग द्वारा तैयार की गयी राष्ट्रीय योजना पर विचार करना।
3. राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली सामाजिक तथा आर्थिक नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना।
4. राष्ट्रीय योजना के निर्माण के लिये तथा इसके साधनों के निर्धारण के लिये पथ-प्रदर्शक सूत्र निश्चित करना।
5. राष्ट्रीय योजना के निर्माण के लिये पथ-प्रदर्शक तत्व परिषद द्वारा प्रतिपादित किये जाते हैं, जिसके अनुसार योजना आयोग अपनी योजना बनाता है।

13.4.4 मूल्याकंन

इस प्रकार राष्ट्रीय विकास परिषद, शासन में नीति-निर्धारण करने वाली सर्वोपरि एवं महत्वपूर्ण संस्था बन गयी है। राष्ट्रीय विकास परिषद का मुख्य कार्य केन्द्र सरकार राज्य सरकारों और योजना आयोग के मध्य विशेषतयाः नियोजन के क्षेत्रों में उनकी नीतियों तथा कार्य योजनाओं के सन्दर्भ में ताल-मेल बनाना तथा उनके बीच एक सेतु के रूप के रूप में कार्य करना है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर केन्द्र एवं राज्यों के बीच विचार-विमर्श तथा उत्तर दायित्वों के विभाजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए राष्ट्रीय विकास परिषद ने भारतीय संघवाद को जीवन्त बना दिया है, हालांकि हमेशा से परिस्थितियां ऐसी नहीं रही हैं। एक लम्बे समय तक केन्द्र एवं राज्यों में कांग्रेस का ही शासन होने के कारण राष्ट्रीय विकास परिषद का प्रयोग केन्द्र सरकार के द्वारा लिए गए निर्णयों पर 'रबर स्टैम्प' के रूप में किया जाता रहा है। राज्यों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के बढ़ते प्रभाव के कारण इस स्थिति में काफी हद तक परिवर्तन आया है। पूर्व वित्तमंत्री एच0 एम0 पटेल का मानना है कि 'योजना आयोग के परामर्शी निकाय में राष्ट्रीय विकास परिषद भी शामिल है। संरचना पर ध्यान दें तो यह बिल्कुल ठीक नहीं है। राष्ट्रीय विकास परिषद, योजना आयोग से उच्च निकाय है। वस्तुतः यह एक नीति निर्धारक निकाय है और इसकी सिफारिशों को सुझाव मात्र नहीं माना जा सकता, वास्तव में यह नीतिगत निर्णय ही है।'

सरकारिया आयोग का भी सुझाव है कि राष्ट्रीय विकास परिषद को प्रभावी बनाया जाना चाहिए ताकि वह केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच राजनीतिक स्तर की सर्वोच्च संस्था हो सके। आयोग ने केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर अपनी रिपोर्ट में देश में योजनाबद्ध विकास को दिशा देने के लिये परिषद को और अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता व्यक्त करते हुये सुझाव दिया है कि इसका पुनर्गठन करके नाम बदलकर ''राष्ट्रीय आर्थिक एवं विकास परिषद'' कर दिया जाये।

अभ्यास प्रश्न-

1. योजना आयोग की स्थापना किस वर्ष हुई?
2. भारत के योजना आयोग का अध्यक्ष कौन होता है?
3. योजना आयोग एक संवैधानिक निकाय है। सत्य/असत्य
4. राष्ट्रीय विकास परिषद को 'सर्वोपरि कैबिनेट' भी कहते है। सत्य/असत्य
5. राष्ट्रीय विकास परिषद के अध्यक्ष भारत के प्रधानमंत्री होते है। सत्य असत्य

13.5 सारांश

भारत में योजनाओं का निर्माण राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उन्नयन के लिये किया जाता रहा है। योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद इसके निर्माण, क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन के लिये उत्तर दायी संस्थाऐं हैं, जो व्यवहार में मंत्रिमण्डल से भी अधिक प्रभुत्वशाली हो गयी हैं। भारत में आर्थिक नियोजन को यथासंभव लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास किया गया है। जनता द्वारा निर्वाचित सरकार ही योजना आयोग के सहयोग से योजना बनाती है। योजना आयोग द्वारा राज्यों को निर्देश दिया जाता है कि वे पंचायतों, खण्डों और जिलों से योजना का प्रारूप आमंत्रित करें, इससे राज्य की योजना में स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखा जा सकता है। आर्थिक आयोजन विभिन्न प्रकार के होते हैं तथा प्रचुर मात्रा में विचार-विमर्श एवं विभिन्न चरणों से गुजरने के बाद मूर्त रूप में आते हैं।

13.6 शब्दावली

समाजवादी विचारधारा- उत्पादन के साधनों पर जनता के स्वामित्व में होने की स्थिति का समर्थन करना।
परिप्रेक्ष्यात्मक- किसी सन्दर्भ से सम्बन्धित।
प्रख्यापित- प्रस्तुत करना।
वैश्वीकरण- सम्पूर्ण विश्व का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से निकट आ जाना।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1950, **2.** प्रधानमंत्री, **3.** असत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. फड़िया, बी0 एल0 (2007) लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
2. लक्ष्मीकान्त, एम0 (2010) लोक प्रशासन, टाटा मेक्ग्रॉहिल, नई दिल्ली।
3. स्पेक्ट्रम (2010) भारतीय राज्य व्यवस्था, स्पेक्ट्रम, नई दिल्ली।

13.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी, अम्रेश्वर एवं माहेश्वरी, श्रीराम, (2002) लोक प्रकाशन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के0 पी0 एम0 (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चांद क0 लि0 नई दिल्ली।
3. स्पेक्ट्रम (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, स्पेक्ट्रम, नई दिल्ली।

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नियोजन प्रक्रिया ने भारतीय संघ को किस प्रकार प्रभावित किया है?
2. योजना आयोग में केन्द्र सरकार की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
3. भारत में नियोजन प्रक्रिया को केन्द्रीकृत होना चाहिए अथवा विकेन्द्रीकृत? तर्क प्रस्तुत कीजिए।
4. भारत में नियोजन प्रक्रिया को किस प्रकार अधिक सार्थक बनाया जा सकता है? सुझाव प्ररूतुत कीजिए।

इकाई- 14 नौकरशाही- अर्थ, नौकरशाही के प्रकार, गुण, दोष, मैक्स वेबर की नौकरशाही

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 नौकरशाही का अर्थ
14.3 नौकरशाही के प्रकार
14.4 नौकरशाही के गुण
14.5 नौकरशाही के दोष
14.6 मैक्स वेबर की नौकरशाही
14.6.1 प्राधिकार, शक्ति और नौकरशाही की विवेचना
14.6.2 मैक्स वेबर का आदर्श प्रारूप
14.6.3 नौकरशाही के परिणाम
14.6.4 नौकरशाही पर नियंत्रण
14.6.5 नौकरशाही सिद्धान्त का मूल्यांकन
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

'नौकरशाही' शब्द से हमारा तात्पर्य यह है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा राजनीतिक क्रियाकलापों एवं प्रक्रियाओं को एक व्यवस्था प्रदान करने के लिए एक संस्थागत ढाँचा। यह एक ऐसा संगठनिक उपक्रम है, जो जनता के लिए विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं को आसानी से उपलब्ध कराती है तथा यह राज्य की प्रतिनिधि है। नौकरशाही की संकल्पना पश्चिम की देन है तथा इसकी प्रकृति शुरूआत से ही अभिजनवादी है। नौकरशाही के गठन के पीछे ऐसा विचार रहा कि यह संसदीय संस्थाओं के असंतुलित विकास पर अंकुश लगा सके। जब इस पर लोकतंत्र का भारी दबाव पड़ा तो यह संस्था विकेन्द्रीकरण की ओर बढ़ी। जबकि पहले यह पूरी तरह से केन्द्रीकृत एवं एकात्मवादी थी।

विश्व में सर्वत्र ही हम किसी न किसी प्रकार का नौकरशाहीतंत्र पाते हैं, जो अलग-अलग परिस्थितियों में अपना-अलग स्वरूप रखती थी। पर 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लोकतंत्र के साथ यह करीब सारे विश्व में फैल गई। विचारधारात्मक स्तर पर मतभेदों के कारण इसे काफी विरोधों का सामना भी करना पड़ा है। मार्क्सवाद ने नौकरशाही को पूँजीवादी व्यवस्था की उपज माना है जो कि राज्य द्वारा अनैतिक शोषण के तंत्र एवं उपकरण के रूप में देखी गई।

विभिन्न प्रकार के गुण-दोषों के बावजूद लोककल्याणकारी शासन व्यवस्था में नौकरशाही एक अनिवार्य संस्था है। इसमें कुछ विकृतियाँ भी आयी जिसमें प्रमुख 'भ्रष्टाचार' है। 'लालफीताशाही' शब्द का प्रयोग भी हम नौकरशाही

के कुछ विकृतियों को ध्यान में रखकर ही करते हैं। जैसे कि कार्य में विलम्ब और नियमों एवं कानूनों का विवेकहीन ढंग से पालन करने की प्रकृति इत्यादि। इन सभी पहलुओं पर आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नौकरशाही के अर्थ एवं महत्व और उसके प्रकारों, गुणों एवं दोषों के बारे में जान पायेंगे।
- मैक्स वेबर द्वारा नौकरशाही की संकल्पना की चर्चा करते हुए विद्वानों की उस पर राय की विवेचना कर पायेंगे।
- आधुनिक राज्य में नौकरशाही का स्थान एवं इसके विविध पहलुओं एवं नियमों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- नौकरशाही पर नियंत्रण किस प्रकार होता है तथा उससे क्या लाभ है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।

14.2 नौकरशाही का अर्थ

नौकरशाही अथवा अधिकारी-तंत्र शब्द की उत्पत्ति फ्रांस से मानी जाती है, क्योंकि इसका पहला प्रयोग वहीं हुआ था। तत्पश्चात यह 19वीं शताब्दी में काफी प्रचलित हो गई।

नौकरशाही किसी भी शासन को चलाने तथा स्थायित्व प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण संस्था है, जिससे कि समाज की जरूरतों एवं राज्य के लक्ष्यों को आसानी से पूर्ण किया जाता है। नौकरशाही से अनुभव, ज्ञान तथा उत्तर दायित्व की कामना की जाती है।

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में नौकरशाही का अपना उचित स्थान है तथा बहुत सारी जिम्मेदारियाँ एवं उम्मीदें भी इस पर टिकी हुई हैं। विस्तृत क्षेत्र का अन्वेषण करने पर पता चलता है कि नौकरशाही का उचित अथवा अनुचित इस्तेमाल सबसे ज्यादा साम्यवादी एवं अधिनायकवादी तंत्रों में किया जाता है।

नौकरशाही की उत्पत्ति सत्ता के शीर्षस्थ स्रोतों द्वारा दिए गए आदेशों के निर्धारित समय के अन्दर अनुपालन के लिए हुई है। यह सरकार के हाथ-पैर के रूप में कार्य करती है। यह अधिकारी-तंत्र भी कहलाती है, क्योंकि यह प्रचुर सत्ता-सम्पन्न संस्था है तथा बहुत शक्तिशाली होती है। किन्तु इसे नियमों से बंधकर पर्दे के पीछे से कार्य करना पड़ता है तथा तटस्थता इसके लिए सर्वाधिक जरूरी समझी जाती है। अधिकारी-तंत्र अथवा नौकरशाही को एक विशेष प्रकार के संगठन के रूप में देखा गया है, जोकि लोक प्रशासन के संचालन के लिए एक सामान्य रूपरेखा है। आज का आधुनिक युग बड़ी संस्थाओं जैसे- निगम, व्यापार संघ, राजनीतिक दल, मजदूर संघ इत्यादि से भरा पड़ा है तथा इन्हें सुचारू रूप से संचालित करने के लिए एक बड़ी नौकरशाही एवं नियमों-कानूनों की आवश्यकता पड़ती है। अतः सरकार की कार्यपालिका के अन्तर्गत एक ऐसे मशीनरी की आवश्यकता को नौकरशाही पूरा करती है जो राज्य को लोक कल्याणकारी छवि प्रदान करने में सक्षम हो।

कुछ विद्वानों का मत सर्वथा विपरीत पाया गया है। जैसे, लास्की के अनुसार नौकरशाही की प्रमुख विशेषताएँ हैं- प्रशासन में दिन-प्रतिदिन के कार्यों पर बल, नियमों के लिए लचीलेपन का त्याग, निर्णय लेने में विलम्ब तथा नये प्रयोगों से विरोध। इस विशेषता के फलस्वरूप यह अमानुषिक एवं यंत्रवत होकर रह गयी है।

लास्की ने पुनः नौकरशाही को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह सरकार की एक प्रणाली है, जिसका नियंत्रण पूर्ण रूप से अधिकारियों के हाथों में होता है और जिसके कारण उनकी शक्ति सामान्य नागरिकों की स्वतंत्रता को संकट में डाल देती है।

नौकरशाही एक प्रशासनिक संगठन है तथा आधुनिक सरकार के लिए जरूरी है। यह सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के सम्बन्धों के अन्तर्गत काम करती है।

14.3 नौकरशाही के प्रकार

विभिन्न विद्वानों ने नौकरशाही के विभिन्न प्रकार बताए हैं। मार्क्स ने अपनी पुस्तक ''द एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट'' में मुख्य रूप से नौकरशाही के चार प्रकार बताए हैं-

1. **अभिभावक नौकरशाही-** ऐसे ज्ञानवान पदाधिकारी जो पारम्परिक ग्रन्थों तथा विद्या में कुशल होते थे। इसके उदाहरण हम चीनी नौकरशाही (प्रथम ईसवीं सहस्त्राब्दी में) तथा जर्मन राज्य प्रशासन के सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी के मध्य में पाते हैं। यह एक ऐसा अधिकारी-तंत्र था जो कि अपने को जनहित का संरक्षक मानता था, पर जनमत से स्वतंत्र होता था। यह कार्यकुशल तथा उपकारी होते हुए भी अनुत्तरदायी था। आधुनिक युग की कसौटी पर यह खरा नहीं उतर सकता, जोकि विधिक सत्ता पर आधारित है। पर इतना अवश्य है कि इस नौकरशाही में न्याय के तत्व परिलक्षित होते थे।
2. **जातीय नौकरशाही-** इस नौकरशाही का आधार वर्ग-विशेष से होता है तथा अभिजनों के सम्बन्धों द्वारा यह अपने इस रूप को प्राप्त करती है। यह अल्पतंत्रीय शासन वाले देशों में अधिकतर पायी जाती है, जहाँ सरकार के उच्च पदों पर केवल उच्चतर वर्गों या जातियों के लोग ही आसीन होते हैं। इन पदों को प्राप्त करने के लिए जो योग्यताएँ निर्धारित की जाती हैं वह भी किसी जाति या वर्ग-विशेष को ध्यान में रखकर की जाती हैं।

   ब्रिटेन में कुलीनतंत्र की परम्परा थी जो कि भारतीय नौकरशाही में समाहित हो गयी। ये वर्ग सामान्य जन से दूर तथा अफसराना व्यवहार के लिए मशहूर था। आज भी भारतीय लोकसेवा अपनी वर्गीय विशेषता को प्रकट करती है। पॉल ऐपलबी ने अपने एक सर्वे की रिपोर्ट में कहा है कि 'कर्मचारी वर्ग अत्यन्त सुदृढ़ वर्गों में तथा अति दृढ़ और अनेक विशिष्ट सेवाओं में स्वयं ही विभाजित हो गए हैं और उनके वर्गों तथा पदों के बीच विभेद की ऊँची दीवार है। वे अपनी श्रेणी, वर्ग, उपाधि तथा नौकरी के स्थान के प्रति अत्यधिक एवं निरन्तर जागरूक बने रहते हैं और जनता की सेवा के सम्बन्ध में बहुत सजग होते हैं।'

   नौकरशाही ने अपने अस्तित्व के साथ वर्ग को जोड़ लिया है तथा कहीं भी निकट भविष्य में यह अपने को अपनी विशिष्ट पहचान से अलग रखने को तैयार नहीं है।
3. **संरक्षक नौकरशाही-** संरक्षक नौकरशाही मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी ब्रिटेन में प्रचलित रही है तत्पश्चात यह संयुक्त राज्य अमेरिका के नौकरशाही की प्रमुख विशेषता बन गई। यह ब्रिटेन में कुलीनतंत्रीय पक्षपोषण पर आधारित रही है तथा अमेरिका में जार्ज वाशिंगटन एवं जेफरसन जैसे लोगों के समय आरम्भ हुई और निरंतरता में आयी। संरक्षक नौकरशाही लोकतंत्र के अन्तर्गत ही एक प्रयोग थी तथा यह विजेता राजनीतिक दलों के सदस्यों को पुरस्कृत करने का सशक्त एवं आसान तरीका बन गई। अमेरिका में इसे 'लूट-पद्धति' की संज्ञा दी गई, क्योंकि वहाँ बिना किसी भी योग्यता को आधार बनाकर पदों का बँटवारा राजनीतिक शक्ति-संतुलन को अपने पक्ष में करने के लिए किया गया। आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका में 'लूट-पद्धति' परम्परागत रूप में चली आ रही है। परन्तु यह प्रणाली एक ऐसी लोक सेवा उत्पन्न करने में असफल रही जो सरकारी जटिलताओं का सामना कर सके, जो औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप सामने आई थी। मार्क्स द्वारा इसकी निन्दा इन शब्दों में की गई, ''प्राविधिक कुशलता का अभाव, शिथिल अनुशासन, प्रछन्न बलापहरण, त्रुटियुक्त कार्य-पद्धति, पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण तथा उत्साह की कमी के कारण इस संरक्षक नौकरशाही को समय का एक दोष कहकर निन्दा की गई है।''

संरक्षक नौकरशाही का विकास भिन्न-भिन्न जगहों पर भिन्न-भिन्न रूप में हुआ है। संरक्षक नौकरशाही में व्यक्ति निरन्तर सेवा में विद्यमान रह सकते थे, पर 'लूट-पद्धति' में सरकार के बदलने के साथ ही उन्हें भी बदल जाना पड़ता था। संरक्षक नौकरशाही एक स्थायित्व वाली व्यवस्था के रूप में सामने आई।

4. **गुणों पर आधारित नौकरशाही-** इसका अर्थ यह है कि लोकसेवा में योग्य व्यक्तियों का चयन हो सके, जिनका पूर्वनिर्धारित मानदण्डों पर परीक्षण हो चुका हो तथा वे मापदण्ड वस्तुनिष्ठ हों। प्रजातन्त्र में लोक सेवक जनता की सेवा के लिये नियुक्त किये जाते हैं तथा उनकी नियुक्ति उनकी बुद्धिमत्ता, उद्योग तथा अन्य योग्यताओं के आधार पर निश्चित उद्देश्यों के लिये की जाती है। गुणों पर आधारित नौकरशाही लोकसेवक की कुशलता तथा प्रतिभा पर आधारित होती है। आधुनिक युग में यह सर्वविदित है कि मनुष्य के जीवन में 'पालने से लेकर कब्र तक' लोक प्रशासन का महत्व रहता है। लोक प्रशासक द्वारा प्रशासन के सारे कार्यों का निष्पादन किया जाता है, जिनमें कि कुछ विशिष्ट गुण अपेछित माने गये हैं। सरकारी नौकरी में नियुक्ति अब किसी भी प्रकार के विषयनिष्ठ भेद पर आधारित नहीं है, बल्कि यह मुख्य रूप से क्षमताओं के परीक्षण का परिणाम होती है।

14.4 नौकरशाही के गुण

नौकरशाही की निरन्तरता यह दर्शाती है कि यह एक उपयोगी एवं समाज के लिये एक अपरिहार्य तत्व बन चुकी है। मैक्स बेवर के शब्दों में- नौकरशाही, संगठन का एक ऐसा विशेष रूप है जो न कि सिर्फ सरकारों में पायी जाती है अपितु आधुनिक समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाती है। लोक प्रशासन में नौकरशाही का महत्व एवं योगदान उत्कृष्टतम रहा है, जिसके कारण प्रशासन पहले की अपेक्षा अधिक कुशल, विवेकशील, निष्पक्ष तथा सुसंगत बना है। नौकरशाही को संसदीय प्रजातन्त्र का मूल माना गया है। आधुनिक लोकतांत्रिक प्रणाली तथा जनता के दरवाजे तक सरकारी योजनाओं तथा नीतियों को पहुँचाने एवं प्रभावी रूप से उनके क्रियान्वयन के लिये एक वफादार, कुशल, सम्मानित तथा परिश्रमी नौकरशाही की अपेक्षा की जाती है। लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को सिद्ध करने के लिये किसी राज्य को एक बहुत बड़े सेवक-वर्ग की आवश्यकता होती है, जो वर्ग निश्चित रूप से स्वामी के रूप में विध्वंसक माना जाता है।

किसी भी संगठन या संस्था में गुण और दोष दोनों होते हैं, पर जरूरत इस बात की है कि दोषों का न्यूनीकरण करके गुणों को अपेक्षित रूप में बढ़ाया जाये। नौकरशाही आमतौर पर लोगों की जरूरतों के प्रति संवेदनशील होती है तथा व्यवस्था को बनाये रखने एवं सुचारू रूप से चलाने में अपनी भूमिका का निर्वहन करती है।

14.5 नौकरशाही के दोष

लार्ड हेवार्ट के शब्दों में, अगर हम नौकरशाही का चित्रण करें तो यहाँ नौकरशाही की सत्ता तथा शक्ति को 'नवीन स्वेच्छाचारिता' का नाम दिया जायेगा। कभी-कभी नौकरशाही शब्द का प्रयोग निन्दा के अर्थ में भी किया जाता है, क्योंकि हमारे आज के प्रशासन में नौकरशाही की शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी है। किसी भी देश की वित्तीय व्यवस्था या विधायी शक्तियों से सम्बन्धित मामलों में नौकरशाही द्वारा अनुचित हस्तक्षेप देखा जाता रहा है जो किसी भी प्रकार से उचित प्रतीत नहीं होता। हमारी शासन प्रणाली में यह एक शक्तिशाली तत्व बनकर उभरा है, पर इसे विधिक रूप से कोई सत्ता नहीं प्राप्त है। नौकरशाही को 'लालफीताशाही' की संज्ञा भी दी जाती है, क्योंकि यह अनावश्यक औपचारिकता में फंसी रहती है तथा उचित माध्यम की रीति पर विशेष बल देती है जो कि इसके स्वयं के उद्देश्यों के लिये घातक होने के साथ-साथ राष्ट्र के लिये भी हितकर नहीं है। नौकरशाही को यह बात भली प्रकार से याद रखनी होगी कि नियम-कानून जनता की सेवा के लिये होते हैं न कि जनता नियम-कानून के लिये।

नौकरशाही का यह मानना है कि यह निरन्तर एवं शाश्वत है जोकि उसके दम्भ को प्रदर्शित करती है। नौकरशाही जनसाधारण की इच्छाओं तथा मांगों की उपेक्षा भी करती है तथा स्वयं को सेवक की जगह स्वामी के रूप में देखती है। नौकरशाही सरकार के कार्यों को विभिन्न प्रथक भागों में विभाजित करने को प्रोत्साहित करती है जो अपने अलग-अलग उद्देश्यों का अनुसरण करते हैं तथा यह भूल जाते हैं कि एक बड़े समग्र के अंग मात्र है। नौकरशाही आज के आधुनिक युग में एक अनुदारवादी एवं परम्परा को पसन्द करने वाली निकाय के रूप में विख्यात हो चुकी है जो अपनी सत्ता एवं विशेषाधिकारों को प्राथमिकता देती है तथा जनकल्याण के कार्यों से विमुख होती जा रही है।

आज की नौकरशाही में भ्रष्टाचार विभिन्न रूपों एवं स्तरों पर पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है, जो कि हमारे राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था को अन्दर से दीमक की तरह चाट कर खोखला कर रहा है। यह एक राष्ट्र के लिये चिन्ता का विषय है। नौकरशाही के लिये यह जरूरी है कि अतिशीघ्र इन दुर्गुणों से मुक्ति पा ले।

14.6 मैक्स वेबर की नौकरशाही

नौकरशाही के व्यवस्थित अध्ययन का प्रारम्भ जर्मन समाजशास्त्री मैक्स बेबर से माना जाता है। वेबर की नौकरशाही की संकल्पना को काफी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, तथापि उसका प्रभाव एवं प्रखरता सर्वविदित है।

वेबर द्वारा प्रशासनिक सत्ता का विषद एवं व्यवस्थित विवेचन उसकी पुस्तक 'सोशियोलॉजी ऑफ डोमिनेशन इन इकोनामी एण्ड सोसाइटी' में किया गया है। इस विषय पर वेबर के विचारों को जानने का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत उनकी रचना 'पार्लियामेंन्ट एण्ड गवर्नमेंन्ट इन न्यूली आर्गेनाइज्ड जर्मनी' है।

14.6.1 वेबर द्वारा प्राधिकार शक्ति और नौकरशाही की विवेचना

वेबर की नौकरशाही की संकल्पना उसके शक्ति, प्राधिकार एवं प्रमुख के विचारों में देखने को मिलती है। वेबर ने शक्ति को इन शब्दों में परिभाषित किया है ''किसी भी सामाजिक सम्बन्ध के अन्तर्गत एक कर्ता की ऐसी स्थिति जो अपनी किसी भी इच्छा का पालन काफी विरोधों के बावजूद भी करवा सके।''

प्राधिकार के प्रयोग से वेबर का तात्पर्य किसी एक वर्ग द्वारा ऐसे आदेशों के अनुपालन से है जिसे वह वर्ग वैधानिक मानता है और उसमें अपने विश्वास को व्यक्त करता है। वैधानिकता (जो जनता का शक्ति में विश्वास द्वारा आती है) शक्ति एवं प्रभुत्व को प्राधिकार में बदलने की क्षमता रखती है।

वेबर ने प्राधिकार को वैधानिकता के आधार पर वर्गीकृत किया है। जिस पर मुख्य रूप से आज्ञाकारिता निर्भर करती है तथा यह भी निर्भर करता है कि किस प्रकार का प्रशासनिक स्टाफ होगा।

प्राधिकार मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता हैं-

1. **परम्परागत प्राधिकार-** प्राचीनकाल में इसके अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। यह पूर्ण रूप से स्थापित विश्वासों एवं रीति-रिवाजों पर आधारित होता है जो कि प्राचीन काल से अनवरत चली आ रही है।
2. **करिश्माई प्राधिकार-** यह प्राधिकार धारण करने वाला व्यक्ति, नेतृत्व-क्षमता तथा असाधारण गुणों का स्वामी होने के कारण वैधानिकता को प्राप्त करता है।
3. **विधिक तार्किक प्राधिकार-** यह औपचारिक नियमों के अनुसार होने के कारण वैधानिक होता है, तथा उन लोगों के अधिकार के अन्तर्गत होता है जो सर्वथा स्वीकार्य नियमों एवं कानूनों का पालन करते हुए उन्हें लागू करने का कार्य करते हैं। यह उन नियमों के वैधानिकता में विश्वास पर आधारित होता है।

प्राधिकार का इस प्रकार का वर्गीकरण ही संगठनों के वर्गीकरण का आधार बनता है। विधिक प्राधिकार आधुनिक संगठनों का आधार है जिसके साथ प्रशासनिक नौकरशाही भी सम्बन्धित होती है।

14.6.2 वेबर का आदर्श प्रारूप

वेबर ने विधिक सत्ता के प्रयोग के सम्बन्ध में नौकरशाही की विवेचना की है। विधिक सत्ता के प्रयोग का यह वह रूप है, जिसमें नौकरशाही के संचालन के लिए प्रशासकीय कर्मचारी होते हैं। ऐसे संगठन के प्रमुख सत्ताधारी योग्यता के कारण, नामांकन के आधार पर पदारूढ़ होते हैं। अतः सर्वोच्च सत्ता के अधीन सभी प्रशासकीय अधिकारियों में वे सभी व्यक्तिगत अधिकारी शामिल होते हैं जो निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर नियुक्त किये जाते हैं तथा कार्य करते हैं -

1. वे व्यक्तिगत रूप से तो स्वतंत्र होते हैं, परन्तु शासकीय कार्यों एवं दायित्वों के सम्बन्ध में अपने अधिकारी के अधीन होते हैं।
2. वे सुनिश्चित विधि से विभिन्न पदों के निर्धारित पद-सोपान में संगठित होते हैं।
3. विधिक अर्थों में प्रत्येक पद का सुस्पष्ट एवं परिभाषित योग्यता क्षेत्र होता है।
4. कर्मचारी का खुला चयन होता है, जो कि अनुबन्ध पर आधारित होता है।
5. वस्तुनिष्ठ चयन प्रक्रिया के माध्यम से योग्यता का परीक्षण किया जाता है तथा परीक्षा के माध्यम से एवं प्राविधिक शिक्षण के प्रमाण-पत्र को प्रमाणिक मानकर नियुक्ति की जाती है। ये निर्वाचित नहीं होते हैं, सिर्फ नियुक्त होते हैं।
6. इन अधिकारियों को निश्चित धनराशि वेतनमान के रूप में दी जाती है तथा पेन्शन इत्यादि की भी व्यवस्था होती है। अधिकारी का पद-सोपान एवं वेतनमान व्यवस्था में पद की स्थिति के अनुरूप होता है तथा अधिकारी को पदत्याग करने की स्वतंत्रता होती है।
7. अधिकारी का पद ही उसका मूल व्यवसाय माना जाता है।
8. वरिष्ठता अथवा सफलता दोनों के आधार पर ही पदोन्नति होती है। उच्चस्थ अधिकारियों के निर्णय के आधार पर ही पदोन्नति निर्भर करती है।
9. पदाधिकारी प्रशासनिक साधनों के स्वामित्व से पूर्णरूपेण पृथक रहकर कार्य करता है, तथा अपने पद पर रहते हुए अन्य प्रकार से आय नहीं कर सकता।
10. पद के संचालन में वह कठोर एवं व्यवस्थित अनुशासन एवं नियंत्रण के अधीन रहकर कार्यों का सम्पादन करता है।

नौकरशाही का यह आदर्श प्रारूप वेबर द्वारा प्रशासन के प्रशासनिक सिद्धान्तों एवं यूरोपीय प्रशासनिक इतिहास से लिया गया है। जब कभी भी वेबर किसी प्रशासनिक संगठन की चर्चा करते हैं, तो वे उसे नौकरशाही से सम्बद्ध पाते हैं, जबकि ऐसा नहीं है कि वे संगठन अपने में सारे अथवा केवल उपरोक्त आदर्श प्रारूप की विशेषता समाहित किए हुए होते हैं।

वेबर, मार्क्स एवं लेनिन के इस विचार से सदैव असहमत है कि नौकरशाही नाम की संस्था सिर्फ पूँजीवादी व्यवस्था से ही जुड़ी है तथा समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप उसका लोप हो जायेगा। वेबर बलपूर्वक कहते हैं कि, नौकरशाही एक स्वतंत्र निकाय है तथा यह किसी भी प्रकार के समाज में जीवित रह सकती है, चाहे वह पूँजीवादी समाज हो अथवा समाजवादी समाज। इसके पीछे दो कारण हैं-

पहला, क्योंकि नौकरशाही का उदय उन कारकों द्वारा पोषित है जो स्वयं में आधुनिक समाज की रचना के लिए उत्तर दायी रही है। जैसे कि पूँजीवाद, केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ और जन लोकतंत्र जो कि ऐसी प्रक्रियाएँ हैं, जिनका

उन्मूलन करना कठिन है। वेबर के अनुसार अगर तकनीकी रूप से देखें तो प्रशासनिक नौकरशाही सदैव अपनी तार्किकता बनाए रखती है तथा बड़े पैमाने पर प्रशासन की आवश्यकता ने इसे अनिवार्य बनाए रखा है।

दूसरा, हम पाते हैं कि नौकरशाही स्थाई रूप से एक सामाजिक शक्ति बन चुकी है। इसकी उत्कृष्टता इसके निर्वैयक्तिकता, तकनीकी रूप से योग्यता, संक्षिप्तता तथा अनुशासन से निर्मित है।

वेबर, नौकरशाही की प्रवृत्तियों को न केवल आधुनिक राज्य में ही बल्कि निजी पूँजीवादी उद्यमों, आधुनिक सेनाओं, चर्चों तथा विश्वविद्यालयों में भी देखते हैं। सुसज्जित सेनाएँ, भौतिक सम्पत्ति के परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र की बढ़ती भूमिका, संचार के आधुनिक साधन तथा कुछ राजनीतिक कारक, जैसे सार्वभौमिक मतदान का अधिकार, वृत्त जनाधार युक्त राजनीतिक दलों का अविर्भाव नौकरशाहीकरण के पीछे महत्वपूर्ण कारक रहे हैं। एक विकसित नौकरशाही की अनिवार्यता को वेबर द्वारा आधुनिक युग का एक महत्वपूर्ण राजनीतिक तथ्य माना गया है।

14.6.3 नौकरशाही के परिणाम

वेबर को समकालीन नौकरशाही के प्रबल विस्तार के सामाजिक एवं राजनीतिक परिणामों से बेचैनी भी थी। मार्टिन क्रिगर के अनुसार वेबर की इस बेचैनी के दो कारण थे। पहला, यह कि पूरे समाज का नौकरशाहीकरण, वह भी इन अर्थों में कि नौकरशाही के मूल्यों का पूरी तरह प्रसार तथा इसके ही सुसंगत विचार एवं व्यवहार का प्रचलन होना। दूसरा, यह कि वे जो नौकरशाही के अन्तर्गत महत्वपूर्ण पदों को धारण किए हुए हैं, वे ही राज्य के वास्तविक शासक प्रतीत होते हैं। वेबर व कुछ विद्वानों के अनुसार, इस मशीन(नौकरशाही) में यह सम्भावना भी देखते हैं कि कहीं ये अपने स्वामी के विरूद्ध ही क्रान्ति न कर दे। ऐसा इसलिए सोचा जाता रहा है, क्योंकि नौकरशाही के पास उत्कृष्ट तकनीक एवं व्यवहारिक ज्ञान तथा योग्यता होती है तथा सूचना के संग्रहण एवं प्रसार के उत्तम साधन होते हैं। एक प्रकार से प्रशासनिक नौकरशाही का अर्थ है- ज्ञान के माध्यम से प्रभुत्व।

हाल्वी ने दो नये सम्बन्धित परिणामों के विषय में चर्चा की है, जिसके विषय में वेबर चिन्तित है। उसने उन लोगों पर इसके प्रभाव को देखा जो इसके अन्दर है। अर्थात स्वयं नौकरशाही जिसका प्राकृतिक व्यक्तित्व इसके प्रभाव के कारण विकलांग होता जा रहा है।

पूँजीवाद एवं नौकरशाही दोनों मिलकर एक तकनीकी विशेषज्ञ का सृजन करते हैं, जो अपनी उत्कृष्टता के विषय में आश्वस्त होता है तथा एक सुसंस्कृत व्यक्ति की जगह धीरे-धीरे ले लेता है। नौकरशाही के आलोचक इस प्रकार के व्यक्ति को पतित मनुष्य की संज्ञा देते हैं।

अंततः वेबर की दृष्टि में नौकरशाही का एक दुष्परिणाम यह भी है कि यह अति संगठन का एक रूप है, जो कि मनुष्य की स्वतत्रता में बाधक है।

14.6.4 नौकरशाही पर नियंत्रण

वेबर ने नौकरशाही को कभी भी एक स्वतंत्र सामाजिक इकाई के रूप में नहीं देखा। वेबर ने इसे सदैव एक यंत्र के रूप में देखने का प्रयास किया। इस प्रकार नौकरशाही पर नियंत्रण का प्रश्न आसान हो गया। नौकरशाही किसी के भी अधीनस्थ कार्य करने को तैयार रहने वाली मशीन है, जिसने कि इसके सही संचालन के लिए जरूरी आर्थिक एवं विधिक तकनीकों का स्वामित्व हासिल कर लिया हो, क्योंकि वेबर ने नौकरशाही को ऐसा उपकरण समझा, जो किसी के लिए भी कार्य करेगी, जो उस पर नियंत्रण रखना जानता हो। इसी कारणवश उसने गैर-नौकरशाह को नौकरशाही का स्वामित्व प्रदान करने की बात कही।

कुछ दूसरे अवरोधों को जिसे वेबर ने नौकरशाही के लिए जरूरी समझा वे हैं- खुलापन, सरकारी/कार्यालयी रहस्यों का उन्मूलन तथा प्रभावी संसदीय नियंत्रण का होना।

मार्टिन एलब्रो ने नौकरशाही के ऊपर नियंत्रण के तंत्र को पाँच वर्गों में बांटा है-

1. **सामूहिकता-** कार्यालयी पदसोपान के प्रत्येक स्तर पर, एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा ही निर्णय लिया जाता है।
2. **शक्ति का पृथक्करण-** नियंत्रण को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए कार्यों एवं उत्तर दायित्व का बंटवारा, पर यह व्यवस्था स्वाभाविक रूप से अस्थायी होती है।
3. **अनुभवहीन प्रशासन-** तेजी से बदलते हुए आधुनिक समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप तंत्र अपने में विशेषज्ञता नहीं ला सकता, इसलिए अधिकतर अनुभवहीन अधिकारियों की सहायता पेशेवरों द्वारा की जाती है तथा अधिकतर मामलों में पेशेवर ही वास्तविक निर्णय निर्माण का कार्य करते हैं।
4. **प्रत्यक्ष लोकतंत्र-** यह केवल स्थानीय स्तर के प्रशासन के सम्बन्ध में हो सकता है, पर विशेषज्ञता की कमी सबसे बड़ी समस्या बनकर सामने आती है।
5. **प्रतिनिधित्व-** लोकप्रिय रूप से चुनी हुई प्रतिनिधि सभाओं या संसद द्वारा भी प्रभावी नियंत्रण होता है। इसी माध्यम को वेबर ने सबसे ज्यादा प्रभावी नियंत्रण का माध्यम माना है।

14.6.5 नौकरशाही सिद्धान्त का मूल्यांकन

वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचना वृहत पैमाने पर हुई है, कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं-

1. नौकरशाही का वेबरीय मॉडल विकासशील राष्ट्रों के बदलते हुए सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के साथ पर्याप्त रूप से ताल-मेल नहीं बैठा पाया। यह परिस्थितियाँ त्वरित परिवर्तन में सहायता की मांग करती थीं, पर वेबरीय मॉडल यह प्रदान करने में विफल रहा।
2. यह मॉडल विभिन्न प्रकार के विकारों तथा दुष्परिणामों का शिकार रहा है तथा मनुष्यों के व्यक्तिगत एवं व्यावहारिक पक्षों का ध्यान रखने में विफल रहा है।
3. वेबर का आदर्श प्रारूप संकल्पनात्मक उपकरण की तरह आदर्श होने से काफी दूर है, इसलिए इसने वेबर को नौकरशाही का एकतरफा विचार प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया।
4. यह मॉडल सिर्फ औपचारिक नौकरशाही के ढ़ाँचे के अध्ययन मात्र तक ही सीमित रह सकता है। यह अनौपचारिक ढ़ाँचे से सम्बन्धित चीजों के अध्ययन में विफल है। जैसे- अनौपचारिक सम्बन्ध, अनौपचारिक नियम एवं मूल्य, अनौपचारिक सत्ता पदक्रम एवं अनौपचारिक शक्ति का संघर्ष इत्यादि।
5. जिन विशेषताओं को वेबर ने अपनी नौकरशाही के मॉडल में शामिल किया है, जैसे- पदक्रम (पदसोपान), नियम एवं विधि इत्यादि वे अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न कर पाने में असमर्थ हैं तथा तनाव, नियमों के प्रति अनिवार्य जुनून, एवं ढकोसलेबाजी के महत्व को बढ़ावा देते हैं।

हाल्वी ने वेबर के नौकरशाही मॉडल पर निष्कर्षतः यह कहा है कि अगर इस प्रकार की नौकरशाही हो तो वह सिर्फ वेबर के समय में ही प्रभावी हो सकती थी, पर आज के त्वरित परिवर्तन वाले समाज के लिए यह उपयुक्त नहीं है। परिणामतः नौकरशाही आज, अधिकाधिक लचीले सांगठनिक ढ़ाँचों द्वारा अपने स्थान से हटाई जा रही है। ऐसा अभी पूरी तरह से नहीं हुआ है, पर बदलाव जारी है। आज की नौकरशाही पूरी ताकत के साथ अपने स्थान पर बनी हुई है तथा इसका विश्लेषण वर्तमान समय में इसी रूप में सम्भव है।

आज के आधुनिक अथवा उत्तर -आधुनिक युग में नौकरशाही लोकतंत्रीय प्रक्रियाओं में ढल चुकी है तथा इस प्रक्रिया को अपने अनुरूप ढाल भी रही है। विभिन्न प्रकार के अनौपचारिक संगठनों, नागरिक समाज, निजी क्षेत्र

एवं प्रबन्धन तथा तीव्र संचार के साधनों के युग में पूरी तरह एक नये वेश-भूषा में आ चुके हैं, जो सम्पूर्ण रूप से अभिजनवादी सोच का एक हिस्सा है। शक्ति के अनुप्रयोग का कार्य हमेशा नौकरशाही के हाथों में ही रहा है तथा आगे भी बने रहने की सम्भावना है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोककल्याणकारी राज्य के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए किसकी आवश्यकता होती है?
2. नौकरशाहों की नियुक्ति किस आधार पर होती है?
3. अधिकारीतंत्र को प्रतिभावान तथा ईमानदार होना चाहिए। सत्य/असत्य
4. नौकरशाही अपनी अभिजनवादी प्रवृत्ति के लिए जानी जाती है। सत्य/असत्य
5. मार्क्सवाद के अनुसार नौकरशाही राज्य द्वारा शोषण का एक उपकरण मात्र है। सत्य/असत्य

14.7 सारांश

किसी भी राष्ट्र का प्रशासन चलाने के लिए नौकरशाही आवश्यक होती है। नौकरशाही का अर्थ एक ऐसी संस्था से लगाया जाता है, जो समाज की जरूरतों एवं राज्य के लक्ष्यों को पूरा करने में लगी हुई है। इसकी उत्पत्ति सत्ता के शीर्षस्थ स्रोतों द्वारा दिए गए आदेशों का निर्धारित समय के अन्दर अनुपालन करने के लिए हुई है। इसे हम एक प्रकार के अधिकारी-तंत्र के रूप में भी देखते हैं।

नौकरशाही के विभिन्न प्रकार बताये गए हैं, जैसे- अभिभावक नौकरशाही जिसमें पदाधिकारी ज्ञानवान तथा पारम्परिक विद्या में निपुण होते थे। यह प्राचीन राजनीतिक व्यवस्थाओं में अधिक प्रचलित थी। जातीय नौकरशाही, यह अल्पतंत्रीय शासन पद्धति व देश में केवल विशेष जाति अथवा वर्ग के लोगों, खासकर उच्च वर्ग के लोगों के लिए होती है। संरक्षक नौकरशाही, 19वीं शताब्दी ब्रिटेन में प्रचलित थी एवं अमेरिका में भी देखने को मिलती है। इसका आधार भी कुलीनतंत्रीय पक्षपोषण रहा है। गुणों पर आधारित नौकरशाही योग्यता के आधार पर वस्तुनिष्ठ तरीके से व्यक्तियों का चयन करती है। यह उनकी कार्यकुशलता एवं प्रतिभा पद आधारित होती है। गुणों पर आधारित नौकरशाही को उत्कृष्ट माना गया है।

नौकरशाही एक संस्था के रूप में गुणों तथा दोषों से पूर्ण है। गुणों में सर्वप्रथम हम यह पाते हैं कि इसकी निरन्तरता के कारण यह समाज के लिए अनिवार्य बन चुकी है। नीतियों एवं योजनाओं का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन तथा वफादार, परिश्रमी लोक प्रशासक एक लोक कल्याणकारी राज्य को चलाने के लिए आवश्यक है।

वहीं इसके दोषों के अन्तर्गत विलम्ब, लालफीताशाही, वित्तीय एवं विधायी कार्यों में नौकरशाही का अनुचित हस्तक्षेप इत्यादि आते हैं। नौकरशाही में अपने निरन्तरता को लेकर दम्भ भी होता है।

मैक्स वेबर ने नौकरशाही के सिद्धान्त का विस्तृत अध्ययन किया है तथा उसकी विशेषताऐं बतायी हैं, जो कि आदर्श प्रारूप के रूप में जाना जाता है। दस वस्तुनिष्ठ नियम हैं, जिनके विद्यमान होने पर ही एक आदर्श नौकरशाही की कल्पना की जाती है। वेबर ने शक्ति, प्राधिकार एवं प्रभुत्व की संकल्पना के अन्तर्गत ही नौकरशाही को देखा है। वेबर ने नौकरशाही को स्वेच्छाचारी होने से बचाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण नियंत्रणों की भी बात कही है। मैक्स वेबर के नौकरशाही के सिद्धान्त की आलोचना काफी बड़े पैमाने पर हुई है, तथापि यह संकल्पना लोकप्रिय एवं सफल दिखती है।

14.8 शब्दावली

संसदीय प्रजातंत्र- शासन की वह व्यवस्था, जिसमें जनता अपने प्रतिनिधियों को निश्चित कार्यकाल के लिए चुने।

लोक कल्याणकारी राज्य- वह राज्य जो जनता के हित में कार्य करता है तथा आवश्यक सुविधाओं को स्वयं उपलब्ध कराता है।

प्रभुत्व- शक्ति का सफलतापूर्वक प्रयोग करके सत्ता प्राप्त करना।

विधिक-तार्किक- जो प्रत्यक्ष कानूनों के अनुसार तथा बुद्धि के अनुरूप हो।

पदसोपान- अधिकारीतंत्र में ऊपर से नीचे की ओर, एक निरन्तर आदेशों एवं जिम्मेदारियों का प्रवाह।

पूँजीवाद- उत्पादन के साधनों पर व्यक्ति का नियंत्रण।

समाजवाद- उत्पादन के साधनों पर समाज का नियंत्रण।

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नौकरशाही, **2.**योग्यता, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. फड़िया, बी0 एल0 (2008), लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
2. भट्टाचार्या, मोहित (2008), लोक प्रशासन के नए आयाम, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

14.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. दुबे, अशोक कुमार (2008), 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन, टी0 एम0 एच0 पब्लिक लि0 नई दिल्ली।
2. अवस्थी एवं माहेश्वरी (2002), लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नौकरशाही का अर्थ, प्रकार एवं गुण-दोषों का परीक्षण करें।
2. वेबर की नौकरशाही का उल्लेख करते हुए उसकी आलोचना प्रस्तुत करें।
3. आधुनिक लोकतांत्रिक युग में नौकरशाही का क्या स्वरूप है?
4. नौकरशाही के विधिक-तार्किक आधारों की विवेचना करें।
5. वेबर की नौकरशाही में आदर्श प्रारूप के महत्व पर प्रकाश डालिए।